सस्ता साहित्य मण्डल

सर्वोदय साहित्य माला : सरसठवाँ ग्रन्थ

---

[६७]

हमारे

राष्ट्र-निर्माता

[जीवन-कथा, अध्ययन और झाँकियाँ]

लेखक

श्रीरामनाथ 'सुमन'

सस्ता साहित्य मण्डल

दिल्ली : लखनऊ

संस्करण

सितम्बर १९३३ : २१५०

जून १९३९ : २०००

मूल्य

डेढ़ रुपया

मुद्रक,

एस० एन० भारती,

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,

नई दिल्ली।

प्रकाशकीय निवेदन

'हमारे राष्ट्र-निर्माता' का यह दूसरा सस्करण पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हमे हर्ष होता है। पहले सस्करण से इसमे काफी परिवर्तन कर दिया गया है। पहले संस्करण मे क्रमश लोकमान्य-तिलक, त्यागमूर्ति मोतीलाल नेहरू, महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपत-राय, देशबन्धु चित्तरजनदास, महात्मा गाधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा परिशिष्ट भाग मे मौ० मुहम्मदअली तथा पटेल बन्धुओ की जीवनियाँ और चरित्र-चित्रण थे।

अब इस पुस्तक के तीन भाग करदेने की योजना है। पहले भाग मे दादाभाई नौरोजी, एनी बेसेण्ट, सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, गोखले, फिरोजशाह मेहता, मालवीयजी, लालाजी तथा लो० तिलक आदि महापुरुपो के चरित्र चित्रण देने का विचार है। दूसरा भाग आपके सामने है ही। इसमे गाँधीजी तथा उनकी विचार धारा से-प्रभावित गाधी-युग के प्रधान राष्ट्र निर्माताओ का चरित्र-चित्रण है। तीसरे भाग में सरोजिनी नायडू, डा० अनसारी सरदार पटेल, राजेन्द्रवाबू, राजगोपालाचार्य, आचार्य नरेन्द्रदेव, आदि के चरित्र-चित्रण देने का विचार है। हमे आशा और विश्वास है कि यह क्रम ठीक होगा और पाठको को रुचिकर होगा। अगर इसमे पाठको को कोई सूचना देनी हो तो वह हमे अवश्य भेजने की कृपा करे।

जीवित राष्ट्रनिर्माताओ की जीवन-घटनाये लेखक द्वारा अद्यवत् (Upto date) पूर्ण करदी गई है और सारी किताव को भी लेखक ने आद्योपात फिर से सपादित कर दिया है। इसके लिए मण्डल उनका आभारी है।

—मंत्री

विषय-सूची

१. महात्मा गांधी (३-१५४)

२. मोतीलाल नेहरू (१५५-२२०)

३. चित्तरंजन दास (२२१-३१३)

४. जवाहरलाल नेहरू (३१५-३८४)

हमारे

राष्ट्र-निर्माता

: महात्मा गांधी
: मोतीलाल नेहरू
: चित्तरंजन दास
: जवाहरलाल नेहरू

: १ :

मोहनदास करमचन्द गांधी

['महात्मा']

जन्म	जन्म
२ अक्तूबर १८६९ ई०	आश्विन कृष्ण १२, १९२५ वि०

"Mahatma Gandhi to-day stands at the very centre of the world's life, with the fate of centuries poised within his hands."

---John Hayness Holmes

× × ×

"I see in Mr Gandhi the patient sufferer for the cause of righteousness and mercy, a true representative of the crucified Saviour than the men who have thrown him into prison and yet call themselves by the name of Christ"

----Lord Bishop of Madras

"आज महात्मा गाधी समग्र ससार के जीवन के मध्य मे खडे है और कई शताब्दियो का भाग्य अपनी मुट्ठी मे बद किये हुए है।"

—जान होम्स

× × ×

"मै महात्मा गाधी मे धर्म और क्षमा के लिए धीरतापूर्वक दु ख सहनेवाले पुरुष को,—तथा जिन्होने उन्हे जेल मे डाल दिया है और फिर भी अपने को क्राइस्ट के नाम पर पुकारते है, उनकी अपेक्षा क्रूस पर चढे हुए उस त्राता (ईसा) के एक अधिक सच्चे प्रतिनिधि को देखता हूँ।"

—मद्रास के बिशप

The Pillar of a People's Hope
The Centre of a World's desire.

—एक—

पहली झांकी !

एक आँधी की भाँति वह मेरे जीवन मे आया,—पर आँधी की भाँति उडा नही ले गया। न आँधी की भाति वह क्षण-भर रहकर चला गया। उसने स्वार्थ की कुटिल प्रवृत्तियो को पकडा और उनकी गति मोड़ दी। जीवन की तह मे, अभिलाषाओ की राख के नीचे, छोटी-सी, बुझने-बुझने जैसी एक-दो चिनगारियॉं पडी थी, इस प्रभजन ने उन्हे जगा दिया। धूल उड गई और नीचे धधकती हुई आग, हँसते-हँसते, जीवन के क्षितिज पर उठी !

यह १९२१ की बात है। तब पहली बार उसे देखा। पर यह तो आँखो का देखना था। बिना आँखो के—हृदय की आँखो से—तो उससे पहले ही उसे देखा था,—उसके बारे मे पढा था और सुना भी था। और,—यह मेरे लिए, मेरे जीवन की एक घटना और सुखद स्मृति है कि मेरे साहित्यिक जीवन का आरम्भ उसीको लेकर हुआ। १२-१३ वर्ष की अबोध आयु मे मैने पहला लेख उसपर लिखा—पहला लेख जो एक मासिक पत्र मे प्रकाशित हो सका। उस समय वह, जनता के लिए, कोरा 'कर्मवीर' था और आज उसके साथ 'महात्मा' भी है। प्रतिक्षण अपने मार्ग पर बढनेवाली नदी के समान उसका जीवन आत्मसाक्षात्कार के अमृत-सिंधु की ओर चला जा रहा है। तब जो वह था उससे आज वह

बहुत ऊँचा है। भावना का वेग क्रमशः कम होता गया है; विवेक अत्यन्त दिव्य रूप मे प्रकट होता गया है। भक्त की विह्वलता अपेक्षाकृत कम और ज्ञानी की अनासक्ति तथा सदसद्विवेक धीरे-धीरे बढता गया है।

पर हाँ,—क्या कह रहा था? बनारस मे १९२१ मे पहली बार उसे देखा। तबसे जहाँ आत्मा—'स्पिरिट'—मे बहुत परिवर्तन हो गया है; शरीर, अपनी सीमा और बधन मे, बहुत थोडा बदला है। दुबला जरूर हो गया है पर वैसा न होना तो आश्चर्य की बात होती। आकृति-विज्ञान के विद्यार्थी को उसके कान, ओठ और आँखे अवश्य आकर्षित करती है। कान बड़े, खुले हुए। मानो जगत् मे जो-कुछ श्रेष्ठ है सब सुनने और सबको ले लेने के लिए उत्सुक है! ओठो से जीवन की अभिव्यक्ति—'एक्सप्रेशन'—फूटी पड़ती है। और आँख! उनमे वैसा कुछ नही जो साहित्य की परम्परा मे स्थान पाने योग्य हो। फिर भी उनमे कुछ ऐसा जरूर है जो रह-रह कर प्रकाशित होना—जीवन मे चमक उठना चाहता है। रह-रहकर उनमे एकाएक प्रकाश आजाता है और वे जुगनू की भाँति चमक उठती है।

× × ×

उसने अपनी सत्य की चिर-साधना के सहारे संसार को सत्याग्रह का दान दिया है। यह सत्याग्रह,—जिसका एक ही विराट् रूप हमने भारतीय राजनीति के प्रागण मे देखा है, और दूसरा कुछ-कुछ एक बिजली की भाँति चमकनेवाले उसके अस्पृश्यता-निवारण सम्बन्धी और राजकोट संबंधी आमरण अनशन में,—जगत् के लिए इस दिव्य आत्मा का सन्देश है। इसकी सिद्धि मे जगत् के लिए एक महान् आशा है, पीड़ित मानवता का त्राण है।

इस समय वातावरण उलझा हुआ है। उसमे नीरवता है पर यह

नीरवता महाश्मशान की नीरवता की भाँति सतत जीवनमय और भयानक है। यह आँधी आने के पहले विश्वात्मा के श्वास का प्रक्षेप है। और जिसके दिमाग मे क्या युद्ध चल रहा है कोई जानता नही और जिसके हृदय मे चलनेवाले मथन को केवल अन्तर्यामी जानता है—दूसरा कोई जानना चाहे तो भी न जान सकेगा—ज्वालामुखी की तरह फूटनेवाला है।

यह निश्चय है कि वह जो कुछ करने जा रहा है और जो कुछ करेगा, चाहे वह कैसा ही हो—पर ऐसा होगा जो निद्रालु जन-समूह को हिलाकर छोडेगा! हमारा हृदय तो, दुर्बल प्रेमी की तरह, अभी से काँपता है। और हम तो हाथ उठाकर मालिक से उसकी चिरायु की भीख माँगते है।

वह तपस्या का धधकता हुआ अंगारा है। उसके बारे मे कुछ कहना सहज नही है पर जो कुछ कहना है हम बाद मे कहेगे। तबतक, आइए उसके जीवन पर एक सरसरी दृष्टि डाल ले।

—दो—

जीवन-कथा

परिवार एवं जन्म

गाधी नाम से तो ऐसा ही मालूम होता है कि गाधी-परिवार पहले पसारी का काम करता रहा होगा। पर गाधीजी के पहले तीन पुश्त तक वह काठियावाड की भिन्न-भिन्न रियासतो मे दीवानी का काम करता आया। इसमे श्री उत्तमचन्द गाधी पोरबदर के दीवान थे पर पीछे अपनी निर्भीकता के कारण उन्हे वह स्थान छोडना पडा। उनके पुत्र करमचन्द गाधी भी पहले पोरबन्दर (सुदामापुरी) और बाद में राजकोट एव वाकानेर के दीवान रहे। वह एक अनुभवी राज्याधिकारी थे पर स्कूली शिक्षा उनकी बहुत कम—बिलकुल

प्रारंभिक—हुई थी। करमचन्द गाधी एक सद्‌गृहस्थ थे। वह निर्भीक और राज-काज मे निपुण पुरुष थे। उनमे सत्य की पवृत्ति थी। रिश्वत इत्यादि से दूर भागते थे। इन गुणो के साथ उनमे, क्रोध और विषयासक्ति, दो दोष भी थे। उनके एक-एक करके चार विवाह हुए। उनकी अन्तिम पत्नी पुतलीबाई साध्वी और निष्ठावान् थी। व्रत-उपवास एव पूजा-पाठ में उनकी विशेष रुचि रहती। वह बहुत ही दयालु, भावुक एव कोमल प्रकृति की थी। इन्ही माता-पिता के घर पोरबन्दर मे, २ अक्तूबर १८६९ ई० (आश्विन कृष्ण १२ सवत् १९२५) को मोहनदास (गाधीजी) का जन्म हुआ। यह अपने माता-पिता की अन्तिम सतान है।

बचपन मे मोहनदास साधारण बुद्धि के बालक थे, उनमे विशेष प्रतिभा न दीख पडती थी। इनके आरम्भिक वर्ष पोरबन्दर में ही बीते। अत वही किसी पाठशाला में यह बैठाये गये। उस समय इनका मन पढने मे विशेष न लगता था। पोरबन्दर से जब इनके पिता राजकोट गये तब मोहनदास की उम्र लगभग सात वर्ष की थी। वहाँ इनकी शिक्षा मन्द-गति से चलती रही। यह पाठशाला के साधारण विद्यार्थियो मे थे। इनका स्वभाव बडा संकोची और झेपू था और यह किसी से ज्यादा मिलते-जुलते न थे। पाठशाला खतम होती और घर आजाते। पर पिता-माता के अच्छे सस्कारो की मोहनदास मे प्रबलता थी। झूठ बोलने का दुर्गुण कभी उनमे न आया। मोहनदास में सत्य की ओर बचपन से ही रुचि और प्रवृत्ति थी। पाठशाला के वातावरण मे भी इन गुणो में कमी न आई। ऐसी अवस्था मे जब स्कूल के अन्य विद्यार्थी तरह-तरह की 'चालाकियां' सीख जाते है और मास्टर भी इस कार्य मे उनकी कुछ कम मदद नही करते तब अपने प्रबल सस्कारो के कारण मोहनदास सत्य मे

बचपन एवं आरंभिक शिक्षा

स्थिर रहे, यह इस बात की मानो सूचना थी कि भावी जीवन किस प्रवाह मे बहेगा ।

सत्य के साथ आरभ से ही इनमे गुरुजनो—बडो—के प्रति आदर एव भक्ति का भाव भी था । इसलिए मास्टरो के प्रति अवज्ञा का, उनको मूर्ख बनाने का जो भाव आजकल के लड़को मे होता है, उनमे न था । पढने-लिखने मे यह सुस्त थे । पाठ्य-पुस्तके ही पूरी नही पढ पाते थे फिर बाहरी पुस्तके कहाँ से पढते पर इस विद्यार्थी अवस्था की दो घटनाओ का उल्लेख उन्होने किया है । एक तो यह कि एक दिन अपने पिता की खरीदी एक पुस्तक 'श्रवण पितृ-भक्ति नाटक' पर इनकी दृष्टि पड गई । न जाने क्यो पढने को मन ललचाया । उसे पढकर माता-पिता के प्रति इनके हृदय मे जो भक्ति थी वह और जाग्रत हुई । शीशे मे तस्वीर दिखाने वालो से भी एक दिन श्रवण की मातृ-पितृ-भक्ति के दृश्य देखे; हृदय गद्‌गद् हो गया, आँखो मे आँसू भर आये । इस पुस्तक और दृश्य-दर्शन का इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पडा ।

गुरुजनो के प्रति भक्ति

इसी प्रकार जब यह पढ रहे थे तब एक नाटक-कम्पनी वहाँ खेल दिखाने आई । पिता की आज्ञा से इन्होने 'हरिश्चन्द्र' नाटक देखा । इसका भी उनके चित्त पर स्थायी प्रभाव पडा । वह लिखते है—" "इस नाटक को देखते मै अघाता न था । बार-बार उसे देखने को मन हुआ करता, पर यो बार-बार कौन जाने देने लगा ? जो हो ? अपनें मन में मंने इस नाटक को सैकडो बार खेला होगा । हरिश्चन्द्र के सपने आते। यही धुन लगी कि हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यो न हो ? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र के जैसी विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है ।" यही इनके वाद के जीवन की कुजी हमें

मिलती है। गुरुजनों के प्रति भक्ति एवं सत्य की दृढ़ता के जिन संस्कारों की बात हम ऊपर लिख आये हैं उनको इन दो घटनाओं ने लड़कपन में ही खूब दृढ़ कर दिया। 'हरिश्चन्द्र की तरह क्यों न हों', इस प्रेरणा और लगन ने ही उनको इस दिव्य-रूप में आज जगत् के सामने उपस्थित किया है।

धार्मिक एवं सामाजिक विचारों की दृष्टि से देखें तो इनके कुटुम्ब की गणना कट्टर कुटुम्बों में की जानी चाहिए। इसके परिणाम-स्वरूप हम

विवाह

सात वर्ष में इनकी सगाई होते और तेरह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह, कस्तूरबाई के साथ, होते देखते हैं। विवाह के समय वैवाहिक मर्यादा को तो यह क्या समझते? उम्र एवं बुद्धि ही कितनी थी। उस समय तो यह इनको तमाशे एवं मनोरंजन की चीज-सा मालूम हो रहा था। पैतृक संस्कारों के कारण कहिए या उस समय की साधारण दाम्पत्य-जीवन की प्रथा की दृष्टि से कहिए विवाह के बाद इनका जीवन पत्नी के साथ बहुत विषयासक्त हो गया था। यह आसक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि दिन को स्कूल में भी इनका मन पत्नी में ही लगा रहता था।

जब इनका विवाह हुआ तो यह हाईस्कूल में पढ़ते थे। अब यह पढ़ाई पर कुछ ध्यान देने लगे थे और बोदे छात्रों में न समझे जाते थे।

हाईस्कूल में

पर इनके जीवन में सदा यह बात रही और उस समय भी थी कि पुस्तकी शिक्षा में चाहे लापरवाही कर जाते पर सदाचरण में सदा जागरूक रहते थे। एक घटना है। जब यह सातवीं कक्षा में पढ रहे थे तब खेल-व्यायाम स्कूल में अनिवार्य कर दिया गया था पर इनका मन उसमें न लगता, पिता की सेवा में ज्यादा मन लगता था। एक दिन की बात है, सुबह का स्कूल था। शाम को चार बजे व्यायाम में जाना था। इनके पास घड़ी न थी। बादल छा

रहे थे इसलिए समय का कुछ ठीक ध्यान न रहा। जब यह पहुँचे तब व्यायाम समाप्त हो चुका था और सब लोग घर चले गये थे। दूसरे दिन जब अनुपस्थिति का कारण पूछा गया तो जो बात थी, इन्होने बता दी पर मास्टर को विश्वास न हुआ और उन्होने जुर्माना कर दिया। उस दिन इन्हे बडा दु ख हुआ और इन्होने यह शिक्षा ग्रहण की कि सत्य का मार्ग ग्रहण करनेवाले को सदा सावधान रहना चाहिए।

सत्य के प्रति इतना आग्रह होते हुए भी उस समय, सगति-दोष से, दो-एक काली रेखाये इनके जीवन मे आ गई। किशोरावस्था मनुष्य के लिए बहुत सँभालकर रखने की चीज है। इन दिनो बहुतेरे ऐसे मित्र मिल जाते है जो गोपनीय बातो मे रस लेते है और प्रलोभन एव कुतूहल-वश प्राय लोग इनके फेर मे पड जाते है। मोहनदास की भी एक लड़के से घनिष्टता हुई। उसके सस्कार अच्छे न थे और उसमे कई दुर्गुण थे। उसके सम्बन्ध मे माता, बडे भाई और पत्नी ने चेतावनी भी दी पर यह समझते थे कि उसकी बुराइयो का असर मुझ-पर न पडेगा, उल्टा मै उसे सुधार सकूँगा। इसलिए इन चेतावनियो पर ध्यान नही दिया। उस संगी ने मोहनदास को बताया कि कितने ही वडे-वडे आदमी और हिन्दू शिक्षक छुपे-छुपे मासाहार और मद्यपान करते है। पहले तो इन बातो से इन्हे दु ख होता पर उस 'मित्र' ने समय-समय पर इसी प्रकार की वाते कर-करके इनके हृदय को दुर्बल कर दिया। मोहन-दास के मँझले वडे भाई पहले से ही इस व्यसन मे फँसे हुए थे। वह खूब खेलते-कूदते, दौडते। उनमे फुर्ती थी तथा वह निर्भय भी थे। इधर मोहनदास सुस्त, डरपोक तथा दुर्बल थे इसलिए इन्हे अपनी अवस्था पर ग्लानि होती रहती थी। उस 'मित्र' ने इनके भाई तथा उसी प्रकार के अन्य लडको के उदाहरण दे-देकर इन्हे यह समझाया कि मांसाहार से

काली रेखायें

शक्ति बढ़ती है, स्फूर्ति आती है; इसीलिए अंग्रेज़ बलवान और हृष्ट-पुष्ट हैं। धीरे-धीरे इन बातों का असर मोहनदास के हृदय पर पड़ा और कुछ ही दिनों में इन्होंने मांसाहार की उपयोगिता स्वीकार कर ली तथा इन्हें विश्वास हो गया कि इससे मैं बलवान हो सकता हूँ और यदि सारा देश मांसाहार करने लगे तो अंग्रेज़ो को हरा सकता है।

धीरे-धीरे बातें आगे बढ़ीं। मांसाहार आरम्भ करने का दिन भी निश्चित हो गया पर यह सब निश्चय गुप्त रखा गया क्योंकि, यद्यपि बुद्धि मांसाहार की उपयोगिता स्वीकार करती थी पर हृदय में वैष्णव संस्कार भरे हुए थे। तथा चारों ओर के वातावरण में मांसाहार के प्रति तिरस्कार का अत्यन्त तीव्र भाव वर्तमान था। मालूम होने पर माता-पिता को बहुत दुःख होगा, इस विचार से भी सारी बातें गुप्त रखने का ही निश्चय हुआ। उस समय इनके मन की दशा विचित्र थी। उसमें संघर्ष चल रहा था। एक ओर वीर बनने और सुधार करने का उत्साह और दूसरी ओर चोर की तरह लुक-छिपकर काम करने की शर्म। नियत स्थान पर पहुँचे। मांस के साथ डबल रोटी भी थी पर दोनों ही चीज़ें इन्हें अच्छी न लगी। मांस चमड़े-जैसा मालूम हुआ। रात-भर नींद न आई। ऐसा मालूम होता कि पेट में बकरा 'बे-बें' बोल रहा है। पर 'सुधार' में ऐसी कठिनाइयाँ तो आती ही हैं, यह सोचकर तथा 'मित्रों' के उत्साह से आगे भी क्रम चला। उन लोगों ने कई प्रकार की स्वादिष्ट चीज़ें बनानी शुरू कीं। इस तरह समय-समय पर पाँच-छः बार मांस इन्होंने खाया होगा।

पर उत्तम संस्कारों के कारण इस बात को लेकर इनके मन में सदा युद्ध चला करता। जिस दिन मांस खाते उस दिन घर खाना न खाया जाता और माँ से झूठे बहाने करने पड़ते। सत्य की निष्ठा एवं मातृभक्ति के कारण यह बात इन्हें बहुत खलती थी। दिल में बेचैनी रहती कि मैं

माता-पिता को धोखा दे रहा हूँ। धीरे-धीरे इस भाव ने जोर पकडा और इन्होने निश्चय कर लिया—'माता-पिता से झूठ बोलना पाप है अत. जब तक वे जीवित है मास खाकर धोखा देना उचित नही। जब वे न रहेगे तब स्वतन्त्रता-पूर्वक खायँगे।' उस दिन से मास छूटा सो छूटा।

पर उस 'मित्र' ने यही तक नही, आगे भी कदम बढाया। मासाहार से व्यभिचार की ओर गति हुई। एक बार दलदल मे गिरने पर धीरे-धीरे नीचे जाने लगा। एक दिन मोहनदास को भी वह एक चकले मे ले गया। वाई से सब बाते उसने पहले से ही तै कर ली थी और उसे पैसे भी दे दिये थे। पर अपने झेपू स्वभाव के कारण मोहनदास बच गये या यह कहे तो ज्यादा अच्छा होगा कि ईश्वर ने इन्हे बचा लिया। यह जाकर मारे शर्म के गूँगे-से उस बाई की चारपाई पर बैठ गये। एक शब्द मुँह से न निकला इससे वह बाई झल्लाई और उसने इन्हे बाहर कर दिया। उस समय तो इन्हे अपने इस अपमान और 'नामर्दी' पर बडी ग्लानि हुई पर पीछे इन्हे विश्वास हो गया कि भगवान् ने ही रक्षा की है।

दलदल में फँसते-फँसते

इसी प्रकार चचा इत्यादि की देखा-देखी सिगरेट पीने की आदत १२-१३ वर्ष की अवस्था मे पड़ी। सिगरेट के लिए पैसे न मिलते इसलिए चचा की पी हुई अधजली सिगरेटे चुरा-चुराकर पीते। पीछे नौकरों के पैसो मे काट-कपटकर चोरी करने लगे। पर चोरी-चोरी यह काम करने मे वडी ग्लानि होती। यहाँ तक कि इसी ग्लानि मे एक दिन आत्महत्या कर लेने का भाव मन मे आया। धतूरे के बीज खोज लाये। मन्दिर के एकान्त स्थल मे शाम को आत्महत्या करने चले पर एक-दो बीज खाते ही हिम्मत छूटगई। पर इससे एक अच्छा फल यह निकला कि सिगरेट के जूठन पीने एव नौकरो के पैसे चुराकर उससे सिगरेट लाने की वान छूट गई।

इनके मासाहारी मझले भाई ने व्यसनो मे फँसकर २५) के लगभग कर्ज कर रखा था। इनके पास पहनने का सोने का एक कड़ा था। इन दोनो भाइयो ने यह निश्चय किया कि इसमे से एक तोला सोना निकाल लिया जाय। तदनुसार कडा कटा, कर्ज चुका पर इनका मन इनको इस चोरी के कारण धिक्कारने लगा। मन मे आया कि पिताजी से यह बात कह देनी चाहिए। उनके नाराज होने एव इस घटना से उनके मन और, फल-स्वरूप, स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडने की सभावना थी। फिर भी इन्होने पिताजी के नाम पत्र लिखा। उसमे सव वाते लिख दी और प्रतिज्ञा की कि आप दु ख न करे। आगे से ऐसा मै न करूँगा। पत्र पढ-कर पिता की आँखो से आँसू बहने लगे। दोनो रोये। पर इससे मन धुल गया।

पिता का देहावसान

१८८५ ई० मे पिता की मृत्यु हुई। इसी साल श्रीमती कस्तूर वाई के पेट से एक बालक का जन्म हुआ और इतनी कच्ची उम्र मे सन्तान होने के कारण दो-चार दिन मे ही उसकी मृत्यु हो गई।

सर्वधर्म-समभाव

वचपन से ही इन्होने सत्य को अपना पथ-प्रदर्शक वनाया था इसलिए हृदय मे उदारता थी। इनकी वूढी दाई ने इन्हे रामनाम का महत्त्व वताया था। 'रामनाम से भूत-प्रेत भाग जाते है', यह कहकर उसने इन्हे उसका अभ्यास करने की सलाह दी थी। आज यह रामनाम मे अमोघ शक्ति पाते हैं, यह बीज उसी दाई—रभा—का बोया हुआ है। अपने वडे भाई के कहने से यह 'राम-रक्षा' का पाठ भी किया करते और रामायण की कथा भी सुनते। यद्यपि धर्म मे इनकी श्रद्धा न थी पर इन वातो के सस्कार हृदय पर वैठते गये। वैष्णव होते हुए भी इनके घरवाले राम-मन्दिर इत्यादि जाते।

इससे साम्प्रदायिक सकुचितता का भाव इनमे न रह गया। कृष्ण, राम सब एक-से रहे। इनके पिता के पास जैन-धर्म के आचार्य भी आया करते। मुसलमान मित्र भी आते और अपने धर्म की बाते करते। इससे इन धर्मो के प्रति भी किशोर मोहनदास के हृदय मे समभाव पैदा हुआ। परन्तु इन सबसे इन्होने दो बाते निश्चित रूप से लड़कपन से ही ग्रहण की। एक तो यह कि **संसार नीति पर खड़ा है**; दूसरी यह कि **सत्य सब प्रकार की नीति का निचोड़ है**। इसीसे उनमे अहिंसाभाव का भी जन्म और विकास हुआ। 'अपकार का बदला उपकार', यह भाव दृढ हुआ।

१८८७ ई० मे मोहनदास ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और उसके बाद भावनगर के शामलदास कालेज मे भरती हुए पर वहाँ पढाई मे मन न लगता, विषय कठिन मालूम पडते। ऐसे ही समय इनके पिता के मित्र एव कुटुम्ब के सलाहकार श्री मावजी दवे ने इनके घरवालो से कहा कि इन्हे विलायत भेजकर बैरिस्टरी पास करानी चाहिए। बडी कठिनाई से भाई और माता ने आज्ञा दी। माताजी के सामने इन्होने मास, मदिरा और स्त्री-सग से दूर रहने की प्रतिज्ञाये ली। विलायत जाने की बात सुनकर जाति की पचायत ने इनको रोकना चाहा पर यह टस से मस न हुए। फलत जाति-बहिष्कृत होकर भी ४ सितम्बर १८८८ ई० को बम्बई से विलायत के लिए रवाना हुए।

विलायत-यात्रा

उस समय लन्दन मे निरामिष भोजनालय दो-ही चार थे। और चूँकि इन्हे अपनी प्रतिज्ञा का सदा ध्यान बना रहता इसलिए ऐसे भोजनालय की खोज मे रहते। कभी-कभी हाथ से भी बना लेते। यही अन्नाहार एवं फलाहार की श्रेष्ठता का विवेचन करनेवाली कई अच्छी पुस्तके इनके हाथ लगी। उन्हे पढकर

जीवन में परिवर्तन

अन्नाहार की उपयोगिता पर इनका विश्वास वढता गया। तभी से भोजन-सम्वन्धी प्रयोगो की धुन इनपर सवार हुई, जो आजतक चली जाती है।

इस वात से दो अच्छे फल तो तुरन्त हुए। एक तो यह कि भोजन मे सादगी आई और जो भोजन पहले शुष्क मालूम पडता था उसमे स्वाद आने लगा। दूसरे यह कि ज्यो-ज्यो यह अपने सम्वन्ध मे गहराई से विचार करते गये त्यो-त्यो अपने जीवन मे अधिकाधिक सादगी लाने एव खर्च मे कमी करने का भाव इनके मन मे प्रवल होता गया। सवारी का खर्च इन्होने घटा दिया और पैदल आना-जाना शुरू किया। इससे स्वास्थ्य भी सुधरा। केवल एक सस्ते कमरे से काम चलाना शुरू किया। मिर्च-मसाले इत्यादि का प्रयोग भी छोड़ दिया। इस प्रकार खाने-पीने एवं रहने का खर्च वहुत घट गया। इसके वाद ही इन्होने पढने मे भी मन लगाया।

विलायत मे भारतीय विद्यार्थी के सामने अनेक प्रकार के प्रलोभन आते है। इनके सामने भी ऐसे अवसर आये। उन दिनो वहुतेरे विवाहित छात्र अपने को वहाँ अविवाहित ही वताते। इससे उन्हे उन कुटुम्वो की युवती लडकियो के साथ घूमने-फिरने एव मनोविनोद की स्वच्छन्दता मिल जाती जिनमे वे रहते थे। उसी प्रवाह मे यह भी वह गये। एक दिन व्रायटन (समुद्र के किनारे हवाखोरी का स्थान) मे लन्दन-निवासिनी एक वुढिया से परिचय हुआ। पीछे उससे घनिष्टता वढ गई और विलायत से लौटने के वाद भी कायम रही। उसने लन्दन का अपना पता दिया। वह हर रविवार को इन्हे निमत्रित करती और युवती स्त्रियो से, विशेषकर अपने यहाँ रहने वाली एक लड़की से, इनको हिलाती-मिलाती। उस लड़की से पहले तो वोलने मे यह झेपते पर धीरे-धीरे उसमे रस आने लगा। पर

असत्याचरण का अन्त

सत्य के सस्कार इनमे जमे हुए थे, प्रतिज्ञा भी इन्हे याद थी इसलिए समय पर भगवान् की कृपा से यह बच गये। वह लडकी इन्हे अविवाहित समझ इनसे स्नेह बढाती जा रही थी। अन्त मे इसके परिणाम की भीषणता की कल्पना करके साहस-पूर्वक इन्होने बुढिया को एक पत्र लिखा और सच्ची स्थिनि प्रकट कर दी। इनकी उस सत्यवादिता का उनपर अच्छा ही असर हुआ और इन लोगो की मित्रता अन्त तक कायम रही।

त्याग का भाव

विलायत मे रहने की अवधि मे ही दो थियासोफिस्ट ('ब्रह्मवादी') मित्रो से परिचय हुआ और उनके आग्रह से इन्होने गीता का एडविन अर्नाल्डकृत अनुवाद पढा और उनके साथ मूल श्लोक भी शुरू किये। दूसरे अध्याय के—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
सगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोपजायते॥
क्रोधाद्भवति समोह. संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति-भ्र शाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ [1]

श्लोको का इनके हृदय पर बडा प्रभाव पडा। तभी से गीता की दिव्यता पर इनकी श्रद्धा हुई और अब तो यह मानते है कि गीता से बढकर मनुष्य के लिए सत्पथ-प्रदर्शक दूसरा ग्रन्थ नही।

१ विषय का चिन्तन करने से पहले उस विषय में आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति—सग—से उस विषय की कामना—उसे प्राप्त करने की वासना—का जन्म होता है और उस कामना (की तृप्ति में विघ्न आने पर उस) से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मोह (अविवेक), मोह के स्मृति-विभ्रम, स्मृति-विभ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से उस व्यक्ति का ही विनाश होता है।

इन्ही दिनो 'थियोसफी' की भी दो-एक पुस्तके पढी। अर्नाल्ड का 'बुद्ध चरित' पढा। वाइविल भी पढ गये। उसका 'सर्मन ऑन् द माउण्ट' (गिरि-प्रवचन) नामक अध्याय पढकर उनके हृदय को वडा आनन्द हुआ। इसकी शिक्षाएँ उनके सत्य-धर्म की नीति के अनुकूल थी। उनमे अपकार का वदला उपकार से एव हिंसा का प्रेम से देने का उपदेश किया गया था। इन ग्रथो के अध्ययन से इनके हृदय मे धीरे-धीरे ईश्वर के प्रति श्रद्धा का सचार हुआ और यह वात दिल मे जँच गई कि त्याग मे ही धर्म है। इस प्रकार सत्य, अहिंसा एवं त्याग के भावो ने इनके दिल मे जड जमा ली। इन भावो के कारण विकार-वश होकर भी कई वार यह वचे। एक वार पोर्ट्समथ मे (जहाँ अन्नाहारियो के सम्मेलन मे गये हुए थे) रात को अपने एक भारतीय साथी के साथ गृहणी से ताश खेलने वैठे। विनोद आरभ हुआ। वह साथी इस कार्य मे निपुण था, धीरे-धीरे पापपूर्ण विनोद वढकर क्रिया मे परिणत होने की नौवत आई। उस समय यह भी विकाराधीन हो गये थे पर ठीक समय पर उस साथी ने इन्हे चेताया—'यह काम तुम्हारे लिए नही।' यह भगे, रात भर नीद न आई। उस समय यह ईश्वरीय सहायता का पूर्ण अर्थ न समझते थे पर इन्हे ऐसा मालूम पडा कि भगवान् ने ही उवारा है। दूसरे ही दिन पोर्ट्समथ से चल दिये। इस प्रकार इनके जीवन मे एक साधक की प्रवृत्ति हम शुरू से देखते है। वुराइयो मे फँसते है, वेदना और फिर पश्चात्ताप होता है, यह जग जाते और उनसे भागते है। अपने को कसने एव प्रलोभनो का ज्ञान होते ही उससे दूर हटने की नीति ने ही इनकी रक्षा की है।

जिस वैरिस्टरी के लिए यह विलायत गये थे उसकी पढाई भी जारी थी और फलस्वरूप १० जून १८९१ को यह वैरिस्टर हुए। ११ ता०

को ढाई शिलिंग फीस देकर इग्लैण्ड के हाईकोर्ट मे अपना नाम रजिस्टर कराया और हिन्दुस्तान लौट आये।

बम्बई आने पर उनका रायचद भाई से परिचय हुआ। गाँधीजी के जीवन पर उनका बडा प्रभाव पडा है। वैसे रायचद भाई हीरे-जवाहरात व्यापारी थे। वह अच्छे कवि और शतावधानी थे। स्मरण-शक्ति अद्भुत थी पर व्यापार एव ससार के अन्य कार्यो मे लगे रहने पर भी उनमे आत्म-दर्शन की तीव्र आकाक्षा थी, उनका शास्त्र-ज्ञान व्यापक और गभीर था। उनका चरित्र निर्मल था। वह सदा अपने सम्वन्ध मे जागरूक रहते और अनासक्त भाव से ही सब काम-काज करते थे। जिन तीन आदमियो—रायचद भाई, टाल्सटाय और रस्किन[१]—का गाँधीजी के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पडा है, उनमे रायचद भाई का स्थान 'सवसे ऊँचा एव महत्वपूर्ण है। इनके ससर्ग एव सलाह से गाँधीजी के जीवन की अनेक आध्यात्मिक गुत्थियाँ सुलझी है।

रायचन्द भाई से परिचय

× × ×

वैरिस्टर तो हो आये पर इनमे धडल्ले से वोलने और अपने तर्क एव भाषण-द्वारा मुकदमे की सव वातो को प्रभावशाली ढग से अदालत के सामने रखने की शक्ति का सर्वथा अभाव था। ससार का अनुभव इन्हे विलकुल न था, जो एक वकील की पूँजी है। किसी सभा मे वोलने खड़े होते तो शरीर काँपने

वकालत के मैदान में

१. टाल्सटाय की 'हेवेन इज़ इन यू' (स्वर्ग तुम्हारे ही अन्दर है) और रस्किन का 'अन-टू दिस लास्ट' (जिसका अनुवाद स्वयं गांधीजी ने 'सर्वोदय' नाम से किया) नामक पुस्तको ने गांधीजी के जीवन पर वड़ा प्रभाव डाला है।

लगता। इधर घर का खर्च बहुत बढ गया। इसलिए मित्रो की सलाह से बम्बई हाईकोर्ट मे अनुभव प्राप्त करने के लिए बम्बई गये।

बम्बई में कानून का अध्ययन चला तो पर बहुत सुस्ती के साथ। बाहर बैरिस्टर की तख्ती टँगी रहती और अन्दर बैरिस्टर बनने की तैयारी चलती रहती। वह स्वय लिखते है कि इस समय मेरी हालत ससुराल मे आई हुई नई बहू-जैसी हो रही थी।

इसी समय एक मुकदमा इनके हाथ आया। मामला 'स्माल काज़ कोर्ट' मे था। पहले दलाल ने दलाली माँगी,—इन्होने इन्कार कर दिया। मामला आसान था, एक दिन से ज्यादा का काम उसमे न था। ३०) मेहनताना उसमे मिला था पर वह भी इनसे न सधा। अदालत मे पैरवी करने गये। मुद्दालेह के वकील थे इसलिए इन्हे जिरह करनी थी पर जब यह खडे हुए तो पाव कॉपने लगे, सिर घूमने लगा। ऐसा मालूम पडा मानो सारी अदालत घूम रही है। यह बैठ गये, दलाल से कहा—"तुम दूसरा वकील कर लो।" उस दिन से इन्होने पूरी योग्यता प्राप्त किये बिना कोई मुकदमा हाथ मे न लेने का निश्चय किया। इधर यह हाल था, उधर खर्च बढता ही जाता था। अन्त मे वहाँ से निराश हो पाँच-छ महीने बाद यह फिर राजकोट लौट गये। वहाँ कुछ सिलसिला चला और अर्जियाँ लिखने का काम मिलने लगा। इससे लगभग २००) मासिक की आय होने लगी। ये अर्जियाँ भी इनकी योग्यता के कारण नही, भाई के प्रभाव से मिलती थी।

× × ×

जब इस प्रकार सिलसिला चल रहा था तो इन्हे पहली बार अग्रेज़ो की दो-रगी व्यवहार-नीति का अनुभव हुआ और दिल मे ठेस लगी। बात यह थी कि पोर-बन्दर के राणा साहब को गद्दी मिलने के पूर्व इनके

भाई उनके मत्री एव सलाहकार थे। उस समय कुछ राज्याधिकारियो ने

पहला आघात!

इनके भाई पर दोष लगाया कि वह राणा साहब को उलटी सलाह देते हैं। ये शिकायते उस समय के पोलिटिकल एजेण्ट तक भी पहुँचाई गईं और उसका रुख इनकी तरफ से खराब हो गया। गाँधीजी की इस साहब से विलायत में मुलाकात हुई थी और काफी परिचय हो गया था। इसलिए भाई ने चाहा कि वह जाकर उससे मिले। यह बात उन्हे पसन्द तो न पडी पर भाई के ज़ोर देने पर वह गये। वह लिखते हैं—"मैंने पुरानी पहचान निकाली। परन्तु मैंने तुरन्त देखा कि विलायत और काठियावाड में भेद था। हुकूमत की कुर्सी पर डटे हुए साहब और विलायत मे छुट्टी पर गये हुए साहब मे भेद था। पोलिटिकल एजेण्ट को मुलाकात तो याद आई पर साथ ही अधिक बेरुखे भी हुए। उनकी बेरुखाई मे मैंने देखा, उनकी आँखो मे मैंने पढा—उस परिचय से लाभ उठाने तो तुम यहाँ नही आये हो? यह जानते-समझते हुए भी मैंने अपना सुर छेड़ा। साहब अधीर हुए—'तुम्हारे भाई कुचक्री हैं। मै तुमसे ज्यादा बात सुनना नही चाहता। मुझे समय नही है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो तो बाकायदा अर्जी पेश करे।' यह उत्तर बस था, परन्तु गरज़ बावली होती है। मै अपनी बात कहता ही जा रहा था। साहब उठे। 'अब तुमको चला जाना चाहिए।'

मैंने कहा—'पर मेरी बात पूरी सुन लीजिए।' साहब लाल-पीले हुए—'चपरासी इसको दरवाजे के बाहर कर दो।'

'हुजूर', कहकर चपरासी दौडा आया। मेरा चर्खा अभी तक चल ही रहा था, चपरासी ने मेरा हाथ पकडा और दरवाज़े से बाहर कर दिया।

इस घटना से अग्रेजो की नीति एव अपनी पराधीनता का इन्हे बडा

कडुवा अनुभव हुआ और इस आघात ने उनके जीवन की दिशा बदलने मे बडा काम किया।

इधर यह घटना हुई, उधर काठियावाड के राज्यो का वातावरण इन्हे खलने लगा। वहाँ भीतर-भीतर नाना प्रचार के षड्यत्र चला करते। साहब से लडाई होने के बाद वकालत का द्वार भी बद हो गया क्योकि ज्यादातर मुकदमे उन्ही की अदालत मे होते थे। भाई इनके लिए किसी नौकरी की तलाश मे थे। इसी समय इनके भाई के पास पोरबन्दर की एक मेमन दुकान का सन्देशा आया "दक्षिण अफ्रीका मे हमारा व्यापार है। हमारी दुकान बडी है। वहाँ हमारा एक बडा मुकदमा चल रहा है। चालीस हज़ार पौण्ड का दावा है। मामला बहुत दिनो से चल रहा है। हमारी तरफ बडे-बडे और अच्छे बैरिस्टर है। यदि अपने भाई को वहाँ भेज दे तो हमे भी मदद मिलेगी और उनकी भी कुछ मदद हो जायगी। वह हमारा मामला हमारे वकीलो को अच्छी तरह समझा सकेगे। इसके अलावा नये देश की यात्रा भी होगी।" इस सम्बन्ध मे दादा अब्दुल्ला के हिस्सेदार सेठ अब्दुलकरीम से मिलने पर मालूम हुआ कि 'ज्यादा मेहनत का काम नही है। जाने-आने का पहले दर्जे का केराया मिलेगा, घर के बगले मे जगह मिलेगी, खाना भी मिलेगा और १०५ पौण्ड मिलेगे। एक साल का काम है।' गाधीजी ने हामी भर ली और पहले दर्जे का टिकट ले अप्रैल १८९३ मे जहाज से दक्षिण अफ्रीका को रवाना हुए।

दक्षिण अफ्रीका की यात्रा

दक्षिण अफ्रीका में

मई के अन्त मे वह नेटाल के डरबन बदर पर उतरे। उन्हे लिवाने अब्दुल्ला सेठ आये थे। जहाज़ से उतरते ही लोगो के व्यवहार को देख

वह समझ गये कि यहाँ हिन्दुस्तानियो का विशेष आदर नही है। दूसरे या तीसरे दिन अबदुल्ला सेठ इन्हे डरबन की अदालत दिखाने ले गये और कई आदमियो से परिचय करा दिया। अदालत मे अपने वकील के पास इन्हे बैठाया। मजिस्ट्रेट इन्हे कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखता रहा। फिर इनसे पगडी उतार देने को कहा। इन्होने इन्कार किया और उठकर बाहर चले आये। यहाँ भी इनके भाग्य मे लड़ाई ही लिखी थी।

पगडीवाली घटना को लेकर इन्होने अखबारो मे आन्दोलन शुरू किया। उन दिनो भारतीयो को दक्षिण अफ्रीका मे नीची निगाह से देखा जाता था (और वह बात तो आज भी है)। गाँधी को भी अग्रेज 'कुली बैरिस्टर' कहते। घटना लेकर अखबारो मे खूब चर्चा हुई। किसी ने पक्ष-समर्थन किया, किसी ने भर-पेट निन्दा की। इस प्रकार शीघ्र ही इनकी प्रसिद्धि अफ्रीका मे हो गई।

धीरे-धीरे लोगो से परिचय भी बढने लगा। डरबन के ईसाई भारतीयो के सम्पर्क मे आये। डरबन अदालत के दुभाषिया श्री पाल रोमन (जो कैथलिक थे) तथा प्रोटेस्टेण्ट मिशन के शिक्षक श्री गाडफ्रे से भी परिचय हुआ। पारसी रुस्तमजी और आदमजी मियाँ खान से भी जान-पहचान हो गई। ये लोग पहले आपस मे बहुत कम मिलते थे पर इनके प्रयत्न से अब अकसर मिलने लगे।

इसी समय दुकान के वकील का एक पत्र आया कि मुकदमे की तैयारी के लिए या तो अब्दुल्ला सेठ को प्रिटोरिया जाना चाहिए या दूसरे किसी को वहाँ भेजना चाहिए। अब्दुल्ला सेठ ने गुमाश्तो को बुलाकर कहा कि गाधी को सब मामला समझा दो। मामला समझकर यह प्रिटोरिया जाने को तैयार हो गये। बैरिस्टर गाधी के लिए रेल के पहले दर्जे का टिकट लिया गया था। सोने की जगह के लिए पाँच शिलिंग का

एक और टिकट लेना पडता था। अबदुल्ला सेठ के बहुत कहने पर भी इन्होने सोने का टिकट न लिया। रात को ९ बजे ट्रेन नेटाल की राजधानी मेरीत्सबर्ग पहुँची। उस समय का सजीव वर्णन गाँधीजी ने अपनी 'आत्म-कथा' मे किया है—"···यहाँ सोने वालो को बिछौने दिये जाते है। एक रेलवे के नौकर ने आकर पूछा—'आप बिछौना चाहते है ?' मैने कहा—'मेरे पास मेरा बिछौना है।' वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी ओर देखा। मुझे हिन्दुस्तानी देखकर चकराया। बाहर गया। और एक-दो कर्मचारियो को लेकर आया। किसी ने मुझसे कुछ न कहा। अन्त को एक अफसर आया। उसने कहा—'चलो, तुमको एक दूसरे डब्बे मे जाना होगा।' मैने कहा—'पर मेरे पास पहले दरजे का टिकट है।' उसने उत्तर दिया—'परवा नही, मै तुमसे कहता हूँ कि तुम्हे आखरी डब्बे मे बैठना होगा'—'मै कहता हूँ कि मै डरबन से इसी डब्बे मे बिठाया गया हूँ और इसी मे जाना चाहता हूँ।' अफसर बोला—'यह नही हो सकता। तुम्हे उतरना होगा और नही तो सिपाही आकर उतारेगा।' मैने कहा—'तो अच्छा, सिपाही आकर भले ही मुझे उतारे, मै अपने आप न उतरूँगा।' सिपाही आया। उसने हाथ पकडा और धक्का देकर मुझे नीचे गिरा दिया। मेरा सामान नीचे उतार लिया। मैने दूसरे डब्बे मे जाने से इन्कार किया। गाडी चल दी। मै वेटिंग रूम मे बैठा। हैंड बेग अपने साथ रक्खा। दूसरे सामान को मैने हाथ न लगाया। रेलवे वालो ने सामान कही रखवा दिया। मौसम जाडे का था। दक्षिण अफ्रीका मे ऊँची जगहो पर बडे जोर का जाडा पडता है। मेरित्सबर्ग ऊँचाई पर था—इससे खूब जाडा लगा। मेरा ओवररकोट मेरे सामान मे रह गया था। सामान मागने की हिम्मत न हुई। कही फिर बेइज्जती न हो। जाडे मे सिकुडता और ठिठुरता रहा। कमरे मे रोशनी न थी। आधी रात के

समय एक मुसाफिर आया । ऐसा जान पडा मानो वह कुछ बात करना चाहता हो,पर मेरे मन की हालत ऐसी न थी कि बाते करता । मैंने सोचा, मेरा कर्तव्य क्या है ?—'या तो मुझे अपने हको के लिए लडना चाहिए, या वापस लौट जाना चाहिए। अथवा जो बेइज्जती हो रही है, उसे बर्दाश्त करके प्रिटोरिया पहुँचूँ और मुकदमे का काम खतम करके देश चला जाऊँ। मुकदमे को अधूरा छोडकर भाग जाना तो कायरता होगी। मुझपर जो बीत रही है वह तो ऊपरी चोट है—वह तो भीतर के महारोग का बाह्य लक्षण है। यह महारोग है—वर्ण-द्वेष। यदि इस गहरी बीमारी को उखाड फेंकने का सामर्थ्य हो तो उसका उपयोग करना चाहिए। उसके लिए जो-कुछ कष्ट-दु ख सहन करने पडे, सहना चाहिए। इन अन्यायो का विरोध उसी हद तक करना चाहिए जिस हद तक उसका सम्बन्ध वर्ण-द्वेप दूर करने से हो।' ऐसा सकल्प करके मैंने, जिस तरह हो, दूसरी गाडी से आगे जाने का निश्चय किया। सुबह मैंने जनरल मैनेजर को तार-द्वारा एक लम्बी शिकायत लिख भेजी। दादा अवदुल्ला को भी समाचार भेजे। अबदुल्ला सेठ तुरत जनरल मैनेजर से मिले। जनरल मैनेजर ने अपने आदमियो का पक्ष तो लिया पर कहा कि मैंने स्टेशन मास्टर को लिखा है कि गाधी को बिला खरखशा मुकाम पर पहुँचा दो। अबदुल्ला सेठ ने मेरीत्सवर्ग के हिन्दू व्यापारियो को भी मुझसे मिलने तथा मेरा प्रबन्ध करने के लिए तार दिया तथा दूसरे स्टेशनो पर भी ऐसे तार दे दिये। इससे व्यापारी लोग स्टेशन पर मुझसे मिलने आये। उन्होने अपने पर होने वाले अन्यायो का जिक्र मुझसे किया और कहा कि आप पर जो कुछ बीता है वह कोई नई बात नही है। पहले-दूसरे दरजे मे जो हिंदुस्तानी सफर करते हैं उन्हे क्या कर्मचारी और क्या मुसाफिर दोनो सताते है।"

पर इतने से ही अपमान की कथा पूरी न हुई। मोहनदास सुबह

चार्ल्सटाउन पहुंचे। वहा से जोहान्सबर्ग तक उन दिनो ट्रेन न थी, घोडा-गाडी जाती थी और बीच में एक रात स्टैंडर्टन मे रहना पडता था। बैरिस्टर मोहनदास के पास इस घोडा-गाडी का टिकट था। एक दिन पिछड जाने से वह रद न होता था। अबदुल्ला सेठ ने भी घोडागाडी के अफसर को तार दे दिया था पर उसने इन्हे अजनबी आदमी समझकर कहा—"तुम्हारा टिकट तो रद्द हो गया है।" यह बहाना—मात्र था और इसका मतलब यह था कि गोरे मुसाफिरो के साथ इन्हे बैठाना न पडे तो अच्छा। घोडागाडी मे बाहर की तरफ कोचवान के बाये-दाये दो जगहे थी। उनमे से एक पर घोडा-गाडी कम्पनी का एक गोरा अफसर बैठता था परन्तु इन्हे गोरो के साथ न बैठाने की नीयत से वह स्वय अन्दर बैठा और इनको बाहर बैठाया। इसमे अपमान का अनुभव तो हुआ पर उस समय झगडा करने मे कोई लाभ न देख, वह वही बैठ गये।

जले पर नमक

पर आगे और अपमान बदा था। रात को तीन बजे के लगभग उस गोरे अफसर को बाहर (जहाँ यह बैठे थे) बैठकर सिगरेट पीने की इच्छा हुई। उसने इन्हे पाव रखने के तख्ते पर बैठने को कहा। यह अपमान इनसे सहन न हुआ। इन्होने विरोध किया। इसपर उसने कई थप्पड मारे और हाथ पकडकर नीचे खीचने लगा। अन्दर के यात्रियो को कुछ दया आई। उनके झिडकने पर गुर्राता हुआ वह बैठ गया।

रात को स्टेण्डर्टन पहुँचे। वहाँ ईसा सेठ (इन्हे अबदुल्ला सेठ ने तार दिया था) के आदमी आये थे। वह इन्हे दुकान पर ले गये। इन्होने ईसा सेठ इत्यादि से सारी घटना सुनाई। उन लोगो को दु ख हुआ। पर उन्होने ऐसी कई घटनाएँ सुनाकर आश्वासन दिया। उसके बाद गाँधी ने घोडा-गाडी कम्पनी के एजेण्ट को चिट्ठी लिखी। उसने सदेशा भेजा

कि यहाँ से बड़ी घोड़ा-गाड़ी जाती है। आपको उसमे सबके साथ ही जगह दी जायगी। खैर, वहाँ से चलकर रात को जोहान्सबर्ग पहुँचे। स्टैण्ड पर मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन का आदमी तो आया था पर इन्होने उसे न पहचाना, न उसने पहचाना। वह लौट गया। यह एक होटल मे पहुँचे पर मैनेजर ने कहा—"खेद है, सब कमरे भरे हुए है।" उसके बाद यह गाडी करके सेठ कमरुद्दीन की दुकान पर आये और उनसे होटल की बात कही। वे लोग हँसे और इन्हे बताया कि 'गोरे लोग अपने होटलो मे हमे जगह नही देते। यहाँ वर्ण-द्वेष बडा ज़बर्दस्त है। आप कल प्रिटोरिया जायँगे पर हम लोगो को पहले-दूसरे दर्जे के टिकट ही नही देते। आपको तीसरे दर्जे मे जाना पडेगा।" इन्होने मँगाकर रेल के कानून-कायदे देखे। उसमे ऐसी कोई रोक न मिली। तब इन्होने पहले दर्जे में ही जाने का निश्चय प्रकट किया। स्टेशन मास्टर को चिट्ठी लिखी कि 'मै बैरिस्टर हूँ,—सदा पहले दर्जे मे सफर करने का आदी हूँ। आशा है मुझे टिकट मिल जायगा। मै स्वय स्टेशन पर आपसे मिलूँगा।'

उचित समय पर यह अंग्रेजी भेष-भूषा मे स्टेशन पहुँचे। इनकी बातो से स्टेशन मास्टर को दया आई। उसने इनके साथ सहानुभूति प्रकट की और इस शर्त पर टिकट दिया कि यदि रास्ते मे गार्ड उतार दे तो आप रेलवे कम्पनी पर दावा न करे। यह धन्यवाद देकर पहले दर्जे मे जा बैठे। कुछ समय बाद गार्ड टिकट देखने आया और इन्हे देखते ही झल्लाया और असभ्य भाषा मे तीसरे दर्जे मे जाने के लिए कहने लगा। इन्होने टिकट दिखाया, विरोध किया पर उसने कहा—'टिकट है तो क्या ? तुझे तीसरे दर्जे मे बैठना पडेगा।' इस डब्बे मे एक ही अंग्रेज़ यात्री थे। उन्होने गार्ड को डाँटा और इनसे आराम के साथ बैठने को कहा। गार्ड यह कहता और

घूँट-पर-घूँट

भुन-भुनाता चला गया कि 'तुझे कुली के साथ बैठना हो तो बैठ। मेरा क्या?'

राम-राम करके रात को आठ बजे प्रिटोरिया पहुँचे और एक अमेरिकन होटल मे रात बिताई। दूसरे दिन अवदुल्ला सेठ के वकील श्री वेकर से मिले और उनकी सहायता से ३५ शिलिंग प्रति सप्ताह पर एक बाई के घर पर रहने का इन्तजाम हो गया। यह वेकर साहब कट्टर पादरी भी थे। इनका एक प्रार्थना-समाज था। श्री वेकर ने ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने के विचार से इनको भी इसमे बुलाया। गाधी की मुक्ति और मार्ग-प्रदर्शन के लिए सबने प्रार्थना की। धीरे-धीरे यहाँ कुमारी हैरिस, गेब एव मि० कोट्स से परिचय हुआ। दोनो महिलएँ साथ रहती थी। उन्होने हर रविवार को ४ बजे चाय पीने के लिए अपने यहा इन्हे निमन्त्रित करना शुरू किया। ये सब गाँधी को ईसाई बनाने के फेर मे थे। श्री कोट्स ईसा एव ईसाई धर्म-सम्बन्धी अनेक पुस्तके इन्हे पढने को देते।

भारतीयो से परिचय

प्रिटोरिया के भारतीयो मे सेठ तैयब हाजी खान मुहम्मद की बडी प्रतिष्ठा थी। नेटाल मे जो स्थान दादा अब्दुल्ला का था वही प्रिटोरिया मे उनका था। उनके बिना वहाँ कोई सार्वजनिक काम न हो सकता था। उन्होने खुशी से गाँधी को सहायता देना स्वीकार किया।

उनकी तथा अन्य भाइयो की सहायता से इन्होने भारतीयो की एक सभा की जिसमे उन्हे समझाया कि "व्यापार मे भी सत्य को न छोडना चाहिए। विदेश मे आपको देखकर, भारतीय सभ्यता का अन्दाज लगाया जाता है इसलिए अपनी जिम्मेदारी और बडी है।" इसके अलावा इस सभा मे गन्दगी दूर करने और हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, गुजराती, मद्रासी, पजाबी, सिंधी इत्यादि का भेद भुला देने की भी अपील की और सुझाया कि एक मण्डल की स्थापना करके भारतीयो के दु ख-कष्ट का

उपाय अधिकारियो से मिलकर एव प्रार्थना-पत्र इत्यादि के द्वारा करना चाहिए। बाद मे नियमित रूप से भारतीयो की सभा होने लगी। इसमे परस्पर सलाह-मशविरे होते। धीरे-धीरे प्रिटोरिया के प्राय समस्त भारतीयो से इनका परिचय हो गया। भारतीयो की स्थिति का भी पूरा ज्ञान हुआ। ब्रिटिश एजेण्ट से मिले, उन्होने आश्वासन दिया। रेलवे अधिकारियो से भी गाधी ने लिखा-पढी की और उन्हे दिखाया कि हिंदुस्तानियो की यात्रा में जो रुकावटे डाली जाती हैं वे उनके ही नियमो के अनुसार वेजा है। इसके उत्तर में पत्र मिला कि साफ-सुथरे और अच्छे कपड़े पहननेवाले भारतीयो को ऊपर के दर्जे के टिकट दिये जायँगे। इससे समस्या हल तो न हुई पर कुछ सुविधा हुई।

× × × ×

भारतीयो की दुर्दशा

'आरेज फ्री स्टेट' मे १८८३ के पहले एक कानून बनाकर भारतीयो के तमाम अधिकार छीन लिए गये थे। सिर्फ होटल मे 'वेटर' बनकर रहने या इसी प्रकार की छोटी मेहनत-मंजूरी करते रहने का अधिकार रह गया था। भारतीय व्यापारियो को नाम-मात्र का मुआवजा देकर वहाँ से हटा दिया गया। उनके आवेदन-पत्र रद्दी की टोकरी मे फेक दिये गये। इसी प्रकार १८८५ ई० मे ट्रासवाल मे भी कडा कानून वनाया गया। विरोध करने पर १८८६ ई० मे उसमे कुछ सुधार हुआ और नियम वना कि प्रवेश फीस के तौर पर प्रत्येक हिन्दुस्तानी ३ पौंड दे। उनके लिए जमीन पर मालकी पाने का अधिकार कुछ निश्चित हिस्सो मे ही रक्खा गया। पर व्यवहार मे ये सुविधाएँ भी न मिलती थीं। मताधिकार किसी को कुछ न था। भारतवासी 'फुटपाथ' (पगडण्डी) पर न चल सकते थे, रात को ९ बजे के वाद विना परवाने के वाहर न निकल सकते थे।

इधर गाँधी रात को देर तक कोट्स के साथ घूमते थे। इसमे पुलिस से झडप होने का डर रहता ही था इसलिए श्री कोट्स ने इन्हे सरकारी वकील डा० क्राउजे से मिलाया। वह और गाँधी एक ही 'इन' के बैरिस्टर निकले। यह बात कि ९ बजे रात के बाद निकलने के लिए गाँधी को परवाने की जरूरत है, उन्हे अनुचित मालूम पडी और उन्होने अपनी तरफ से एक पत्र दे दिया कि पत्रवाहक को हर समय कही भी जाने का अधिकार है, पुलिस इन्हे न रोके। डा० क्राउजे एव उनके भाई (जो जोहान्सबर्ग के पब्लिक प्रासीक्यूटर थे) से धीरे-धीरे अच्छा परिचय होगया।

मुकदमे में समझौता

जिस मामले को लेकर यह दक्षिण अफ्रीका आये थे, इसका इन्होने गहरा अध्ययन किया। दोनो पक्ष के कागज-पत्र देखे। इससे इन्हे निश्चय हो गया कि उनके मुवक्किल का पक्ष बहुत मजबूत है। पर इनमे स्वार्थ-भाव तो था नही, यह दिल से दोनो पक्षो का हित चाहते थे। इन्होने देखा कि मुकदमे मे दोनो पक्ष उजड जायँगे। इसलिए यह विपक्ष के तैयब सेठ से मिले, उन्हे बहुत समझाया। अन्त मे मामला पचायत मे गया और वहाँ फैसला हुआ उसे दोनो पक्षो ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। इस सफलता से गाधी को बडी प्रसन्नता हुई। इन्होने समझ लिया कि वकील का काम टके कमाना नही, दोनो पक्षो के बीच पडी खाई को पाट देना है।

× × × ×

धार्मिक मंथन

उधर मि० बेकर तथा अन्य ईसाई मित्र इन्हे ईसाई बनाने पर तुले थे। पर उनकी बताई ईसाई धर्म की अनेक बातो पर इन्हे शका होती थी। वह ईसा को महात्मा मानते थे पर चमत्कारी जीव न मान सकते थे और न यही मान सकते थे कि वही ईश्वर के एक-मात्र पुत्र है। इधर हिन्दूधर्म की कई कुरीतियो के

विषय मे भी इनका सशय बढ रहा था। इसे दूर करने के लिए इन्होने रायचन्द भाई की शरण ली। उन्होने इन्हे धीरज के साथ हिन्दूधर्म का अध्ययन करने की सलाह दी ओर लिखा कि 'हिन्दूधर्म मे जो सूक्ष्म और गूढ विचार है, जो आत्म-निरीक्षण और दया है, वह दूसरे धर्म मे नही है।' उधर मेटलैण्ड, एना किग्मफर्ड एव टालसटाय के साहित्य से ईसाई धर्म-सम्बन्धी इनकी शकाओ को पुष्टि मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-धर्म पर धीरे-धीरे इनकी श्रद्धा वढ चली और आगे जाकर उसके आन्तरिक रहस्यो का भी इन्होने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया पर ईसाई एव मुसलमान धर्म की कई वातो का इनपर अच्छा प्रभाव पडा। इस-लिए इनमे सब धर्मो के प्रति आदर का भी भाव रहा और आज तो वह वहुत बडे परिमाण एव दिव्य-रूप मे वर्त्तमान है।

× × × ×

दोनो दलो मे समझौता हो जाने के वाद यह डरवन गये और वहाँ से भारतवर्ष लौटने की तैयारी की। पर इसी समय नेटाल धारासभा मे हिन्दुस्तानियो का मताधिकार छीनने के लिए पेश होनेवाले कानून के वारे मे आन्दोलन करने के लिए, मित्रो की सलाह से, रुक गये।

भारतीयोमें जागरण का आरम्भ

सवसे पहले हाजी महम्मद दादा के सभापतित्व मे अवदुल्ला सेठ के मकान पर एक सभा की गई। इस सभा मे नेटाल मे जन्मे सभी प्रकार के हिन्दुस्तानी—ईसाई भी—वुलाये गये थे। डरवन की अदालत के दुभाषिया श्री पाल और मिशन स्कूल के हेडमास्टर श्री गाडफ्रे तथा उनके साथ वहुतेरे ईसाई नवयुवक आये। प्राय सभी प्रतिष्ठित व्यापारी मौजूद थे। इस सभा मे फ्रेंचाइज़ विल के विरोध का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और लोगो ने स्वयंसेवको मे अपना नाम लिखाया। धारा-सभा के अध्यक्ष, मुख्य प्रधान

सर जान राबिंसन और मि० एस्कम्ब को तार दिये गये कि वे बिल पर आगे विचार स्थगित कर दे। तार का जवाब मिला कि बिल पर चर्चा दो दिन तक स्थगित रहेगी। इससे लोगो को खुशी हुई। दरख्वास्त का मस्विदा तैयार हुआ। उसकी तीन प्रतियाँ भेजी जाने को थी। एक प्रति अखबारो के लिए भी तैयार करनी थी। उसपर अधिक से अधिक सहियाँ लेनी थी और यह सब काम रात-भर मे पूरा करना था। व्यापारी तथा दूसरे स्वयसेवक सारी रात जगे। दर्ख्वास्त गई, अखबारो मे छपी। उसपर अनुकूल टिप्पणियाँ भी हुई। धारा-सभा मे भी उसकी खूब चर्चा हुई। किन्तु इतने पर भी बिल तो पास हो ही गया।

यह तो होना ही था पर तने आन्दोलन से हिन्दुस्तानियो मे नया जीवन आ गया। भेद-भाव मिट गये। सबने समझा कि हम सबका समाज एक है, हम सब हिन्दुस्तानी है और राष्ट्रीय अधिकारो के लिए मिल-जुलकर लडना हमारा धर्म है।

बिल पास होने के बाद यह निश्चय किया गया कि एक भारी दर्ख्वास्त लिखकर अधिक से अधिक सहियो के साथ उपनिवेश-मत्री लार्ड रिपन को भेजी जाय। काम शुरू हुआ दर्ख्वास्त पर लगभग दस हजार आदमियो के हस्ताक्षर हुए। उसकी एक हजार कापियाँ छपाकर हिन्दुस्तान के अनेक अखबारो एव नेताओ के पास भेजी गई। विलायत मे भी उसकी नकले सब दल के नेताओ के पास भेजी गई। भारत मे 'टाइम्स ऑव् इण्डिया' तथा इग्लैण्ड मे 'टाइम्स'—जैसे पत्रो ने उसका समर्थन किया। इससे बिल के स्वीकृत न होने की आशा बँधी। अब लोगो ने इन पर वही रह जाने के लिए जोर डालना शुरू किया। पर खर्च का क्या हो? लोगो ने इनका सारा व्यक्तिगत खर्च उठाने का आश्वासन दिया पर इन्होने सार्वजनिक सेवा

प्रार्थनापत्र और प्रचार

के लिए निजी सहायता लेना अस्वीकार कर दिया। अन्त मे प्रस्ताव हुआ कि मुकदमे दिलाने का प्रबन्ध कर दिया जाय और उससे यह अपना खर्च निकाल ले। सबको यह बात स्वीकार हुई और यह वही रह गये।

वकालत

टिकने के बाद नेटाल की अदालत मे वकालत की सनद के लिए इन्होने दर्ख्वास्त दी। उस समय वर्ण-द्वेष इतना जबर्दस्त था और गोरे भारतीयो को इतनी हिकारत की निगाह से देखते थे कि वकील-सभा ने इनकी दर्ख्वास्त का बडा विरोध किया पर अदालत ने उनका विरोध न मानकर वकीलो की सूची मे इनका नाम लिख लिया। वकील-सभा के विरोध ने इनके लिए विज्ञापन का काम किया। कितने ही अखबारो ने इनके खिलाफ उठाये गये गोरो के विरोध की निन्दा की और वकीलो पर ईर्ष्या का इलजाम लगाया। इस प्रसिद्धि से इनका आगे का काम सरल हो गया।

पर वकालत की व्यवस्था तो जीविका के लिए थी। असल काम तो भारतीयो की सेवा और सगठन का था। इसके लिए मई १८९४ ई० मे 'नेटाल इण्डियन कॉंग्रेस' की स्थापना हुई। इसमे समय-समय पर लोग इकट्ठे होते, परस्पर चर्चा एव विचार-विनिमय होता। प्रचार के उद्देश्य से गाधी ने दो पुस्तिकाएँ लिखी। पहली मे दक्षिण अफ्रीका के प्रत्येक अग्रेज से अपील की गई थी और भारतीयो की स्थिति बताई गई थी। दूसरी मे भारतीय मताधिकार के लिए अपील थी। इनका अच्छा असर हुआ। कई अग्रेजो को सहानुभूति इस कार्य मे प्राप्त हुई तथा हिन्दुस्तान मे सब दलो की ओर से मदद मिली।

'नेटाल इण्डियन कॉंग्रेस' की स्थापना

× × ×

नेटाल इण्डियन कॉंग्रेस का आरम्भ तो हुआ पर अभी तक उसमे बडे-

बडे व्यापारी, क्लर्क या शिक्षित युवक ही शामिल हुए थे। मजूर या

मजूरों से सम्पर्क

'गिरमिटिया' (जो एग्रीमेण्ट करके मजूरी के लिए लाये गये हो, —'एग्रीमेण्ट' से बिगड कर ही गिरमिटिया' शब्द वन गया) न आये थे। पर ईश्वर की कृपा से ऐसा अवसर अपने-आप आ गया। एक दिन बाला सुन्दरम् नामक एक मद्रासी गिरमिटिया रोता-पीटता इनके पास आया। उसके मुँह से खून वह रहा था। उसके गोरे मालिक ने उसे इतनी बेदर्दी से पीटा था कि दो दॉत टूट गये थे। गाधी ने डाक्टर से सार्टिफिकेट लेकर मामला अदालत मे भेज दिया। मजिस्ट्रेट ने मालिक को तलव किया पर गाधी उसे सजा दिलाना न चाहते थे, वह सिर्फ उस नौकर को उस गोरे की गुलामी से छुडाना चाहते थे। उस समय के कानून के अनुसार बिना उसकी रजामन्दी के या बिना गिरमिटिया अफसर-द्वारा लाइसेस रद हुए वह नौकरी न छोड सकता था। यह उस गोरे से मिले, वह तो सजा से बचना चाहता ही था इसलिए उसने इनकी बात मजूर कर ली। इन्होने बाला सुन्दरम् को एक दूसरे अग्रेज के यहाँ नौकर रखवा दिया। इस घटना से गिरिमिटियो मे खूब हलचल फैली। गाधी के दफ्तर मे उनकी भीड रहने लगी और इन्हे उनके सम्पर्क आने का मौका मिला।

इसी समय एक दूसरी समस्या आखडी हुई। १८९४ ई० मे नेटाल-सरकार ने गिरमिटिया भारतीयो पर प्रतिवर्ष २५ पौण्ड (३७५ रु०) का कर लगाने का बिल तैयार किया।[1] यह अन्याय की सीमा थी।

१ असल में यह सब भारतीयो को दक्षिण-अफ्रीका से नेस्तनाबूद करने की योजना थी। बात यह है कि १८६० के लगभग जब गोरो ने देखा कि नेटाल में गन्ने की अच्छी खेती हो सकती है तो भारत-सरकार से लिखा-पढ़ी करके हिन्दुस्तानी मजूरो को नेटाल ले जाने की इजाजत

'कॉंग्रेस' मे आदोलन करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। उधर भारत के वायसराय लार्ड एलगिन के सामने जब नेटाल-सरकार ने यह तजवीज़ रखी तो उन्होंने २५ पौण्ड का कर घटाकर ३ पौण्ड कर दिया। यह ३ पौण्ड भी इन मजूरो के लिए बहुत था। इसलिए आदोलन शिथिल न हुआ और आगे जाकर उसने सत्याग्रह का वह रूप धारण किया जो प्रवासी भारतीयो के इतिहास मे अत्यन्त गौरवप्रद स्थान पावेगा।

दक्षिण अफ्रिका मे गांधी का काम बढ़ता ही जाता था इसलिए उन्होंने स्त्री-पुत्र को भी वहाँ लाने का निश्चय किया। साथ ही भारत मे ३ पौण्ड के कर के बारे मे भी आन्दोलन करना था।

भारत में

इसलिए १८९६ के मध्य मे वह 'पैगोला' जहाज़ से कलकत्ता को रवाना हुए। कलकत्ता से बम्बई जाते समय प्रयाग में 'पायो·

प्राप्त कर लो। उन्हे लालच दिया कि पॉच साल तक तो तुम्हे हमारे यहाँ काम करना पड़ेगा, बाद में आज़ाद हो; शौक से नेटाल में रहो। उन्हे ज़मीन की मालकी का पूरा हक था। भारतीय कुलियो ने अपने परिश्रम से नेटाल की भूमि को हरा-भरा कर दिया। तरह-तरह की शाक-तरकारियॉं बोईं, आम लगाये; दूसरे फल पैदा किये। उन्होंने जमीने खरीदीं; बाद में व्यापार भी करने लगे। इससे गोरे व्यापारी चौंके। वे व्यापार में भारतीयो की प्रतिद्वंद्विता सहन न कर सकते थे। इसीलिए एक ओर मताधिकार छीन लेने और दूसरी ओर कर लगाने के रूप में यह विरोध प्रकट हुआ। करवाले बिल की मुख्य धाराएँ ये थीं--(१) मज-दूरी का इकरार पूरा होने पर गिरमिटिया हिन्दुस्तान लौट जाय (२) दो-दो वर्ष की गिरमिट (एग्रीमेण्ट) नये सिरे से कराता रहे और ऐसी हर गिरमिट में उसके वेतन में कुछ वृद्धि होती रहे (३) यदि भारत वापस न जाय और फिर मजूरी का इकरार भी न करे तो हर साल २५ पौण्ड का कर दे।

नियर' के सहायक सम्पादक श्री चेजनी से मिले। यद्यपि 'पायोनियर' साधारणत भारतीय आकाक्षाओ का विरोधी था पर सम्पादक ने वचन दिया कि 'जो-कुछ आप लिखेंगे, मैं उस पर तुरन्त टिप्पणी करूगा।' इसके वाद यह वम्वई जाते हुए राजकोट गये। वहाँ एक पुस्तक लिखी जिसमे दक्षिण-अफ्रिका के भारतीयो की स्थिति का चित्र था। आवरण पृष्ठ हरे रग का होने के कारण यह 'हरी पुस्तक' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसकी दस हजार प्रतियाँ छपवाई गई थी और भारत के प्राय सभी समाचारपत्रो एव प्रतिष्ठित आदमियो के पास भेजी गई थी। 'पायोनियर' ने सवसे पहले उसपर लेख प्रकाशित किया जिसका असर विलायत एव नेटाल मे भी हुआ। प्राय सभी पत्रो ने टीका-टिप्पणी की।

इस सिलसिले में यह वम्वई, पूना, मद्रास गये। सब दल के नेताओ से मिले। फीरोजशाह मेहता, लोकमान्य, गोखले इत्यादि से काफी सहायता मिली। सभाएँ हुई। प्रचार हुआ। दक्षिण अफ्रिका मे मद्रासी अधिक हैं इसलिए मद्रास में तो वडा उत्साह पैदा हुआ। वहाँ उम 'हरी पुस्तक' की १० हजार प्रतियाँ और छपाई गई। 'मद्रास स्टैण्डर्ड' पत्र ने इस कार्य मे वडी सहायता की।

मद्रास से यह कलकत्ता गये। वहाँ सुरेन्द्रनाथ, राजा सर प्यारी मोहन मुकर्जी एव महाराजा टागौर से मिले। पर इन लोगो ने कुछ ध्यान न दिया। 'अमृत वाज़ार पत्रिका' एव 'वगवासी' वालो ने तो अपमान-जनक व्यवहार भी किया। पर जहाँ हिन्दुस्तानी क्षेत्र में सहायता न मिली, वहाँ अग्रेजो की सहायता सहज ही प्राप्त हुई। 'स्टेट्समैन' एव 'इग्लिश-मैन' के सम्पादको से मिले। उन्होने अपने पत्रो मे इनके साथ हुई लम्बी वात-चीत छापी। 'इग्लिशमैन' के श्री साण्डर्स ने तो कहा कि आप मेरे पत्र का यथेच्छ उपयोग कर सकते हैं। उन्होने अपने अग्रलेख मे कमी-वेशी

करने की छूट भी इन्हे दे दी । उन्होने सदा अपना वादा निबाहा।

जब यह इस प्रकार प्रचार-कार्य मे लगे हुए थे तब एक दिन इन्हे डरबन से तार मिला—"पार्लमेण्ट की बैठक जनवरी मे होगी; जल्दी आइए।" दादा अब्दुल्ला ने स्वय 'कुरलैण्ड' जहाज खरीद लिया था। इसी जहाज से १८९६ की दिसम्बर के आरम्भ मे अपनी धर्मपत्नी, दो बच्चो एव स्वर्गीय बहनोई के एकलौते पुत्र को लेकर यह दूसरी बार दक्षिण-अफ्रिका को रवाना हुए। इस जहाज़ के साथ 'नादरी' नामक एक और भी जहाज़ था, जिसके एजेण्ट दादा अब्दुल्ला थे। इनमे लगभग ८०० यात्री थे।

फिर दक्षिण अफ्रिका की ओर

१८ या १९ दिसम्बर को दोनो जहाज डरबन बन्दर पर पहुँचे। लगर डाला। उन दिनो बन्दरगाहो पर यात्रियो की कडी डाक्टरी जाँच होती थी। इन जहाजो पर भी डाक्टर आये। जाँच की और कहा—"अभी मुसाफिर पाँच दिन जहाज़ पर ही रहेगे क्योकि बम्बई से चलते समय सम्भव है ये प्लेग के कीटाणु साथ लाये हो। इसके लिए २३ दिन तक सूतक रखना ही चाहिए। अभी १८ ही दिन हुए है।'

परन्तु यह सब तो बहाना था। असल बात यह थी कि गाधी के भारत मे किये आन्दोलन की अधूरी खबरे पढ-पढकर गोरे बिगड खडे हुए थे। जगह-जगह उनकी बडी सभाएँ हो रही थी। वे दादा अब्दुल्ला को धमकियाँ दे रहे थे। जहाज़ भारत को लौटा देने पर उसका सारा खर्च देने को तैयार थे। यात्रियो को भी धमकियाँ दी जा रही थी। उनका कहना था कि गाधी ने हिन्दुस्तान मे हमारी अनुचित निन्दा की है। दूसरे वह नेटाल को हिन्दुस्तानियो से भर देना चाहता है इसलिए इतने आदमी जहाज़ मे भर लाया है। पर ये दोनो बाते झूठी थी। इसलिए गाधी अविचल रहे

गोरों का तूफानी विरोध

और मुसाफिरो को ढाढस बँधाया। अन्त को २३ दिन के बाद १३ जनवरी को मुसाफिरो को उतरने की आज्ञा मिल गई। मुसाफिर उतरे पर सरकारी वकील श्री एस्कव ने कप्तान को कहला दिया कि गाधी तथा उनके बाल-बच्चो को शाम को उतारना क्योकि गोरे इस समय बहुत बिगडे हुए है और उनकी जान का खतरा है। पर बाद मे दादा अब्दुल्ला के वकील श्री लाटन आये और उन्होने कहा कि इस प्रकार गुप-चुप जाना उचित न होगा, फिर गोरे भी बिखर गये है। उनकी सलाह से गाधी ने धर्मपत्नी एव बच्चो को गाडी मे रुस्तम सेठ के घर भेजा और स्वय श्री लाटन के साथ पैदल चले।

पर कुछ छोकरो ने इन्हे पहचान लिया और 'गाधी-गाधी' चिल्लाने लगे। धीरे-धीरे भीड बढती गई। उनमे श्री लाटन अलग पड गये और

मार

इनपर ककर और सडे अण्डे बरसने लगे। बाद मे किसीने पगडी गिरा दी और लातो एव थप्पडो की मार शुरू हुई। गाधी को चक्कर आने लगा। इतने मे ही पुलिस सुपरिं-टेण्डेण्ट श्री अलेकजेण्डर की पत्नी उधर से निकली। वह इन्हे पहचानती थी। देखते ही इनके पास आ गई एव अपना छाता इनपर तान दिया। इससे भीड कुछ रुकी। इसी समय, किसी हिन्दुस्तानी के खबर देने पर, पुलिस की एक टुकडी इनकी रक्षा के लिए आ गई। उसकी हिफाजत मे यह पारसी रुस्तमजी के घर पहुँचे। वहाँ इनका इलाज किया गया। पर गोरे तो बहुत उत्तेजित हो गये थे। उन्होने घर को घेर लिया। मौका बेढब देख पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री अलेकजेण्डर वहाँ पहुँच गये और इन्हे गुप्त सन्देशा भेजा कि इस समय आप वेश बदलकर घर से निकल जायँ, नही तो आपके साथ आपके मित्र के जानोमाल को खतरा है। ऐसा ही किया गया। यह वेश बदलकर थाने मे चले गये। पीछे शिकार

निकल जाने की बात मालूम होने पर भीड तितर-बितर हो गई।

इस घटना के बाद स्व० श्री चेम्बरलेन ने नेटाल-सरकार को तार दिया कि गाधी पर हमला करनेवालो पर मुकदमा चलाया जाय। श्री

क्षमा-भाव

एस्कम्ब ने इन्हे बुलाकर यह सदेश दिया। पर गाधी ने कहा—'इसमे बेचारे गोरो का क्या दोष है ? वे झूठी खबरो से उत्तेजित किये गये थे। जब उन्हे अपनी भूल मालूम होगी तो आप पश्चाताप करेगे। मै उनपर मुकदमा नही चलाना चाहता।' इसी आशय का पत्र भी लिखकर उन्होने दे दिया। इस स्थान पर इन्होने अपनी अहिंसा एव क्षमा-वृत्ति का अपूर्व परिचय दिया। और इसका अग्रेजो पर अच्छा प्रभाव पडा। गोरो को शर्मिन्दा होना पडा। अखबारो ने गाधी को निर्दोष बताया और हुल्लडकारियो की निन्दा की।

तीन-चार दिन मे फिर सब काम-काज ठीक तौर से चलने लगा। यह घर आ गये। इस घटना के कारण इनकी वकालत भी चमक गई।

दो बिल

परन्तु इससे जहाँ हिन्दुस्तानियो की प्रतिष्ठा बढी वहाँ उनके प्रति गोरो का भय और रोष बढ़ गया। इसी समय नेटाल की धारा-सभा में दो और बिल पेश हुए। इनमें से एक से भारतीयो के व्यापार-धन्धो को गहरी हानि पहुँचनेवाली थी और दूसरे से उनके नेटाल आने-जाने मे बाधा पडती थी। इस सम्बन्ध मे भी गाँधी ने बहुत आन्दोलन किया। विलायत तक मामला गया पर बिल तो स्वीकृत हो ही गये।

इन झगडो के कारण जो बेदारी आई उससे 'नेटाल इण्डियन काग्रेस' का कार्य खूब बढ गया। रुपये भी काफी आ गये और उसका अपना मकान भी हो गया। ज्यो-ज्यो कार्य बढता गया, इनका अधिक समय सार्वजनिक कामो में जाने लगा। इससे तथा धार्मिक चिंतन से इनके

अन्दर यह भाव पैदा हुआ कि सेवा एव विषयासक्ति मे परस्पर घोर

दाम्पत्य जीवन में पवित्रता

विरोध है। इसलिए पति-पत्नी-सम्बन्ध मे दिन-दिन विषय-भोग को हटाने की ओर इनका ध्यान गया और इधर प्रयत्नशील हुए। इसी सिलसिले मे भोजन मे भी सादगी लाने का निश्चय हुआ क्योंकि ब्रह्मचर्य का अस्वाद ने घनिष्ट सम्बन्ध है। इसके साथ ही स्वावलम्बन का भाव भी आया और धोबी, नाई इत्यादि के काम घर में ही अपने हाथो कर लेने का भाव पैदा हुआ। इस तरह एक ओर सार्वजनिक सेवा को और दूसरी ओर पवित्रता एव सादगी को जीवन में प्रधानता मिलने लगी। डा० बूथ की देखरेख मे दो घण्टे रोज नियमित रूप से रोगियो को दवा देने इत्यादि का काम भी करने लगे। इससे रोगियो की सेवा एव परिचर्या-प्रणाली का इनको अच्छा अनुभव हुआ जो आगे चलकर इनके कार्य में सहायक हुआ।

बोअर-युद्ध

इसी समय (१८९७-९९) बोअर[1] युद्ध छिड गया। अबतक ब्रिटिश शासन की न्यायपूर्णता में गाधीजी का विश्वास बना था। इसलिए जितने साथी मिल सके उनको लेकर घायलो की सेवा-शुश्रूषा करनेवाली एक टुकडी इन्होने तैयार की। डा० बूथ ने आवश्यक शिक्षा लोगो को दी तथा डाक्टरी प्रमाणपत्र भी दिला दिये। उस समय तक अग्रेज़ो की धारणा थी कि हिन्दुस्तानी जोखम के कामो मे नही पडते। इसलिए भी गाधी को इस समय कुछ करने की बात ज्यादा अपील कर गई। सरकार ने भी अपने सकट के समय यह सहायता स्वीकार करली।

स टुकडी में लगभग ११०० आदमी थे। उस समय इस टुकडी के सेवा-कार्य की बडी प्रशसा हुई। जेनरल बुलर ने अपने खरीते मे

१. दक्षिण अफ्रीका के डच।

इसकी प्रशसा की। मुखियो को लडाई के तमगे भी मिले और हिन्दुस्तानियो की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। गोरो के व्यवहार मे भी कुछ अन्तर आया।

× × × ×

दक्षिण-अफ्रिका के भारतीयो पर गन्दगी का आरोप प्राय लगाया जाता था। जब डरबन मे प्लेग का प्रवेश और प्रकोप हुआ तब इन्होंने म्युनिसिपलिटी की सम्मति से इस विषय मे वडा काम किया। दिन-दिन इनमे शुद्ध सेवा का भाव बढता जा रहा था और ज्यो-ज्यो सेवा का भाव बढा त्यो-त्यो सत्य का रूप मन मे स्पष्ट होता गया, त्याग की भावना तीव्र होती गई।

अन्य सेवाएँ

युद्ध का काम समाप्त होने पर इन्होने भारत लौटने का निश्चय किया पर लोगो ने इस शर्त्त पर इन्हे छुट्टी दी कि 'यदि एक साल के अन्दर फिर आवश्यकता पडी तो यहा लौटना पडेगा।' इस समय भेंट मे इन्हे तथा पत्नी को हीरा-जवाहर सोना-चादी इत्यादि की अनेक कीमती चीज़े (विदाई के) उपहार में मिली। इनके मन मे यह प्रश्न पैदा हुआ कि ये चीजे सार्वजनिक सेवा के बदले मिली है इसलिए इन्हे लेने का हमे क्या हक है ? रात-भर इनके मन मे सघर्ष चलता रहा। अन्त मे सत्य का प्रकाश मन मे आया। सत्य की विजय हुई। इन्होने इन चीजो को न लेने का ही निश्चय किया और ट्रस्ट बनाकर वह सारी रकम एव चीज़े उन्होने सार्वजनिक सेवा के लिए दे दी। पत्नी ने उस समय विरोध भी किया पर यह सत्य के मार्ग पर दृढ रहे। तब से इनका यह निश्चित मत हो गया कि जन-सेवक को जो भेंटे मिलती है वे उसकी निजी नही हो सकती।

त्याग की प्यास

इस तरह १९०१ ई० मे यह भारत लौटे। रास्ते मे मारीशश में

उतरकर वहा के भारतीयो की अवस्था का भी अध्ययन किया और वहा के गवर्नर सर चार्ल्स ब्रूस के यहाँ भी एक दिन मेहमान रहे।

भारत-यात्रा

देश पहुँचने पर कुछ दिन घूमने-घामने मे बीते। इस साल काँग्रेस (भारतीय महासभा) कलकत्ता मे होनेवाली थी। श्री वाचा सभापति थे। यह दो-तीन दिन पहले ही कलकत्ता पहुँच गये और बिना अपना परिचय दिये काँग्रेस आफिस मे क्लर्क का काम करने लगे। पीछे उनका परिचय मिलने पर मत्री (घोषाल बाबू) बहुत शर्मिन्दा हुए थे पर इन्हे तो सेवा-कार्य प्रिय था। यहाँ तक कि स्वयसेवको को 'छोटे' काम करने मे घृणा करते देख काँग्रेस मे दो-तीन बार पाखाने उठाकर भी वहाँ की गन्दगी इन्होने साफ की थी। यहाँ काग्रेस-तन्त्र का इनको काफी अनुभव हुआ एव काँग्रेस की अव्यवस्था और त्याग-वृत्ति के अभाव पर दु ख भी हुआ। इनके प्रयत्न से दक्षिण अफ्रिका के भारतीयो के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव काँग्रेस मे सर्वसम्मति से पास हुआ। काँग्रेस अधिवेशन के बाद भी दक्षिण-अफ्रिका के काम से यह एक महीना कलकत्ता ठहर गये। गोखले भी वहाँ ठहरे थे इसलिए मालूम होने पर उन्होने इन्हे अपने पास बुला लिया और बडे प्रेम से अपने छोटे भाई की तरह रखा। गाधी के स्वावलम्बन, सादगी एव उद्योग-शीलता की बड़ी अच्छी छाप गोखले पर पडी। इसी प्रकार गोखले की सेवा-वृत्ति ने इनके मन को मोह लिया।

कलकत्ता मे

कलकत्ता का कार्य समाप्त कर काशी को रवाना हुए और भारतीय जीवन के अधिक सम्पर्क में आने के उद्देश्य से तीसरें दर्जे मे यात्रा शुरू की और आज तक यही क्रम चला जा रहा है। काशी मे श्रीमती एनी बेसेण्ट से मिले, वहाँ से राजकोट आये। वहाँ एक-दो मुकदमो की पैरवी

की पर बाद मे मित्रो के अनुरोध से बम्बई आ गये। वहाँ भी सिलसिला ठीक चलने लगा। यहाँ हाईकोर्ट के पुस्तकालय से कानूनी पुस्तके लेकर उनका अध्ययन भी करते। गोखले से भी मिलना-जुलना होता रहता था।

इसी समय एकाएक दक्षिण-अफ्रिका से तार आया—"चेम्बरलेन आ रहे है। आपको शीघ्र यहाँ आना चाहिए।" इन्हे अपने वचन याद थे इसलिए बाल-बच्चो को बम्बई मे ही छोड यह डरबन को रवाना हो गये। प्रिटोरिया पहुँचे और वहाँ पहुँचते ही चेम्बरलेन से मिलनेवाले डेपूटेशन के लिए अरजी का मस्विदा बनाने तथा अन्य कामो मे लग गये।

पर आवेदनो और डेपूटेशनो से क्या होना जाना था ? इधर भारतीयो के कष्ट बढते जा रहे थे। इसलिए लोगो के कहने से गाधी ने वही ठहर जाना निश्चित किया और ट्रासवाल के सुप्रीम कोर्ट के वकीलो मे भरती हो गये। इसी समय कुछ मित्रो के सहयोग से 'ट्रासवाल ब्रिटिश इडियन असोसिएशन' की स्थाना की।

ज्यो-ज्यो कठिनाइयाँ बढती जाती थी, भारतीयो मे जागरण होता जाता था। इसलिए एक अखबार की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी।

'इंडियन ओपीनियन'

श्री मदनजीत नामक एक भारतीय सज्जन का एक छापाखाना था। उन्होने अखबार निकालने का इरादा प्रकट किया। पत्र निकला पर पीछे उसका ज्यादातर भार गाधीजी पर ही आ पडा। अपनी बचत के सारे रुपये वह उसमे लगा देते थे। पहले यह पत्र हिन्दी, तामिल, गुजराती, अग्रेजी मे निकलता था पर बाद मे केवल गुजराती और अग्रेजी में ही निकलने लगा।

सन् १९०४ ई० में जोहान्सबर्ग मे प्लेग फैला। इसका जोर भारतीय हिस्से मे ज्यादा था। म्युनिसपैलिटी बार-बार ध्यान दिलाये जाने पर भी सफाई इत्यादि की कोई व्यवस्था न करती थी। प्लेग फैलने पर

भी उसने इस तरफ ध्यान न दिया। तब गाधी ने अपने ही दो-चार साथियो को लेकर उस खतरे के बीच भी, जान की परवा न करके, सेवा-कार्य आरम्भ किया। उन दिनो रात-दिन रोगियो की परिचर्या मे इनका समय जाता था।

प्लेग में सेवा

ये सब सार्वजनिक काम तो चल ही रहे थे पर इस बीच इनका मानसिक तथा नैतिक विकास बराबर हो रहा था। दिन-दिन स्वार्थ-भाव का नाश होता जा रहा था, अभी तक कमाने का जो कुछ भाव लगा था, वह छूटता जा रहा था और अनासक्तिमयी सेवा का भाव बढता जाता था। जो लोग इनके साथ रहते उन सब से एक कुटुम्बी-जैसा ही व्यवहार करते थे। इनके शुद्ध हृदय और श्रेष्ठ चरित्र का परिचय पाकर अनेक अग्रेज और यूरोपियन इनके मित्र एव सहयोगी हो गये थे। इनके आफिस मे काम बहुत बढ गया था इसलिए स्काच कुमारी मिस डिक को इन्होने टाइपिग के लिए रखा था। यह कुमारी बडी ईमानदार, सुशील एव परिश्रमी थी। गाधीजी के श्रेष्ठ चरित्र का उसपर ऐसा प्रभाव पडा था कि वह इन्हे पिता की भाति मानने लगी थी और पीछे तो जब उसका विवाह हुआ और मिसेज़ मैकडानल्ड बनने का मौका आया तो गाधीजी ने ही कन्यादान किया। इसी प्रकार शीघ्र-लेखन (शार्ट-हैड) के लिए मिस श्लेशिना को अपने दफ्तर मे रखा था। इस लडकी मे जरा भी रग-द्वेष न था। बडी योग्य एव निर्भय लडकी थी। काम करने मे न दिन देखती, न रात। जब बाद को सत्याग्रह में सब लोग जेल चले गये तो इस अकेली लडकी ने सारा काम सँभाल लिया था। इसके साथ ही सारा पत्र-व्यवहार एव 'इडियन ओपीनियन' का काम भी वह स्वय करती थी। बाद मे हेनरी पोलक नामक एक यहूदी युवक भी (जो 'क्रिटिक' के उप-सम्पादक थे)

आत्मिक विकास

गाधीजी के अनुरोध से वहाँ का काम छोडकर चले आये और साथ काम करने लगे। इग्लैण्ड मे एक लडकी से इनका सहज स्नेह था पर गरीबी के कारण शादी न करते थे। गाधी जी ने पोलक को समझाया कि जहाँ प्रेम शुद्ध है वहाँ गरीबी-अमीरी का भाव बाधक नही हो सकता। दोनो को यह बात पसन्द आई और दोनो की शादी होगई। इसी प्रकार वेस्ट तथा केलनबैक इत्यादि कितने ही युरोपियन इनके सहयोगी थे। इन बातो से प्रकट होता है कि उनकी सेवा द्वेष-मूलक न थी और वह सत्पथ पर रहते थे जिससे विधर्मी दल के लोग भी इनसे सहानुभूति रखते थे। इस अनुभव ने इनके जीवन मे बड़ा काम किया है और इसी के कारण दिन-दिन इनमे सत्य और अहिसा का भाव दृढ होता गया है।

एक दिन नेटाल जाते समय, स्टेशन पर, रेल मे पढने के लिए पोलक ने रस्किन की 'अन-टु दिस लास्ट' नामक पुस्तक दी। इस पुस्तक का इनके जीवन पर बडा प्रभाव पडा। जिन शक्तियो ने इनके जीवन पर स्थायी प्रभाव डाला है उनमे इस पुस्तक का स्थान बडा ऊँचा है। वह स्वय लिखते है—"... ..मेरे जीवन मे यदि किसी पुस्तक ने तत्काल महत्वपूर्ण रचनात्मक परिवर्तन कर डाला हो तो वह यही पुस्तक है।...... मेरा विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्तर मे बसी हुई थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने रस्किन के इस ग्रथ-रत्न मे देखा और इस कारण उसने मुझपर अपना साम्राज्य जमा लिया और अपने विचारो के अनुसार मुझसे आचरण करवाया।" इस पुस्तक से इन्होने ये सिद्धान्त निकाले—

१ सब के भले मे अपना भला है,

२ वकील और नाई दोनो के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए,

३ क्योकि आजीविका का हक दोनो को एक-सा है,

३ सादा, मजदूर एव किसान का, जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली और दूसरी बात का भान तो इन्हे था पर तीसरी बात अभी तक इनके विचार मे न आई थी। इस पुस्तक से इन्हे उसकी उपयोगिता मालूम हुई और इन्होने निश्चय कर लिया कि सत्य के साधक के लिए सादा जीवन एव शरीर-श्रम अनिवार्य है।

उधर शहर मे रखने से 'इडियन ओपीनियन' मे अपव्यय हो ही रहा था अत शहर से दूर एक आश्रम बसाने की बात इन्हे जँच गई। दूसरे

'फिनिक्स सेटिलमेंट'

ही दिन वेस्ट से इन्होने चर्चा की कि शहर के बाहर पत्र को ले चला जाय, वहाँ सब एक साथ रहे, एक सा भोजन-खर्च ले, खेती करे। वेस्ट को यह बात पसद आई। सारी बाते तै होगई। फिनिक्स नामक स्थान मे १०० एकड जमीन ले ली गई। शीघ्र-ही मकान तैयार हो गये और प्रेस तथा पत्र वहाँ लाया गया। अब इनका विचार स्थायी रूप से यही बस जाने का हुआ। क्योकि यह उपर्युक्त सिद्धान्तो के अनुसार सीधा-सादा परिश्रमपूर्ण जीवन बिताना चाहते थे। काम से जब यह जोहान्सबर्ग लौटे और इन्होने पोलक को उनकी दी हुई किताब के प्रभाव तथा नई सस्था की बात बताई तो पोलक के आनन्द की सीमा न रही और वह भी 'क्रिटिक' की नौकरी छोड फिनिक्स मे रहने लगे और बहुत जल्द वहाँ के सीधे-सादे जीवन के अभ्यस्त हो गये। परन्तु गाधीजी की इच्छा पूरी न हुई। शीघ्र ही सार्वजनिक कार्य-वश इनको जोहान्सबर्ग जाना पडा और पोलक को भी वही बुला लिया।

यहाँ आये भी थोडे ही दिन बीते थे कि 'जुलू'-विद्रोह (१९०६) का समाचार आया। 'जुलू' वहाँ की एक पुरानी वीर जाति है। असल मे

'जुलू' बलवा

तो अग्रेजो का पक्ष ही अन्यायपूर्ण था पर उस समय भी अग्रेजी राज्य की न्यायपरायणता में इनका विश्वास था अत इन्होने गवर्नर को पत्र लिखा कि "घायलो की सेवा-

शुश्रूषा के लिए मै हिन्दुस्तानियो की एक टुकडी लेकर जाने को तैयार हूँ।" गवर्नर नें तुरन्त इसे स्वीकार कर लिया। फलत २४ आदमियो की टुकडी लेकर यह सेवा-कार्य के लिए चल दिये। इन्हे 'सार्जेण्ट मेजर' का अस्थायी पद दिया गया। इस टुकडी ने ६ सप्ताह तक वडी लगन से सेवा की। सच पूछे तो इसमे विद्रोह जैसा कुछ न था। 'जुलू' निरपराध थे। उनके एक सरदार ने जुलू लोगो पर बैठाये गये नये कर को न देने की सलाह दी थी और कर-वसूली को गये एक सार्जेण्ट की हत्या कर डाली थी। इसी पर गोरे उन्हे पीसने के लिए चढ दौडे थे। इसीलिए गाधी का हृदय तो जुलू लोगो की तरफ था। इन्होने जुलू घायलो की तन-मन से सेवा की। कभी-कभी इनकी टुकडी को २५-२५, ३०-३० मील चलना पडा। इन कार्यो की स्वय गवर्नर ने तारीफ की और इन लोगो को मेडल भी दिये गये।

आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत

इस सेवा-कार्य से लौटते ही इन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन का व्रत ले लिया क्योकि दिन-दिन इनका यह अनुभव दृढ होता जाता था कि ब्रह्मचर्य-हीन जीवन पशुवत् है और सेवा-परायण सत्यार्थी की इसके पालन विना गति नही। सार्वजनिक सेवा मे समय लगानेवाले लोक-सेवक का मार्ग इससे सरल हो जाता है, उसकी सेवा नि स्वार्थ होने की अधिक सभावना रहती है और घरेलू कठिनाइयाँ कम हो जाती है। इस ब्रह्मचर्य-व्रत का स्वाभाविक फल यह हुआ कि इन्होने तपस्वी का जीवन अगीकार कर लिया। खान-पान केवल शरीर-रक्षा के भाव से करते और शरीर को अधिकाधिक कष्ट-सहन के योग्य वनाते। उन दिनो सयम की दृष्टि से इन्होने दूध, दाल और नमक का भी त्याग कर दिया था।

सत्याग्रह का आरम्भ

१८८५ मे ही ट्रासवाल मे एक कानून बना था जिसके अनुसार यह

निश्चित हुआ था कि जो एशियाई इस देश मे व्यापार करे वे एक निश्चित फीस देकर अपनी रजिस्ट्री करा ले और नगरो के कुछ विशिष्ठ भागो मे रहे (जिससे उनके ससर्ग से गोरो मे किसी प्रकार का रोग न फैले)। यद्यपि बीच मे इन नियमो का पालन कडाई से नही होता था पर गोरे-काले का भेद दिन-दिन बढता जाता था। बोअर युद्ध के समय साम्राज्य-सरकार ने बीच मे पडकर कहा था कि भारतीयो की शिकायते दूर कर दी जायँगी। पर युद्ध-समाप्ति के बाद भारतीयो ने आश्चर्य एव दुख के साथ देखा कि साम्राज्य-सरकार के अधिकारी ही अनेक प्रकार के अपमान-जनक और अनुचित कानूनो को पास कराने के लिए ज़ोर दे रहे है। 'शान्ति-रक्षा-कानून' ('पीस प्रिज़र्वेशन') के अनुसार भारतीयो के वहाँ जाने मे अनेक बाधाये खडी कर दी गईं। और १८८५ वाला रजिस्ट्री का कानून फिर से जारी करने पर ज़ोर दिया जाने लगा। १८८५ वाले तीसरे कानून का ज़ोरो से प्रयोग होने लगा और भारतीय कुछ विशिष्ठ स्थानो में ही रहने और व्यापार करने को विवश किये जाने लगे। इसपर सुप्रीम कोर्ट मे अपील की गई जिससे पुराना फैसला रद्द हो गया और निश्चित हो गया कि भारतीय जहाँ चाहे रह सकते और व्यापार कर सकते है। इस निर्णय से गोरे बडे क्रुद्ध हुए और तभी से वे भारतीयो की जड पर कुठाराघात करने के प्रयत्न मे थे।

गाधी के जुल-विद्रोह के सेवा-कार्य से लौटे थोडे ही दिन हुए थे कि

नया 'बिल'

ट्रासवाल-सरकार ने 'ड्राफ्ट एशियाटिक ला अमेण्ड-मेण्ट बिल' कौंसिल मे पेश किया। इस बिल का साराश यह था—

"ट्रासवाल मे रहने का हक रखने की इच्छा करनेवाले प्रत्येक भारतीय स्त्री-पुरुष और आठ वर्ष से अधिक उम्र के बालक-बालिका को

एशियाई दफ्तर मे अपना नाम लिखाकर परवाना प्राप्त करना चाहिए। ...नाम लिखाने की अर्जी मे अपना नाम, स्थान, जाति, उम्र इत्यादि लिखे जायँ। नाम लिखने वाले अधिकारी को चाहिए कि अर्जी देने वाले के शरीर पर के मुख्य चिन्हो को नोट करले और उसकी तमाम उँगलियो एव दोनो अगूठो की छाप ले ले। उन भारतीय स्त्री-पुरुषो का ट्रासवाल मे रहने का हक रद समझा जाय जो नियत समय के भीतर इस प्रकार अर्जी देकर अपना नाम रजिस्टर मे दर्ज न करा ले। अर्जी न देना अपराध है और इसके लिए जेल या जुर्माने की सजा हो सकती है और अदालत स्वीकार करे तो देश-निकाले की भी सजा दी जा सकती है। बच्चो के लिए अर्जी देने एव उनके शरीर के निशान एव उँगलियो की छाप दर्ज कराने की ज़िम्मेदारी माता-पिता पर है। यदि माता-पिता इस जिम्मेदारी को अदा करने मे असावधानी करे तो १६ वर्ष की आयु होते ही बच्चे स्वय उसे अदा करे और माता-पिता को इस अपराध की जो सजा दी जायगी वही बच्चे को भी सोलह वर्ष की उम्र होने पर अर्जी न देने से दी जायगी। अर्जीदार को जो परवाना दिया जाय उसे हर समय पास रखना चाहिए और जहाँ जब कोई पुलिस अधिकारी माँगे उसे दिखाना चाहिए। उसका ऐसा न कर सकना एक जुर्म समझा जायगा जिसके लिए अदालत उसे कैद या जुर्माने की सजा दे सकती है। राह चलते मुसाफिर से भी यह परवाना माँगा जा सकेगा। परवाना ढूँढने के लिए अधिकारी लोग भारतीयो के मकान में भी घुस सकते है। यह परवाना किसी भी दफ्तर में, किसी भारतीय के वहाँ काम से जाने पर, माँगा जा सकता है। उसे न दिखाने या आवश्यक प्रश्नो का उचित उत्तर न देने पर भी सजा या जुर्माना हो सकता है।"

ससार के किसी हिस्से मे शायद ही सभ्य मनुष्यो के लिए इससे

भयकर कानून कभी बना हो। इससे तो ट्रासवाल से भारतीयो का अस्तित्व मिट जाने का ही खतरा उपस्थित हो गया। उँगलियो की छाप तथा शरीर-चिन्हो का नियम बिलकुल जगली और चोर-डाकुओ के साथ किये जानेवाले व्यवहार-जैसा था। इससे भारतीयो मे खलबली मच गई। गाधीजी ने लोगो को एकत्र किया, उन्हे बिल का मतलब समझाया और कहा कि इसमे सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र का अपमान है। इसके बाद सारे ट्रासवाल के भारतीय प्रतिनिधियो को बुलाकर एक विराट् सभा की गई। उसमे यह निश्चय हुआ कि "इस बिल का विरोध करने के लिए तमाम उपायो का अवलम्बन किया जाय पर यदि इतने पर भी वह पास हो जाय तो हमे उसके आगे सिर न झुकाना चाहिए और इस अवज्ञा के फल-स्वरूप जो दु ख सहने पडे, सहन करना चाहिए।" सबने खडे होकर ईश्वर को साक्षी रखकर, प्रतिज्ञा की कि चाहे जितने दु ख-कष्ट पडे हम इस कानून को न मानेगे।

विलायत को डेपुटेशन

भारतीयो के व्यापक विरोध के होते हुए भी, औरतो से उँगलियो की छाप लेने से सम्बन्ध रखनेवाली धाराओ को छोड, बिल पास हो गया। फिर भी कोई दूसरा उपाय करने के पूर्व यही निश्चय किया गया कि सब प्रकार के वैध प्रयत्न करके देख लिए जायँ। ट्रासवाल साम्राज्य-सरकार के अधीन उपनिवेश था इसलिए ट्रासवाल-कौसिल के पास बिलो पर सम्राट एव साम्राज्य-सरकार की स्वीकृति लेनी पडती थी। इस दिशा मे अन्ततक प्रयत्न करके देख लेने के उद्देश्य से भारतीयो का एक डेपुटेशन इग्लैण्ड भेजने का निश्चय हो गया। इसके लिए गाधीजी और हाजी वज़ीरअली चुने गये। विलायत पहुँचते ही ये लोग अपने काम मे लग गये। अर्ज़ी रास्ते मे ही लिख ली थी। लन्दन पहुँचते ही दादा भाई

नौरोजी से मिले और उनके द्वारा ब्रिटिश कमेटी से मिले। मचेरजी भावनगरी से भी भेंट की। इन लोगो की सलाह से सर लेपेल ग्रिफिन से भी मिले। उन्होने इस डेपुटेशन का नेतृत्व करना स्वीकार किया। अनेक एंग्लो-इण्डियनो और पार्लमेण्ट के सदस्यो से मिले और अपना तात्पर्य उनको समझाया। लार्ड एलगिन उपनिवेश-सचिव थे; उनसे मिले। उन्होने सहानुभूति दिखाई और यथासम्भव सहायता का वचन दिया। डेपुटेशन लार्ड मार्ले से भी मिला। पार्लमेण्ट के दीवानखाने मे गाधीजी ने इस विषय मे पार्लमेण्ट के सदस्यो की एक सभा मे भाषण भी किया। श्री सिमण्ड्स इत्यादि कई पर-दु ख-कातर अग्रेजो से इस समय सहायता मिली और इस सम्बन्ध मे आन्दोलन करते रहने के लिए एक कमिटी (जिसके मत्री मि० रिच थे) बनाकर पाच-छ. हफ्ते बाद ये लोग दक्षिण-अफ्रीका लौटे। रास्ते मे ही श्री रिच का तार मिला कि लार्ड एलगिन ने सम्राट से कानून रद्द करने की सिफारिश की है। पर जोहान्स-बर्ग पहुँचने पर मालूम हुआ कि बात असल मे यह न थी। १९०७ की पहली जनवरी को ट्रासवाल को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया जानेवाला था इसलिए तवतक के लिए, ट्रासवाल के राजदूत की सलाह से इस सवाल को स्थगित कर दिया गया। लार्ड एलगिन ने राजदूत—सर रिचर्ड सालोमन—से कह दिया था कि स्वतन्त्र होने पर ट्रासवाल की पार्लमेण्ट इस बिल को पास कर देगी तो साम्राज्य-सरकार उसे अस्वीकार न करेगी। पहले से ही ऐसा आश्वासन दे देना एक प्रकार का विश्वास-घात था। पहली जनवरी को दिन ही कितने थे। ट्रासवाल मे उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन की स्थापना हुई। बजट के बाद ही वह खूनी अन्याय-पूर्ण बिल पास हुआ। भारतीयो ने अर्जियाँ दी, विरोध किया पर कौन सुनता ? कानून के अनुसार पहली अगस्त (१९०७ ई०) का दिन नये

परवाने लेनेके लिए नियत किया गया था। इसके पहले ही ''निष्क्रिय प्रतिरोध' (जिसका नाम आगे बदलकर सत्याग्रह कर दिया गया) आन्दोलन के सचालन के लिए 'पैसिव रेसिस्टेंस असोसिएशन' (अथवा 'निष्क्रय-प्रतिरोध मण्डल') नामक सस्था खुल चुकी थी। स्थान-स्थान पर सभाएँ हुईं, प्रतिज्ञापत्र भराये गये और स्वयसेवक भर्ती किये गये। जुलाई का महीना समाप्त हुआ। परवाने लेने के दफ्तर खुले। हर दफ्तर पर पिकेटिंग करने के लिए स्वयसेवक तैनात किये गये। उन्हे बताथा गया कि वे परवाना लेने जानेवालो को सावधान करे पर किसी के साथ जोर-ज़बर्दस्ती या असभ्यता का व्यवहार न करे। पुलिसवाले गालियाँ दें, मारे-पीटें तो उसे भी सह ले और पकड़ें तो गिरफ्तार हो जायँ। जो परवाना लेना चाहे उनके लिए पूरी सुविधा कर दी गई। इस व्यवस्था के कारण बहुत ही कम लोग एशियाटिक आफिस में परवाना लेने गये। तब सरकार की ओर से यह व्यवस्था की गई कि बडे व्यापारियो को एक अफसर रात को मकान पर जाकर परवाने दे दे। स्वयसेवक सावधान एव जागरुक थे, इसलिए यह चाल भी सफल न हुई और एशियाटिक आफिस को ५०० से अधिक नाम न मिल सके।

पिकेटिंग

इस असफलता के कारण खीझकर सरकार ने प० रामसुन्दर नामक एक सज्जन को गिरफ्तार कर लिया। रामसुन्दर की जर्मिस्टन (एक स्थान) में कुछ प्रतिष्ठा थी पर वैसे उन्हे ज्यादा लोग न जानते थे पर सरकार की इस 'कृपा' से सारे दक्षिण-आफ्रिका में उनकी प्रसिद्धि हो गई। उनकी गिरफ्तारी से लोगो मे और जाग्रति फैल गई। सैकडो जेल जाने को तैयार हो गये। इस समय 'इण्डियन ओपीनियन' पत्र के कारण आन्दोलन को बड़ी सहायता मिली। सरकार ने सोचा कि खास-खास नेताओ को गिरफ्तार किये बिना आन्दो-

गिरफ्तारी

लन दब नही सकता । दिसम्बर मे गाधीजी तथा कुछ साथी कार्यकर्ताओ को सजा मिली । दो-दो महीने की सादी कैद हुई । इनकी गिरफ्तारी के साथ ही आन्दोलन बढ गया । झुण्ड के झुण्ड लोग, स्वेच्छापूर्वक, कानून तोडकर जेल जाने लगे । एक हफ्ते मे १०० सत्याग्रही जेल पहुँच गये । ज्यो-ज्यो आन्दोलन बढा, सरकार का रोष भी बढा । सादी की जगह कडी सजा होने लगी । पर इससे भी लोगो के उत्साह में कमी न आई । अव सरकार को विश्वास होने लगा कि भारतीय अपने अधिकार लेकर ही छोडेगे । सुलह की बातचीत होने लगी । जनरल स्मट्स की ओर से

समझौता

'ट्रासवाल लीडर' दैनिक के सम्पादक अलबर्ट कार्टराइट गाधीजी से जेल मे मिले । दोनो मे यह तै हुआ कि 'भारतीय स्वेच्छापूर्वक परवाने बदलवा ले; उन पर कानून की कोई जबर्दस्ती न रहेगी । नवीन परवाना सरकार भारतीयो की सलाह से बनावे और यदि भारतीय उसे स्वेच्छापूर्वक ले ले तो कानून रद्द कर दिया जाय ।' पर कार्टराइट ने कहा कि जनरल स्मट्स इस पर शायद ही राजी हो । वह चले गये । दो-तीन दिन बाद जोहान्सबर्ग के पुलिस सुपरिण्डेण्ट आकर जेल से गाधीजी को जनरल स्मट्स के पास ले गये । उन्होने समझौते का उपर्युक्त ड्राफ्ट (मस्विदा) मजूर किया । गाँधीजी उसी समय छोड दिये गये । उसी रात को वह जोहान्सबर्ग पहुँचे । दूसरे दिन रात को सभा की गई । दो-चार को छोड शेष ने समझौता स्वीकार किया । सुबह और सब साथी भी जेल से रिहा कर दिये गये ।

पर इस बीच कुछ लोग पठानो मे गलतफहमी फैला रहे थे कि

गांधीजी पर हमला

गाधी रिश्वत लेकर सरकार से मिल गया है । पठान तो मरने-मारनेवाला आदमी ठहरा । उसपर ऐसी बातो का असर बहुत जल्द होता है । १० फरवरी १९०८ को गाधी

जी, ईसप मियाँ तथा थाम्बी नायडू नामक तीन नेताओ ने निश्चय किया कि पहले हमें ही परवाना लेना चाहिए। जब ये लोग एशियाटिक आफिस की ओर जा रहे थे तब कुछ पठानो ने गाँधीजी पर लाठियो से हमला किया। वह बेहोश होकर गिर पडे। इतने मे ही कुछ राह-चलते गोरे इकट्ठे होगये। उन्होने पठानो को पकड लिया और पुलिस के सुपुर्द कर दिया। गाधीजी की सम्मति से रेवरेण्ड डोक उन्हे अपने घर ले गये। वहाँ गाँधीजी ने एशियाटिक आफिस के अधिकारी श्री चमनी को बुलाकर सबसे पहले परवाना लिया। फिर उन्होने एटर्नी-जनरल को तार दिलाया कि 'जिन लोगो ने मुझपर हमला किया मै उन्हे दोषी नही समझता, वे छोड दिये जायँ।' इस तार से गाधीजी की विशालहृदयता का पता चलता है। खैर, उस समय तो पठान छोड दिये गये पर बाद में गोरो के आन्दोलन करने पर कि गाधी की इच्छा-अनिच्छा के अनुसार अपराधियो का न्याय नही हो सकता, वे पकडे गये और सज़ा हुई।

डोक-परिवार ने गाँधीजी की बडी सेवा की, वैसा घर के लोग क्या करते? ११-१२ दिन मे यह अच्छे हो गये। फिर डरबन गये। वहाँ भी कुछ पठानो मे गलतफहमी थी इसलिए उसे दूर करने के उद्देश्य से वहाँ भी बहुत बडी सभा की गई। रात का समय था, सभा का काम प्राय समाप्त हो चुका था कि एक पठान लाठी लेकर मच पर चढा। लोगो ने बचाव के लिए गाधीजी को घेर लिया। तबतक पुलिस आ गई। इस तरह बच गये दूसरे दिन उन्होने पठानो को बुलाकर समझाया पर उनका शुबहा दूर न हुआ। तब उसी दिन यह फिनिक्स चले गये। पर इक्के-दुक्के विरोध के रहते हुए भी समझौते को अधिकाश ने स्वीकार कर लिया और नये परवाने ले लिये।

पर जेनरल स्मट्स तो पैंतरेबाज़ राजनीतिज्ञ थे और मौके के अनुसार

अपने शब्दो का अर्थ 'हाँ' या 'नहीं' करने के लिए वह प्रसिद्ध थे। आज तो वह ब्रिटिश-साम्राज्य के चोटी के राजनीतिज्ञो मे समझे जाते है। दक्षिण-अफ्रीका मे उनका नाम ही 'स्लिम जेनी' (पकड मे न आसकनेवाला जेनी—जेनी उनका असली नाम है) पड गया। खैर, उन्होने अपनी इस 'उपाधि' एव 'प्रसिद्धि' के अनुकूल ही इस मामले में विश्वासघात किया। काला कानून को उठा लेने का जो वचन दिया था, उसका भग किया। इससे भारतीय बहुत उत्तेजित हुए। जगह-जगह सभाएँ होने लगी। सत्याग्रह का निश्चय हुआ और भारतीयो की समिति की ओर से अन्तिम चेतावनी—चुनौती—सरकार को भेज दी गई। पर सरकार कब माननेवाली थी? इसलिए नियत दिन सभा की गई और उसमें हजारो परवाने एकत्र कर जला दिये गये और जाति ने अपने अपमान की काली बन्दी दूर कर देने का निश्चय कर लिया। इसी समय सरकार ने 'इमीग्रेण्ट्स रिस्ट्रिकशन ऐक्ट' पास किया। इसका मुख्य उद्देश्य नये भारतीयो को वहाँ आने से रोकना ही था। इससे सत्याग्रह फिर शुरू हुआ। इसमे कितने ही प्रतिष्ठित सज्जन शामिल हुए। बैरिस्टरो ने कुलियो का काम किया। बहुतेरे आदमी कानून तोडकर जेल जाने लगे। गाँधीजी भी गये। छूटने पर उन्होने देखा कि दोनो पक्ष थके-से प्रतीत होते हैं। इसलिए एक बार फिर प्रयत्न करने के उद्देश्य से इग्लैण्ड गये। वहाँ प्रधान अधिकारियो से मिले। पर कुछ विशेष फल न निकला। इनके लौटने पर सत्याग्रह को जोरो से चलाने का निश्चय हुआ। इस समय तक जेल जानेवाले स्वयसेवको के कुटुम्बो का थोडा-बहुत खर्च भी आन्दोलन पर पड़ रहा था। इसलिए खर्च में कमी करने एव एक कुटुम्ब का भाव जगाने के विचार से सब को एकत्र रखने का विचार हुआ। श्री केलेनबैंक नामक जर्मन साथी ने गाँधीजी

वचन–भंग

को अपनी ११०० एकड भूमि (जो जोहान्सबर्ग से २१ मील—स्टेशन से एक मील थी) इस काम के लिए दे दी। यहाँ सब लोगो ने मिलकर स्वय मकान खडे कर लिए और इस प्रकार **'टाल्सटाय फार्म'** की स्थापना हुई। यहाँ गाँधीजी ने रस्किन एव टाल्सटाय के सादा जीवन बिताने और कायिक परिश्रम करने के सिद्धान्त को कार्यरूप मे परिणत किया। 'फीनिक्स आश्रम' और 'टालसटाय फार्म' मे उन्होने जो प्रयोग किये उन्ही का विकसित रूप बाद मे हम साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम मे देखते है।

टाल्सटाय फार्म

'टाल्सटाय फार्म' मे यह नियम रखा गया कि किसी प्रकार का घरू, खेती का या मकान बाँधने का काम नौकरो से न लिया जाय। सब काम ये लोग स्वयँ करते,—पाखाना उठाने से लेकर जूता बनाने तक का। इस समाज मे गुजराती, मद्रासी, उत्तर भारतीय—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—सभी थे। भोजन बिलकुल सादा होता था। शिक्षा का भी कुछ प्रबन्ध था।

इन्ही दिनो गोखले दक्षिण-अफ्रीका आये। इग्लैण्ड से भारत-सचिव ने उनके सम्बन्ध मे,—उनकी मर्यादा के सम्बन्ध मे यूनियन सरकार को सब हिदायते कर दी थी, इसलिए गोखले का खूब स्वागत हुआ—सरकार द्वारा भी, जनता-द्वारा भी।

गोखले का आगमन

गोखले ने घूम-घूमकर भारतीयो की अवस्था देखी और फिर सरकारी अधिकारियो से मिले। अधिकारियो ने शीघ्र ही काला कानून रद करने, तीन पौण्डवाला कर रद्द करने और इमीग्रेशन कानून से वर्ण-भेद वाला हिस्सा निकाल देने का वचन दिया। गोखले ने तो अधिकारियो के वादो पर विश्वास कर लिया पर गाधीजी को पहले कडुआ अनुभव हो चुका था इसलिए उन्हे विश्वास नही हुआ। और अन्त मे हुआ भी वही।

सरकार ने अपना वादा पूरा नही किया। इससे भारत मे भी बडी उत्तेजना फैली। श्री नटेसन एव गोखले ने बडा प्रयत्न किया। तात्कालिक वायसराय लार्ड हार्डिज ने भी दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयो के साथ खुले आम सहानुभूति प्रकट की। पर यूनियन-सरकार तो ज़िद पर तुली थी। इस समय उससे गलतियाँ पर गलतियाँ हो रही थी। दक्षिण-अफ्रीका मे कितने ही भारतीय ऐसे थे जिनका विवाह उनकी जातीय एव धार्मिक प्रथाओ के अनुसार भारत मे हुआ था पर अदालत के एक फैसले के अनुसार—जिसको यूनियन-सरकार ने स्वीकार कर लिया—ये सब विवाह नाजायज करार दिये गये। यह फैसला हुआ कि दक्षिण-अफ्रीका के कानून मै उसी विवाह के लिए स्थान है जो ईसाई धर्म की रीतियो के अनुसार होता है। मतलब यह कि कानून की दृष्टि मे सारी मुसलमान एवं हिन्दू महिलाओ की कोई स्थिति न थी। कानूनी दृष्टि से इन विवाहित स्त्रियो की स्थिति रखेलियो-सी हो गई। इससे बढकर अपमान और क्या हो सकता था? मातृ-जाति के इस अपमान ने भारत मे खलबली मचा दी। १२ सितम्बर १९१३ को सत्याग्रह की घोषणा की गई। २८ सितम्बर को गाधीजी ने यूनियन-सरकार को चुनौती का पत्र (Ultimatum) भेजा। उधर स्त्रियाँ भी इस प्रकार अपना अपमान होते देख सत्याग्रह के लिए मैदान मे आ डटी और आन्दोलन ट्रासवाल की सीमा लांघकर नेटाल मे भी फैल गया।

घोर अपमान

मजूरो की हड़ताल

स्त्रियो की अपील पर खानो के मजूरो ने काम छोड दिया और हजारो जेल जाने को तैयार हो गये। ऊपर कही लिखा जा चुका है कि ट्रासवाल की सीमा में बिना नये आज्ञा-पत्र (परवाना) के प्रवेश करना निषिद्ध था। गाधीजी ने मजूरो की यह सेना (इसमे २०२७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ, ५७ बच्चे थे) लेकर कानून-भग

करने के लिए ट्रासवाल मे प्रवेश करने के उद्देश्य से यात्रा की। ६ नवम्बर १९१३ को यात्रा शुरू हुई। यात्रा-मार्ग मे पहले गाधीजी गिरफ्तार हुए पर अदालत से छोड दिये गये और फिर यात्रा करती हुई इस मजूर-सेना से आ मिले। पर एक-दो दिन बाद ही फिर गिरफ्तार कर लिये गये, मजूरो की सारी टोली भी गिरफ्तार हो गई। उधर श्री पोलक, केलेनबैक भी गिरफ्तार हुए। इस युद्ध मे कितने ही अग्रेज एवं युरोपियनो ने सहायता की थी। जेल मे लोगो को काफी कष्ट दिया गया, स्त्रियो के साथ भी कोई रियायत नही की गई।

इस समय भारत से रुपयो की सहायता भी खूब मिल रही थी और सत्याग्रह का शान्ति-पूर्ण ढग, उसकी कार्य-शैली देख भारत-सरकार तथा कितने ही अग्रेजो की उसके साथ सहानुभूति हो गई थी। उधर गोखले ने श्री एण्डरूज और पियर्सन को सहायता के लिए दक्षिण-अफ्रीका भेज दिया था।

समझौते की बातचीत

अब तक ट्रासवाल-सरकार भी परिस्थिति के गुरुत्व को समझ चुकी थी। इसलिए उसने 'प्रेस्टीज' (आत्माभिमान) की रक्षा के लिए एक कमीशन नियुक्त किया। नियुक्त होते ही कमीशन ने सिफारिश करके गाधीजी, पोलक तथा केलेनबैक को छोडवा दिया। इस समय श्री एण्डरूज ने बडा परिश्रम किया। उन्होने दोनो दलो मे समझौता कराने का बडा यत्न किया। फलत गाधीजी एव जेनरल स्मट्स के बीच पत्र-व्यवहार शुरू हुआ। २१ फरवरी १९१४ को गाँधीजी ने जो पत्र लिखा था उसमे समझौते की निम्नलिखित आवश्यक शर्तें थी—

१. तीन पौण्ड का कर उठा लिया जाय।

२ हिन्दू, मुसलमान इत्यादि धर्मो की विधि से किये गये विवाह कानूनन जायज़ समझे जायँ।

३ शिक्षित भारतीय इस देश में प्रवेश पा सके।

४ आरेंजिया के विषय मे हुए इकरारो मे सुधार किया जाय।

५. यह विश्वास दिलाया जाय कि प्रचलित कानूनो पर इस प्रकार अमल किया जायगा जिससे वर्तमान अधिकारो की हानि न हो।

उसी दिन पत्र का उत्तर मिला। कैदियो को तो उसी दिन छोड दिया गया और अन्य शर्तों के बारे मे कमीशन की रिपोर्ट निकलने के बाद विचार करने का वचन दिया गया। इस आश्वासन पर सत्याग्रह स्थगित किया गया।

कमीशन की रिपोर्ट निकली और फल-स्वरूप सरकार ने कानून बनाकर १. तीन पौण्ड वाला कर रद कर दिया, २ जो विवाह भारत मे कानून की दृष्टि मे जायज़ हो, वे यहाँ भी जायज़ करार दिये गये। कुछ अन्य बातों का लिखित विश्वास दिलाया गया। फलत जो युद्ध १९०६ में शुरू हुआ था वह आठ वर्ष बाद, ३० जून १९१४ को समाप्त हुआ।

समझौता

× × ×

अब दक्षिण-अफ्रीका का काम खत्म हो चुका था इसलिए गाधीजी ने भारत जाने का निश्चय किया। इस समय गोखले इँग्लैण्ड मे थे। वह वहाँ बीमार पड गये। उनकी इच्छा इनसे मिलने की थी। इधर गाधीजी की तबीयत भी अच्छी न थी। रात-दिन के परिश्रम, तपश्चर्या एव कठोर जीवन ने शरीर को कमजोर कर दिया था। फिर भी यह श्री केलेनबैक एव पत्नी के साथ इग्लैण्ड को रवाना हुए। ये लोग ६ अगस्त को इग्लैण्ड पहुँचे। इसके पहले ही—४ अगस्त को—युरोपीय महायुद्ध की घोषणा हो चुकी थी।

विदाई

पर इनके पहुँचने के पहले ही गोखले स्वास्थ्य-सुधार के लिए फ्रास

चले गये थे। उधर लडाई छिड गई थी। इसलिए वहाँ से कब आयेंगे, इसका निश्चय न था किन्तु गाँधीजी को उनसे मिलना था इसलिए यह ठहर गये। इस वीच इन्होने यह निश्चय किया कि विपत्ति के समय साम्राज्य सरकार की सहायता करना भारतीयो का कर्तव्य है अत वहाँ उन्होने भारतीय विद्यार्थी स्वयसेवको का एक दल सगठित किया और घायल सिपाहियों की सेवा-शुश्रूषा करने की इच्छा प्रकट की। लार्ड क्र्यू ने स्वीकार कर लिया। डाक्टरी शिक्षा के लिए डा० फेण्टली की देखरेख में क्लास खोला गया और ८० स्वयसेवक शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसमें भरती हुए। छ हफ्ते के वाद परीक्षा हुई। ७९ पास हुए। इन लोगो को सरकारी कवायद सिखाने का भार कर्नल वेकर के सुपुर्द हुआ।

किन्तु कुछ ही दिनो वाद गाधीजी की तवियत वहुत ज्यादा खराव हो गई, पसली में दर्द रहने लगा। वहुत इलाज कराया पर अच्छा न हुआ। उस समय यह दूध इत्यादि विलकुल न लेते थे। अन्त मे ब्रिटिश अधिकारियो की सलाह से यह भारत लौट आये। श्री गोखले पहले ही भारत लौट आये थे। श्री केलनवैक को जर्मन होने के कारण पासपोर्ट न मिला।

गांधीजी जव वम्वई पहुँचे तो उनका खूव धूमधाम से स्वागत किया गया। फिर वह गोखले के साथ पूना गये। वहा भी खूव आदर-सत्कार हुआ। इस समय तक फीनिक्स आश्रम के उनके वहुत-से साथी भारत लौट आये थे, इसलिए सवको एक जगह रखकर आश्रम-जीवन विताने के विचार गाधीजी मे दृढ होते जा रहे थे। उन्होने इन साथियो को श्री एण्डरूज के सुपुर्द कर दिया था। श्री एण्डरूज ने उन्हे कुछ दिन गुरुकुल कांगडी मे रखा और वाद मे शान्ति निकेतन भेज दिया था।

पूना से गाँधीजी जव राजकोट जा रहे थे तव वीरमगाम की जकात

की जाँच से होनेवाली तकलीफो की शिकायते उनके पास तक पहुँची।

वीरमगाम की जकात

वह बम्बई के गवर्नर लार्ड वेलिंगडन (बाद में भारत के वायसराय) से मिले। उन्होने कहा—"भारत-सरकार की ओर से ही देर हो रही है।" फिर इन्होने भारत-सरकार से पत्र-व्यवहार शुरू किया। बाद मे वायसराय लार्ड चेम्सफर्ड से मिले। उनको तो इन बातो का कुछ पता ही न था। उन्होने तुरन्त टेलीफोन करके वीरमगाम से कागज-पत्र मँगवाये और थोड़े ही दिनो बाद जकात रद्द कर दी।

राजकोट से गाधीजी अपने साथियो से मिलने शान्ति-निकेतन गये। वहाँ कुछ दिन रहने का इरादा था पर शीघ्र ही इन्हे पूना से गोखले के

गोखले का देहावसान

देहावसान का समाचार मिला। इससे इनके हृदय पर बडी ठेस लगी। ये तुरन्त पत्नी एव भतीजे स्व० मगनलाल भाई को लेकर पूना को रवाना हुए। वहाँ से फिर अपने मित्र डा० प्राणजीवन मेहता से मिलने रगून गये। वहाँ से लौटकर हरिद्वार के कुम्भ मे एक टुकडी लेकर यात्रियो की सेवा का कार्य किया। यह सब तो चल ही रहा था पर मुख्य बात यह थी कि यह सदा आत्म-निरीक्षण किया करते थे और फलत इनकी आत्मा दिन-दिन निर्मल और पवित्र हो रही थी।

× × × ×

मै ऊपर लिख चुका हूँ कि गाँधीजी का विचार अपने साथियो को लेकर

सत्याग्रह-आश्रम का जन्म

एक आश्रम स्थापित करने एव उसमे सरल सात्विक जीवन विताने का था। कुछ लोगो ने हरिद्वार में, कुछ ने वैजनाथधाम मे, कुछ ने राजकोट में खोलने की सलाह दी। इसी बीच यह अहमदाबाद से गुजरे तो वहा के मित्रो

ने अहमदाबाद को चुनने का आग्रह किया और आश्रम के खर्च का भार भी अपने ऊपर ले लिया। फलत अहमदाबाद ज़िले के कोचरब नामक स्थान मे मकान लिया गया। 'सत्याग्रह-आश्रम' नाम रखा गया क्योकि सत्य की पूजा एव सत्य का शोध ही उनका लक्ष्य था। २५ मई १९१५ को आश्रम की स्थापना हुई। जो लोग शामिल हुए उनमे तमिल एव गुजराती लोगो की अधिकता थी। वे एक ही भोजनशाला मे भोजन करते थे और इस तरह रहने का प्रयत्न करते थे मानो वे एक ही कुटुम्ब के हो। इसमे अछूतो को भी रखने का नियम रखा गया था। इसके कारण इसे बहिष्कार इत्यादि की कितनी झझटे झेलनी पडी पर अपने धर्म मे गाँधीजी एव अन्य आश्रमवासी अचल रहे।

गिरमिट प्रथा

१९१४ ई० मे नेटाल के गिरमिटियो पर से ३ पौण्ड का कर उठा लिया गया था पर गिरमिट-प्रथा (जिसके अनुसार ५ या कम वर्ष की मजूरी के इकरार पर मजूर भारत से भेजे जाते थे) का अन्त न हुआ था। १९१६ ई० मे मालवीयजी ने बड़ी धारा-सभा मे यह प्रश्न उठाया। फरवरी १९१६ ई० मे उन्होने इस प्रथा को उठा देने का कानून कौसिल मे पेश करने की इजाजत वाय-सराय से मागी पर उन्होने न दी। इसलिए भारत मे फिर आदोलन शुरू हुआ। स्थान-स्थान पर सभाएँ हुई और अन्त मे सत्याग्रह करने का भी निश्चय हो गया। ३१ जुलाई तक का समय सरकार को दिया गया। सरकार झगडा मोल लेना नही चाहती थी इसलिए उसने ३१ जुलाई के पहले ही कुली-प्रथा बन्द करने की घोषणा प्रकाशित कर दी।

चम्पारन की समस्या

इधर जब से गाँधीजी भारत आये थे, प्रयत्न कर रहे थे कि काँग्रेस के दोनो दल—नरम-गरम—मिल जायँ। १९१६ ई० के दिसम्बर मे

लखनऊ मे महासभा का अधिवेशन हुआ। उसमे दोनो दलो मे समझौता हो गया। इस समय बिहार मे नील की खेती करने वाले गोरो का अत्याचार जोरो से बढा हुआ था।

'तीन कठिया'

लोगो के अनुरोध से यह बिहार गये। वहाँ जाकर अच्छी तरह इस मामले की जाँच की। मालूम हुआ कि 'तीन कठिया' की प्रथा से किसानो को बडा कष्ट है। इसके अनुसार चम्पारन के किसान अपनी ही जमीन के ३/२० हिस्से मे नील की खेती जमीन के असली मालिक के लिए करने को कानूनन बाध्य थे।

पटना मे राजेन्द्र बाबू और ब्रजकिशोर बाबू से सलाह करने के बाद १५ अप्रैल १९१७ ई० को यह मुजफ्फरनगर पहुँचे। वहाँ एक व्याख्यान हुआ। फिर वहाँ से १६ अप्रैल को चम्पारन के मोतीहारी शहर मे पहुँचे। वहाँ जिला मजिस्ट्रेट की

मजिस्ट्रेट का हुक्म

नोटिस मिली कि २४ घण्टे के अन्दर जिला छोड़ दो। गाँधीजी ने इसकी अवज्ञा की, मुकदमा चला। इन्होने वायसराय तथा मालवीयजी इत्यादि को सारी स्थिति समझाते हुए तार दे दिया था। जब मुकदमा चल रहा था तभी सरकार की आज्ञा मिली कि गाँधी को सब स्थानो मे घूमकर जाँच करने की स्वतन्त्रता दी जाय। तब गाँव-गाँव घूमकर इन्होने वहा की स्थिति का गहरा अध्ययन किया, किसानो के बयान लिये। इस प्रकार लगभग ७००० किसानो के बयान लिए गये।

उधर इस हल-चल से निलहे गोरे उत्तेजित होने लगे पर इससे गाँधीजी का काम रुका नही। वह गवर्नर सर एडवर्ड गेट से मिले। उन्होने जाँच-समिति नियुक्त करने का वचन दिया। फलत सर फ्रेंक स्लाई की अध्यक्षता मे जाँच-समिति

जाँच-समिति

बैठी। गाँधीजी भी उसके सदस्य थे। समिति ने किसानो की तमाम

शिकायते सच्ची बताई और सर्व-सम्मति से यह सिफारिश की कि निलहे गोरे अनुचित रीति से पाये रुपयो का कुछ भाग वापस करे और 'तीन कठिया' का कायदा रद्द कर दिया जाय। गोरो ने उसका बडा विरोध किया पर गवर्नर सर एडवर्ड गेट की दृढ़ता से कानून बना और किसानो की शिकायते दूर हो गई। इसके फल-स्वरूप वहाँ के किसानो मे खूब जागरण हुआ और निलहे गोरो के राज्य का अन्त ही हो गया। इनकी खूब प्रसिद्धि हुई। इस प्रकार धीरे-धीरे यह भारत के प्रथम श्रेणी के नेताओ में स्थान प्राप्त करते जा रहे थे।

कष्ट-निवारण

× × × ×

चम्पारन का काम चल ही रहा था कि मजूर-सघ के सम्बन्ध मे अहमदाबाद से श्रीमती अनसूया बहन का पत्र मिला। यह १९१८ की शायद फरवरी थी। मजूरो को वेतन बहुत कम दिया जाता था, और भी कई असुविधाएँ उन्हे थी। मजूरो की माँग थी कि वेतन बढाया जाय। मजूरो के साथ सदा से गाँधीजी की सहानुभूति थी। इसलिए छुट्टी पाते ही वह तुरन्त अहमदाबाद पहुँचे। जाँच करने पर मजूरो का पक्ष इन्हे मजबूत मालूम हुआ। पहले इन्होने मिल-मालिको को बहुत समझाया कि पचायत-द्वारा निर्णय करा लो पर उन्होने इस बात पर ध्यान न दिया। अत इन्होने मजूरो को हडताल करने की सलाह दी तथा सदा अहिंसा पर दृढ रहने का उपदेश किया। इस हडताल के सिलसिले मे ही वल्लभभाई तथा शकरलाल बैंकर से इनका परिचय हुआ। रोज मजूरो की सभा होती, जुलूस निकलता। पर दो सप्ताह बाद मजूरो मे कमजोरी आने लगी। काम पर जानेवाले मजूरो से छेडछाड़ भी हुई। इससे दु खित हो गाँधीजी ने

मजदूरो की सेवा

उपवास शुरू किया। उस दिन हडताल का १८ वाँ दिन था। अन्त मे २१ वे दिन श्री आनन्दशकर ध्रुव को पच मानना दोनो पक्षो ने मजूर किया। हडताल समाप्त हुई, समझौता हो गया।

इधर यह सब हो रहा था, उधर कोचरब (जहाँ सत्याग्रह-आश्रम था) मे प्लेग फैल गया। इसलिए आश्रम को वहाँ से हटाने की आवश्यकता मालूम पडी। प्रयत्न करने पर सावरमती जेल के पास ही जमीन मिल गई। वहाँ खेमे डालकर काम निकाला जाने लगा। आगे चलकर यही स्थायी रूप से आश्रम की नीव पडी।

सावरमती आश्रम की नींव

खेड़ा में सत्याग्रह

घटनाएँ कुछ इस क्रम से घट रही थी कि गाँधीजी को कभी विश्राम न मिलता था। भगवान् उन्हे इन घटनाओ एव कठिनाइयो मे डालकर गढ रहा था। मजूरो के काम से निवटे ही थे कि दूसरा काम सिर पर आगया। बात यह थी कि खेडा जिले मे फसल नष्ट हो गई थी, किसान बुरी हालत मे थे। ऐसी हालत मे भी लगान माफ नही किया गया। इससे उनके कष्ट बढ गये। मजूरो के प्रश्न का निवटारा होने के बाद दम मारने की भी फुरसत न मिली और खेडा-सत्याग्रह का काम उन्हे उठा लेने पड़ा। इस सम्बन्ध मे श्री अमृतलाल ठक्कर (आज-कल हरिजन-सेवक-सघ के प्रधानमत्री) ने जाँच करके रिपोर्ट की थी। कौंसिल मे भी प्रयत्न चल रहा था। इस समय गाधीजी गुजरात-सभा के प्रमुख थे। इसलिए सभा की ओर से उन्होने कमिश्नर और गवर्नर को अर्जियाँ दी, तार दिये पर बदले में अपमान सहना पडा एव धमकियाँ मिली। लोगो की माँग स्पष्ट थी। कानून यह था कि यदि फसल चार आने से कम हो तो उस साल जमीन-कर

वैध प्रयत्न में असफलता

माफ़ होना चाहिए। सरकारी अफसर कहते थे कि फसल चार आने से अधिक हुई है। पर फसल वास्तव मे कम हुई थी। लोगो ने इसके प्रमाण दिये पर सरकार कब मानने लगी? अन्त मे सब तरफ से दौड-धूप कर लेने के बाद गाधीजी ने सत्याग्रह की सलाह दे दी।

सत्याग्रह

लोगो ने सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ली। गाँव-गाँव घूमकर लोगो को सत्याग्रह का रहस्य समझाया जाने लगा। देखते-देखते आन्दोलन ने उग्र-रूप धारण किया। सरकार ने दमन किया पर जब देखा कि दमन से यह आन्दोलन न दबेगा तो वह इस बात पर राजी हो गई कि धनी किसान अपने लगान दे दे और गरीबो का लगान माफ कर दिया जाय।

महायुद्ध में सरकार की सहायता

इन दिनो युरोपीय युद्ध ज़ोरो पर था। गाधीजी को लगा कि आपत्ति के समय सरकार की सहायता करनी चाहिए। इसी समय वायसराय लार्ड चेम्सफर्ड ने विशेषरूप से परामर्श करने के लिए इन्हे दिल्ली बुलाया। यह गये। इन्होने सहायता करना तो स्वीकार कर लिया पर वायसराय को एक पत्र लिखकर लोकमान्य तिलक एव अली-बन्धुओ के इस सभा मे न बुलाने के बारे मे खेद प्रकट किया तथा जनता की राजनीतिक एव मुसलमानो की खिलाफत-सम्बन्धी माँगो का उल्लेख किया।

रगरूटो की भरती के लिए इन्हे गाँव-गाँव दौडना पड़ता था। रात-दिन के परिश्रम के कारण स्वास्थ्य खराब हो गया। फलस्वरूप यह एका-एक बीमार पडे। बीमारी इतनी बढ गई कि गाँधीजी को जीने की आशा भी न रही। फिर केलकर नामक एक सज्जन के बरफ का उपचार करने से लाभ हुआ और धीरे-धीरे रोग दूर हो गया। जब यह बीमार थे तभी जर्मनी की पूरी हार हो चुकी थी। इसलिए कमिश्नर ने इन्हे कहला

दिया कि अब रगरूटो की भरती करने की आवश्यकता नही है।

× × × ×

अफ्रीका से लौटने के बाद गाँधीजी राष्ट्रीय महासभा के कामो में भी खूब रस लेने लगे। जब अगस्त १९१७ में भारत मे श्री माण्टेगू के आने की घोषणा हुई तो गाँधीजी द्वारा सगठित गुजरात-सभा ने नवम्बर मे यह योजना निश्चित की कि कॉंग्रेस और होमरूल लीग की ओर से उन्हे एक अर्ज़ी दी जाय जिस पर अधिक-से-अधिक आदमियो के दस्तखत लिये जायँ। कॉंग्रेस एव लीग को यह प्रस्ताव पसन्द आया और फलत दिल्ली मे श्री माण्टेगू को यह अर्ज़ी भेट की गई। इसमे हजारो आदमियो के दस्तखत थे।

मांटेगू को अर्ज़ी

इसी प्रकार १७ दिसम्बर १९,१७ को उन्होने 'बाम्बे को-आपरेटिव कान्फ्रेन्स' और ३ नवम्बर को गुजरात राजनीतिक सम्मेलन एव गुजरात शिक्षा-सम्मेलन के सभापति का कार्य किया। दिसम्बर मे कलकत्ता कॉंग्रेस के साथ समाज-सेवा-सघ का पहला अधिवेशन हुआ। उसके भी यही अध्यक्ष थे।

× × × ×

महायुद्ध की समाप्ति हो रही थी। उधर सरकार ने भारतीयो की सेवाओ का उचित पुरस्कार देने के बदले कतिपय हत्याकाण्डो एवं षड्यन्त्रो का बहाना लेकर जनता के अधिकारो में और कमी करने का निश्चय कर लिया था। इसके लिए रौलट कमेटी बैठी और रौलट बिल कौंसिल मे पेश हुआ। उसका एक स्वर से सम्पूर्ण भारत मे विरोध हुआ था। विरोध की सभाओ की धूम मच गई। एक तहलका मचा हुआ था। जनता की आशाओ पर यह तुषारपात था। उसने आज के दिन पर बडी-बडी आशाएँ लगा रक्खी थी। पर ऐसे ही समय वज्रपात हुआ, निराशाओ के बादल छा गये।

रौलट ऐक्ट

जब भारत पुरस्कार की आशा करता था तब उसे दण्ड मिला। भारत की सेवा का यह अद्भुत जवाब था। दुनिया के इतिहास मे ऐसे उदाहरण इने-गिने है। पर विधाता को ऐसी ही विषमताओ के बीच तपाकर भारत का भाग्य गढना था। अस्तु, इस भारत-व्यापी विरोध की भी सरकार ने उपेक्षा की। कानून बन गया। गाँधीजी ने वायसराय को बहुत लिखा, आर्जू-मन्नत की पर उसका कुछ ख़याल न किया गया। अन्त मे विवश होकर सत्याग्रह का निश्चय करना पडा। बम्बई मे गाँधीजी की अध्यक्षता मे केन्द्रीय सत्याग्रह-समिति स्थापित हुई। २८ फरवरी १९१९ को गाँधीजी ने वह प्रसिद्ध प्रतिज्ञापत्र निकाला जिसमें इस कानून को न मानने की घोषणा थी। इसपर लोगो के दस्तखत लिये गये। गाँधीजी जनता को तैयार करने के लिए सारे देश मे दौरा कर रहे थे। सभाओ की धूम थी। गाँधीजी जहाँ जाते लोगो को सत्याग्रह का मर्म समझाते। पहले ३० मार्च को सत्याग्रह का दिन निश्चित किया गया था पर बाद मे बदलकर ६ अप्रैल की तारीख़ रखी गई। इस दिन हडताल करने, उपवास करने एवं सभा करके इस कानून के प्रति विरोध प्रकट करने का कार्यक्रम रखा गया था। सारे देश मे जोरो से हडताल हुई। बम्बई, दिल्ली इत्यादि मे

सत्याग्रह का निश्चय और तैयारी

जनता का जोश देखने लायक था। केन्द्रीय समिति ने जब्त किताबे बेचकर कानून तोडने का भी कार्यक्रम रखा। गाँधीजी ने 'सत्याग्रही' नामक एक पत्र बिना डिक्लेरेशन दिये निकाला। इसकी तथा अन्य जब्त पुस्तको की (जिनमे उनकी 'सर्वोदय' एव 'हिन्द-स्वराज्य' नामक पुस्तके थी) ज़ोरो से बिक्री हुई। लोगो ने पचास-पचास रुपये देकर उन्हे ख़रीदा और यह सब आय सत्याग्रह के काम मे लगाई गई।

हडताल और कानून-भंग

तिथि-परिवर्तन की सूचना देर से पहुँचने के कारण दिल्ली मे ३० मार्च को ही हडताल हुई थी। उस समय से दिल्ली एव पजाब के कार्य-कर्ता गाधीजी को तुरन्त आने के लिए लिख रहे थे। ७ अप्रेल की रात को वह बम्बई से दिल्ली के लिए रवाना हुए। १० तारीख को प्रात काल कोसी मे ट्रेन मे ही शान्ति-भग की सभावना बताकर पजाब एव दिल्ली की सीमा में प्रवेश न करने की आज्ञा उनपर तामील की गई। उन्होने आज्ञा मानने से इन्कार किया। फलत गिरफ्तार करके वह बम्बई लाये गये और वहाँ छोड़ दिये गये। वहाँ उनपर यह आज्ञा तामील की गई कि बम्बई प्रान्त के अन्दर ही अपना कार्यक्षेत्र सीमित रखे। उधर उनकी गिफ्तारी से देश मे बड़ी उत्तेजना फैली। कई स्थानो मे दगे हो गये। गाँधीजी ने शुद्ध सत्य के पालन की दृष्टि से अहिंसा को आन्दोलन का मूलाधार रखा था। इस-लिए इस प्रकार दगे होने के कारण उन्होने १८ अप्रैल को आन्दोलन स्थगित कर दिया। बहुतेरे साथी इसमे नाराज भी हुए पर सत्याग्रही अपने धर्म को कैसे छोड सकता था ? इस समय इन्होने इन दगो के कारण तीन दिन का उपवास भी किया।

पंजाब में प्रवेश-निषेध

पंजाब-हत्याकाण्ड

इधर यह सब हो रहा था उधर पजाब मे जो दगे हुए उनके कारण सरकार ने वहाँ फौजी कानून जारी कर दिया। अमृतसर के जलियाँवाला बाग की सभा मे अनेक शान्त निर्दोष व्यक्ति जेनरल डायर की गोलियो से भून दिये गये। जमीन निरपराधो के रक्त से रँग गई। स्त्रियो पर भी अत्याचार किये गये। लोगो को नाक के बल चलवाया गया। ऐसा मालूम होता था मानो मध्ययुग का बर्बर शासन पजाब की भूमि पर उतर आया हो और नगा

सैनिक शासन

नाच रहा हो। इस कत्लेआम की बाते एव डायर की काली करतूते ब्रिटिश जाति के मुख पर स्याही की भाति पुत गई है और सदा के लिए पुत गई है। खैर; देश-विदेश मे इन कारनामो के कारण हाहाकार मच गया, बड़ा व्यापक विरोध हुआ। फलत सरकार की ओर से जाँच के लिए हण्टर-कमेटी वैठी। राष्ट्रीय महासभा ने उसका वहिष्कार किया और स्व० मोतीलालजी, देशवधु, गाधीजी, अब्बास तैयवजी और श्री जयकर की एक स्वतत्र कमेटी जाच के लिए नियुक्त की। इस कमेटी ने वडी सावधानी से जाच की और जव इसकी रिपोर्ट निकली तो ऐसे रोमाचकारी कृत्यो का पता लगा जो मानव-जाति के इतिहास की अत्यन्त घृणित घटनाओ मे गिने जायँगे।

फौजी कानून के अनुसार सैकडो पजावियो को जेल भेजा गया था। दमन ज़ोरो से हो रहा था पर सार्वजनिक विरोध के कारण सरकार ज्यादा दिन तक वह नीति कायम न रख सकी।

सुधारो का समर्थन

फलत दिसम्बर के पहले वहुत-से कैदी छोड दिये गये। उधर नवीन सुधारो की घोषणा प्रकाशित हो चुकी थी पर वह अत्यन्त असतोपजनक थी। फिर भी गाधीजी का श्री माण्टेगू में विश्वास था। महासभा के पहले कैदियो को छोड देने एव अली-वधुओ की रिहाई से उन्होने समझा था कि सरकार को अपने कार्यो पर पश्चात्ताप है। इसीलिए अमृतसर-काग्रेस मे उन्होने सुधारो को अपर्याप्त वताते हुए भी उनका समर्थन किया था, यद्यपि देशवधु, तिलक इत्यादि विरुद्ध थे। पर शीघ्र ही उनको मालूम हो गया कि यह वात गलत है। खिलाफ़त के मामले मे मुसलमानो के साथ अन्याय हुआ था,

स्वप्न-भंग

उधर इग्लैण्ड मे जेनरल डायर की निन्दा करने की जगह उसका स्मारक वनाया जा रहा था और उसे थैलियाँ भेट की जा

रही थी। कांग्रेस का नया सगठन किया गया। सितम्बर १९२० की कलकत्ता की विशेष कांग्रेस में उन्होने असहयोग-आन्दोलन का कार्य-क्रम पेश किया जो पास हो गया और दिसम्बर मे नागपुर-कांग्रेस ने उस पर स्वीकृति दे दी। फलत. १९२० से देश के स्वाधीनता-आन्दोलन के इतिहास में स्वावलम्बन के एक नये युग का आरम्भ हुआ।

असहयोग-आंदोलन

गाधीजी इतने दिनो मे जो तपस्या एव साधना कर रहे थे वह सार्वजनिक जीवन मे गगा की पावन-कारी धारा की भाँति प्रवाहित हो उठी।

अभूतपूर्व-जागरण

वह तूफान आया; वह सामूहिक जागरण दिखाई पडा जो भारत के इतिहास मे बिलकुल नया और आश्चर्यजनक था। अनेक वकीलो ने वकालत छोड दी, विद्यार्थियो ने स्कूल-कालेजो का पल्ला छोडा, कौसिलो एव अदालतो का जबर्दस्त बहिष्कार हुआ। लोगो ने अपनी उपाधियाँ लौटा दी। प्रिंस ऑव् वेल्स के आगमन के समय जबर्दस्त हडताल हुई। हजारो आदमी जेल गये। इसके पहले से ही गाधीजी 'नवजीवन' और 'यग इण्डिया' पत्र अहमदाबाद से निकालने लगे थे।

इस बीच मालवीयजी ने वायसराय से मिलकर समझौते का बडा प्रयत्न किया पर वायसराय टस से मस न हुए। १९२१ मे अहमदाबाद मे कांग्रेस हुई। और उसमे गाधीजी सत्याग्रह-आन्दोलन के सर्वेसर्वा (डिक्टेटर) बनाये गये। १४ जनवरी १९२२ ई० को बम्बई मे नेताओ की एक कान्फ्रेंस हुई। इसमे गाँधीजी शामिल हुए पर ऐसी कान्फ्रेसो से कुछ नतीजा निकलता न देख बारडोली मे सत्याग्रह-सग्राम आरभ करने के निश्चय की सूचना देते हुए भारत-सरकार को उन्होने चुनौती भेजी।

बारडोली मे सत्याग्रह की तैयारियाँ हो ही रही थी कि युक्तप्रान्त

के गोरखपुर जिले मे चौरीचौरा का हत्याकाण्ड हो गया। उत्तेजित जनता ने पुलिस की कार्रवाइयो से त्रस्त हो थाने मे आग लगा दी। पुलिस के २२ आदमी मारे गये।

चौरीचौरा

गाँधी जी ने, जो अपना प्रत्येक काम अन्तरात्मा की प्रेरणा और प्रभु की साक्षी से करते थे, देखा कि जनता की ऐसी हिंसात्मक मनोवृत्ति के बीच आन्दोलन नही चल सकता। और इस घटना को ईश्वरीय चेतावनी समझ, महासभा भी कार्य-समिति की सलाह से, बारडोली सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

गाँधी जी की गिरफ्तारी होने की अफवाह तो बहुत दिनो से फैल रही थी। यहाँ तक कि उन्होने 'यग इण्डिया' मे राष्ट्र से विदाई भी ले ली थी और लोगो से अपने निश्चय पर दृढ रहने की अपील की थी। अन्त मे अफवाह सच्ची हुई। १० मार्च (शुक्रवार) १९२२ को वह साबरमती आश्रम मे, 'यग इण्डिया' के प्रकाशक श्री शकरलाल बैंकर के साथ, गिरफ्तार कर लिये गये और 'यग इण्डिया' मे प्रकाशित चार लेखो को लेकर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। ११ ता० को मुकदमे की पेशी हुई। मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ। १८ मार्च को सेशन जज श्री सी० एन० ब्रूमफील्ड के सामने मुकदमे की पेशी हुई। इस मुकदमे की तुलना ईसामसीह के मुकदमे से की गई है। गाँधीजी ने स्वय जुर्म कबूल कर लिया। जज ने उनके दर्शन से अपने को धन्य माना पर कर्तव्य-वश छ वर्ष की सज़ा दी। जेल मे गाँधी जी का जीवन सच्चे सत्याग्रही और तपस्वी का जीवन था।

गाँधी जी की गिरफ्तारी

देश के अँधेरे कोने मे पडे हुए चर्खे को सार्वजनिक जीवन मे लाकर भारत के सबसे शक्तिमान धधे को पुनर्जीवित करने एव हज़ारो लाखो

गरीब भाई-बहनो के पेट मे रोटी डालने का श्रेय गाँधीजी को ही है।

खादी-आन्दोलन

अपनी सहकर्मिणी गगा बहन की सहायता से असहयोग-आन्दोलन के पहले इन्होने गाँवो से चर्खे को खोज निकाला और धीरे-धीरे इतना विस्तृत खादी-आन्दोलन देश मे खडा कर दिया। आज उसका देशी उद्योग मे जो महत्त्व है, उसे सब जानते है। वह स्वयं तो अपने एव अपने साथियो के लिए नित्य कताई को यज्ञ एव व्रत रूप मानते है।

× × × ×

महात्मा गाँधी के जेल जाने के बाद धीरे-धीरे आन्दोलन शिथिल हो गया। देश मे शुरू से एक ऐसा दल था जो राष्ट्रीय कार्य मे कौसिलो का उपयोग करना चाहता था। फलत देशबन्धु एव मोतीलाल जी ने स्वराज दल की नीव डाली। इससे बहुत दिनो तक तो काँग्रेस मे बडी दलबन्दी रही और परस्पर कलह का तूफान उठ खडा हुआ पर बाद में समझौता हो गया।*

गाँधीजी को जेल में रहते प्राय दो वर्ष बीते थे कि उनका स्वास्थ्य खराब हो गया और धीरे-धीरे पेट मे फोडा (अपेण्डाइसिटीज) हो गया।

पेट में फोड़ा और रिहाई

अवस्था ऐसी हो गई थी कि सरकार ने आप्रेशन की जिम्मेदारी अपने पर लेने से इन्कार कर दिया। गाधीजी ने अपनी जिम्मेदारी पर सासून अस्पताल (पूना) मे कर्नल मैडक से आप्रेशन कराया। यह जनवरी सन् १९२४ की बात है। इसके बाद ही वह छोड दिये गये।

पर इस समय तक देश की अवस्था बहुत खराब हो गई थी। जहाँ

---

* इस दल का वर्णन मोतीलालजी एवं देश-बन्धु के चरित्रो में किया गया है।

हिन्दू-मुसलमानो मे एकता की मधुर कल-कलस्विनी वहती थी वहाँ ईर्ष्या-द्वेष का तूफान आया। अनेक स्थानो मे दगे हुए। इनका प्रभाव गाधीजी के हृदय पर पडा। उनके दिल मे वडी व्यथा हुई। उन्होने राष्ट्र के प्रायश्चित्त-स्वरूप स्वय २१ दिन के उपवास की घोषणा की। ११ सितम्वर १९२४ को यह घोपणा प्रकाशित हुई थी जिसे पढकर सारा भारत काँप गया।

उपवास की घोषणा

१७ सितम्वर को उपवास शुरू हुआ। इस समय वह दिल्ली मे मौलाना मोहम्मदअली के अतिथि थे। इस उपवास की घोपणा से मित्र घवड़ा गये। हकीम अजमलखाँ, मोहम्मदअली, डा० असारी इत्यादि ने समझाया पर गाधीजी का कहना था कि 'मेरा अनशन मेरे और प्रभु के बीच का झगड़ा है। वह टूट नही सकता।' इसके साथ ही उन्होने यह भी लिखा —"मेरा प्रायश्चित्त एक विदीर्ण और क्षत-विक्षत हृदय की, अनजान में किये पापो के लिए, क्षमा-प्रार्थना है।" इन पक्तियो मे गाँधीजी का निर्मल हृदय वोल रहा है, यहाँ हम उनकी साधना का श्रेष्ठ रूप देखते है। इस उपवास का परिणाम यह हुआ कि दिल्ली में सव धर्मो के प्रतिनिधियो का ऐक्य-सम्मेलन हुआ। इसमे भारतीय ईसाइयो के धर्म-गुरु (मेट्रोपालिटन ऑव् इण्डिया) भी शामिल हुए थे। इससे स्थायी फल तो कुछ न निकला पर तात्कालिक परिणाम यह जरूर हुआ कि भिन्न-भिन्न धर्मानुयायियो को एक-दूसरे को समझने एव सम्पर्क मे आने का मौका मिला। उपवास निर्विघ्न समाप्त हुआ। यद्यपि इस उपवास ने शारीरिक दृष्टि से गाँधीजी को वहुत कमज़ोर कर दिया पर उनकी आत्मिक ज्योति और पूँजी वहुत वढ़ गई।

अनशन का आरम्भ

दिसम्वर १९२४ मे गाँधीजी वेलगाँव-काँग्रेस के अध्यक्ष हुए। उनका भाषण शव्दाडम्वर से विलकुल मुक्त, छोटा और काम-काज की वातो

से भरा हुआ था। उन्होने काग्रेस के दोनो दलो (परिवर्तन-वादी, अपरिवर्तन-वादी) मे समझौता भी कराया। यहाँ गाँधीजी के प्रयत्न से एक विधायक कार्य-क्रम स्वीकृत हुआ। खादी, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य इसके मुख्य अग थे। असहयोग-आन्दोलन स्थगित हो गया।

बेलगांव-काग्रेस

गाँधीजी ने अपनी शक्तियाँ विधायक कार्य-क्रम की पूर्ति मे लगा दी और उनके प्रयत्नो से खादी-कार्य मे बडी उन्नति हुई। मलाबार मे हरिजनो का (वैकम) सत्याग्रह चल रहा था। गाधीजी के प्रयत्नो से वह भी शान्त हुआ।

उधर मोतीलालजी एव सर सप्रू के प्रयत्न से सब दलो के नेताओ की एक कान्फ्रेस हुई। और उसने एक उप-समिति इस बात के लिए बनाई कि सर्व-सम्मति से राष्ट्रीय माँग, भारत के भावी शासन-विधान की रूप-रेखा के रूप मे, तैयार करे। फलत नेहरू-रिपोर्ट निकली और लखनऊ के सर्वदल-सम्मेलन में स्वीकृत हुई। इसमे औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गई थी। उधर युवक-दल पूर्ण स्वतत्रता से कम मे सन्तुष्ट होने के लिए तैयार न था। दिसम्बर १९२८ मे, मोतीलालजी की अध्यक्षता मे, कलकत्ता मे काँग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसमे यह भेद स्पष्ट दिखाई पडा। जवाहरलालजी इत्यादि इस प्रकार की प्रार्थनाओ एव माँगो से असन्तुष्ट थे पर गाँधीजी के प्रयत्न से यह समझौता हुआ कि यदि एक वर्ष के अन्दर—३१ दिसम्बर १९२९ तक—सरकार राष्ट्र की इस निम्नतम माँग को पूरा न कर दे तो काँग्रेस का ध्येय वदलकर पूर्ण स्वतत्रता कर दिया जाय।

राष्ट्रीय माग

इधर ये सब घटनाएँ हो रही थी, उधर मई १९२९ मे इग्लैण्ड मे पार्लमेण्ट का नया चुनाव हुआ। मजूर दल के हाथ मे शासन आया।

इससे भारत मे लोगो की आशाएँ बढ गई क्योकि वह सदा से भारतीय आकॉक्षाओ के साथ मौखिक सहानुभूति दिखाता आ रहा था। पर उसने भारत के विषय मे कुछ दूर-दर्शिता न दिखाई। इधर कॉंग्रेस की दी हुई एक साल की अवधि पूरी होने को आ रही थी। लोगो मे असन्तोष बढ रहा था। इस समय वायसराय—लार्ड-इरविन—सलाह-मशविरे के लिए, खास तौर पर, इग्लैण्ड गये थे। वहाँ से लौटकर ३१ अक्तूबर १९२९ को उन्होने घोषणा की कि 'भारत मे ब्रिटिश नीति का उद्देश्य धीरे-धीरे भारत को उपनिवेशो की पक्ति मे लाना है।' यह भाषण गोल-माल था, इससे लोगो को सतोष कैसे होता? उधर भारतीय सुधार की समस्याओ की जाच करने के लिए साइमन कमीशन बैठाया गया, उसमे एक भी भारतीय के न रहने के कारण उसका देश-व्यापी विरोध एव बहिष्कार हुआ। इस विरोध में लिबरल भी शामिल थे। कॉंग्रेस के नेता चाहते थे कि वायसराय या ब्रिटिश सरकार यह विश्वास दिला दे कि कमीशन की रिपोर्ट निकलने के बाद जो गोलमेज-सम्मेलन ('राउण्ड-टेबुल-कान्फ्रेस') होगा उसका उद्देश्य स्वतंत्र औपनिवेशिक मर्यादा के शासन-तंत्र की योजना बनाना ही होगा और सरकार उसका समर्थन करेगी। गाँधीजी इस सम्बन्ध मे २३ दिसम्बर १९२९ को वायसराय से मिले भी पर कुछ तै नही हुआ। फलत. दिसम्बर के अन्त मे लाहौर कॉंग्रेस हुई। वे तूफानी दृश्य देखने लायक थे। कॉंग्रेस ने अपने वचन के अनुसार ३१ दिसम्बर की आधी रात तक प्रतीक्षा की। जब सरकार की ओर से कोई आश्वासन नही मिला तो उसने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास कर दिया। कॉंग्रेस ने कौंसिल के बहिष्कार का प्रस्ताव भी पास किया।

साइमन-कमीशन

२५ जनवरी १९३० को असेम्बली मे वायसराय का भाषण हुआ।

२६ जनवरी को सारे देश मे स्वतत्रता-दिवस मनाया गया जिसमे स्वतत्रता की घोषणा दोहराई गई। यह काग्रेस के निश्चय पर देश की स्वीकृति की मुहर थी। वायसराय के भाषण के उत्तर मे गाँधीजी ने उनके सामने ११ माँगे रक्खी। जिनमे मुख्य ये थी—(१) मादक द्रव्यों का पूर्ण निषेध (२) विनिमय की दर १ शिलिंग ६ पेंस से १ शिलिग ४ पेंस कर दी जाय। (३) ज़मीन के लगान मे कम-से-कम ५० प्रतिशत की कमी (४) नमक-कर हटा दिया जाय। (५) सैनिक व्यय कम-से-कम ५० प्रतिशत कम कर दिया जाय। ये शर्तें गाँधीजी ने पारसी श्री बोमनजी को भी लिख भेजी थी जो पहले से ही प्रधान मत्री श्री रैममे मैकडानल्ड से समझौते की बाते कर रहे थे।

गांधी की ग्यारह शर्तें

१९३० का महान् सत्याग्रह-आन्दोलन

पर इन बातो से क्या होना-जाना था ? गाधीजी इसे जानते थे। अत उन्होने राष्ट्र को तैयार करना शुरू किया। १५ फरवरी को अहमदाबाद मे काँग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक हुई। उसने महात्माजी को आन्दोलन के सम्बन्ध मे सर्वाधिकार दे दिया। गाधीजी का पहला काम वायसराय को पत्र लिखा था। यह पत्र उन्होने रेजीनाल्ड रेनाल्ड नामक एक अग्रेज़ युवक के हाथ भेजा। इस कार्य से उन्होने प्रकट किया कि अग्रेजो से उनका व्यक्तिगत कोई द्वेष नही है। लडाई शासन-प्रणाली से—सरकार से है। इस पत्र मे उन्होने वायसराय से भारत की मागो के विषय मे अन्तिम अपील की थी और कहा था कि 'यदि १० मार्च तक इसका उत्तर न मिला तो १० मार्च को नमक-कानून भग करने के लिए मै कुछ साथियो के साथ आश्रम से प्रस्थान करूँगा।' वायसराय ने अपने उत्तर मे गाधीजी के इस निश्चय पर खेद प्रकट किया

वायसराय को पत्र

और ऐसे खतरनाक पथ पर न चलने की चेतवनी दी। महात्माजी ने उस पर टीका करते हुए लिखा—"**मैंने घुटने टेककर रोटी की भिक्षा माँगी थी पर मुझे उत्तर में पत्थर का टुकड़ा मिला। अंग्रेज जाति केवल बल के आगे ही झुकना जानती है··· ········· ।**"

गाँधीजी ने इस यात्रा के लिए आश्रम के केवल ऐसे आदमियो को चुना था जो प्रत्येक दशा मे अहिंसात्मक रह सकते थे। इस टुकडी में सब प्रान्तो के लोग लिये गये थे। गाधीजी ने प्रतिज्ञा की कि स्वराज मिलने के पहले अब मै रहने के लिए आश्रम को न लौटूँगा। १२ मार्च को, ७९ साथियो के साथ, दाँडी-यात्रा शुरू हुई। वह अद्‌भुत दृश्य था। किसी की समझ मे न आता था कि यह दुबला-पतला आदमी चन्द निरस्त्र साथियो के साथ ब्रिटिश साम्राज्य से कैसे लडाई करेगा। जहाँ-जहा यह दल पहुँचता तहाँ-तहाँ सभाएँ होती, गाधीजी लोगो को सत्याग्रह का मर्म समझाते। दाडी पहुँचने तक तो सारा देश उत्साह से भर गया।

महायात्रा

इस बीच २१ मार्च को भारतीय काँग्रेस कमिटी की बैठक हुई जिसने देश को आदेश किया कि महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद या ६ अप्रैल से (जो पहले हो) सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय। ६ अप्रैल को दाँडी मे गाधीजी एव उनके दल ने नमक-कानून भग किया। सारे देश मे सत्याग्रह की धूम मच गई। गिरफ्तारियाँ होने लगी। अनेक स्थानो मे पुलिस ने नमक बनाने मे काम आनेवाले बर्तनो को फोड दिया। कही-कही जलता नमक सत्याग्रहियो पर डाला गया पर इन सबको स्वयसेवको ने वीरता-पूर्वक सहन किया। लाठी चार्ज तो साधारण बात हो गई। बम्बई ने इस बार कमाल कर दिया। सैकडो मन नमक समुद्री क्यारियो पर धावा बोलकर सत्याग्रही उठा लाते

क़ानून-भंग

और बाज़ार मे खुलेआम बेचते। पैदल एव अश्वारोही पुलिस की मार से इस कार्य मे कितने ही घायल हुए, एक-दो बार गोलियाँ भी चल गई। ५ मई को गाधीजी गिरफ्तार हुए पर इससे देश मे और उत्साह फैल गया। अभी तक केवल नमक-कानून भग किया जा रहा था। कई प्रान्तो मे जगल सत्याग्रह ने जोर पकडा और अनेक प्रकार के अनुचित कानून तोडे जाने लगे। कही जगल-सत्याग्रह, कही जब्त पुस्तको की बिक्री, कही मादक द्रव्य एव अग्रेजी माल पर पिकेटिंग करके लोग धडाधड जेल जा रहे थे। सरकार दमन पर तुल गई थी। विशेष कानून (आर्डिनेन्स) बनाकर अखबारो के मुंह बन्द कर दिये गये, राष्ट्रीय सस्थाएँ गैर-कानूनी करार दी गई। पर इन सब बातो से आन्दोलन दब न सका। स्त्रियो मे इस आन्दोलन से ऐसा जागरण हुआ और उन्होने इस वीरता से अपना हिस्सा लडाई मे दिया कि भारतीय इतिहास के अत्यन्त गौरवपूर्ण पृष्ठो मे उसका वर्णन किया जायगा। जो काम वर्षो का था वह दिनो मे हुआ। स्त्रियो ने परदा फाड फेका और उच्च घराने की कोमलागी बहने मैदान मे निकल आई। इनसे भारतीय नारी की अत्यन्त तेजस्विनी मूर्ति हमारे बीच प्रकट हुई। उसने अपनी वीरता, कष्ट-सहिष्णुता और त्याग से पुरुषो को लज्जित कर दिया। यह उन्ही का उत्साह था जिसने असभव को सभव कर दिया। शराब-ताडी इत्यादि की बिक्री नाम-मात्र को रह गई। बहुत जगह तो इनके ठेके ही नही उठे और जहाँ उठे भी वहाँ बहुत थोडी बोली मे। कितनी जगह—जैसे दिल्ली मे—शराब की दुकानो पर ऐसी पिकेटिंग हुई कि वे प्राय बन्द ही रही। विदेशी कपडो की बिक्री बिलकुल घट गई। ज्यादातर प्रान्तो में तो वस्त्र-विक्रेताओ का विदेशी स्टाक काग्रेस की मुहर लगाकर बन्द कर दिया गया। इस समय तो ऐसा मालूम

गाधीजी की गिरफ्तारी

होता था मानो देश मे काँग्रेस का ही राज है। सरकार को करोडो रुपयो का घाटा होने लगा। उधर खीझकर वह आर्डिनेन्स-पर-आर्डिनेन्स निकालने लगी। पर इससे आन्दोलन मे कोई कमी न हुई। अन्त मे सप्रू-जयकर के प्रयत्नो से जेल मे ही गाँधीजी, मोतीलालजी, जवाहरलालजी इत्यादि मे सलाह-मशविरा हुआ। वायसराय ने काँग्रेस-कार्यकारिणी के सब सदस्यो को बिना किसी शर्त के छोड दिया। इस समय तक करीब एक लाख आदमी जेल जा चुके थे। अन्त मे गाधीजी और लार्ड इरविन की कई दिन की बात-चीत के बाद सरकार और कॉग्रेस के बीच समझौता हुआ। सत्याग्रही कैदी छोड दिये गये, कराची मे घूम-धाम से काँग्रेस हुई और उसके निश्चयो के अनुसार काँग्रेस के एक-मात्र प्रतिनिधि की हैसियत से गाधीजी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मे सम्मिलित हुए।

गांधी-इरविन समझौता

पर सरकार की मनोवृत्ति तो वही थी। उसमे कोई परिवर्तन न हुआ था। अकेले लार्ड इरविन के भले आदमी होने से भारत-शासन मे क्या उलट-फेर हो सकती थी? उधर गाधीजी इग्लैड गये, इधर युक्तप्रान्त मे किसानो की लगान मे कमी करने की माँगो को ठुकराकर, तथा सीमाप्रान्त और बगाल मे आर्डिनेन्स जारी कर, सरकार ने स्थिति विषम कर दी। इससे युक्तप्रान्त मे किसानो को आर्थिक सत्याग्रह जारी करना पडा। इतने दिनो तक महात्माजी गोलमेज-सम्मेलन के सम्बन्ध मे इग्लैण्ड मे रहे। यो तो कितने ही भारतीय प्रतिनिधि सम्मेलन मे गये थे पर जिस निर्भीकता से गाधीजी ने काम लिया और विषय एव परिस्थिति को स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त करने और कराने की जो आकाक्षा एव उत्कण्ठा उन्होने प्रकट की, वह किसी दूसरे मे देखी न गई। इग्लैण्ड मे उनका खूब स्वागत हुआ। जनता ने,

गांधीजी इग्लैण्ड में

मजूरो ने उन्हे खूब अपनाया। बडे-बडे मनीषी एव प्रत्येक क्षेत्र के प्रतिष्ठित पुरुषो के सम्पर्क मे आये पर इन सब वातो के होते हुए भी उनपर यह तो स्पष्ट हो ही गया कि सरकार भारत को वास्तविक अधिकार देने को उत्कण्ठित नही है, कोरे शब्द-जाल को लेकर वह चलती है। वहाँ से वह बहुत निराश होकर लौटे। वस्तुत वह यूरोप के अन्य देशो मे भी जाना चाहते थे पर भारत से उनके शीघ्र लौट आने के लिए पत्र और तार मिल रहे थे अत फ्रास मे प्रसिद्ध शान्तिप्रिय कलाविद् और विचारक रोम्याँ रोलाँ से मिलकर वह भारत लौट आये।

लौटने पर

गाँधीजी के लौटने पर तुरन्त ही काग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक बम्बई मे करने का निश्चय हुआ था। यद्यपि युक्तप्रान्त मे किसानो का सत्याग्रह चल रहा था और उधर कई प्रान्तो मे दमन भी चल रहा था पर गाधीजी की इच्छा शान्ति-पूर्वक दोनो पक्षो का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने की थी। इसी समय काग्रेस-कार्यकारिणी की वैठक मे शरीक होने के लिए बम्बई जाते हुए जवाहरलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। उनपर इलाहाबाद न छोडने की आज्ञा तामील की गई थी पर यह अनुचित थी क्योकि उनकी पत्नी वम्वई मे बहुत ज्यादा वीमार थी; दूसरे काग्रेस के प्रधान मत्री होने के कारण काग्रेस-सम्बन्धी अधिकाश कागज-पत्र उन्ही के पास थे। युक्तप्रान्त की समस्या पर ठीक तौर से विचार करने के लिए युक्तप्रान्तीय काग्रेस-कमिटी के अध्यक्ष श्री शेरवानी भी वम्वई जा रहे थे, उन्हे भी जवाहरलाल की भाँति ही, उसी जुर्म मे गिरफ्तार किया गया। इससे बडी उत्तेजना फैली। लोगो ने समझा कि सरकार अपने वादो पर स्थिर नही है और दमन पर उतारू हो गई है। इतना सब होते हुए भी गाँधीजी ने वायसराय (लार्ड विलिंगडन) से मिलकर देश एव सरकार

की स्थिति पर बातचीत करने की इजाजत माँगी। वह इजाजत भी नही मिली। वस्तुत सरकार ने लडाई की सब तैयारी पहले से ही कर ली थी। मजबूर होकर काग्रेस को फिर सत्याग्रह-आन्दोलन जारी करना पडा। इस बार सरकार ने बडे वेग एव कडाई से दमन आरभ किया। न केवल काग्रेस सस्थाएँ—वरन् सब प्रकार की राष्ट्रीय सस्थाएँ जिनसे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता काग्रेस के काम मे मिलती थी—गैर-कानूनी करार दे दी गई। बहुतेरे छात्र-सघ, स्वदेशी-सघ, खादी-भण्डार तक इस लपेट मे आ गये। गैर-कानूनी करार देकर ही सरकार रह गई हो सो बात भी नही, इनमे से अधिकाश पर उसने कब्जा कर लिया। सत्याग्रहियो को भाडे पर मकान देने के लिए कितने ही आदमी गिरफ्तार किये गये, हडताल करने के कारण कितने ही दुकानदारो पर जुर्माना किया गया। अखबारो मे सत्याग्रह की खबरे छापना, सत्याग्रहियो की तस्वीर छापना जुर्म करार दिया गया। सुव्यवस्था के शासन की जगह भय और आतक का राज्य शुरू हुआ। यह कॉग्रेस के सगठन एव जनता पर उसके अधिकार का द्योतक है कि ऐसे घोर दमन के युग मे भी बराबर आदोलन चलता रहा। डेढ वर्ष मे (१९३३ के मई तक) साठ हजार से अधिक आदमी जेल गये।

फिर सत्याग्रह

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अवस्था की खराबी, किसानो की दुर्बल स्थिति, देश मे व्यापार की गिरी दशा के कारण १९३३ से सत्याग्रह-आन्दोलन की गति धीमी पडने लगी। इसका एक मुख्य कारण नेताओ की अनुपस्थिति थी और दूसरा कारण यह कि सरकार ने युक्तप्रात मे किसानो की इच्छा की बहुत करके पूर्ति कर दी। फिर इतने लम्बे युद्ध मे सदा एक-से उत्साह की आशा ही कैसे की

१९३३ में

जा सकती है ? फिर इस बार आदोलन मे प्रदर्शनो के अभाव एव कानूनी बाधाओ के कारण सच्ची खबरे न मिलने से भी जनता अधकार मे रही। तब भी किसी-न-किसी रूप मे आदोलन हुआ। १९३३ में कलकत्ता में श्रीमती नेली सेन गुप्त की अध्यक्षता मे काग्रेस हुई। मालवीयजी इसके अध्यक्ष चुने गये थे पर वह रास्ते मे ही गिरफ्तार कर लिये गये। इस सम्बन्ध मे और भी बहुत-सी गिरफ्तारियाँ हुई पर प्राय सब आदमी कुछ दिनो बाद छोड दिये गये। काग्रेस का आदोलन तो चलता रहा पर कानूनी बाधाओ के कारण उसका रूप बडा विकृत एव गुप्त हो गया।

× × ×

हरिजन-सेवा

अस्पृश्यता को गाँधीजी सदा से हिन्दू धर्म एव मनुष्यता का कलक मानते रहे है। उनका कहना है कि सवर्ण हिंदुओ ने अछूतो के साथ लज्जा-जनक एव घृणास्पद व्यवहार करके अपने को नीचे गिरा लिया है, उन्हे इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। जहाँ तक गाँधीजी का सम्बन्ध है उन्होने अपने जीवन मे कभी अस्पृश्यता को स्थान नही दिया। आश्रम मे हरिजनो को उन्होने कुटुम्बी की तरह अपनाया था। उनकी सेवा उन्हे बडी प्रिय थी। उनके प्रयत्नो से १९२४ से ही काग्रेस ने अस्पृश्यता-निवारण को अपना एक मुख्य विधायक कार्यक्रम बनाया था। धीरे-धीरे काम चल रहा था पर सतोषजनक नही था। १९३१ मे जब वह गोलमेज-सम्मेलन मे गये थे तब (१३ नवम्बर १९३१) अल्प-सख्यक जातियो के विशेष प्रतिनिधित्व पर बोलते हुए उन्होने हरि-जनो को—अछूतो को—अलग प्रतिनिधित्व देकर सदा के लिए हिन्दुओ से उनका अलगाव कर देने की नीति की जबर्दस्त टीका की और यह भी कह दिया कि ऐसे किसी प्रयत्न का मै प्राणो की बाजी लगाकर भी विरोध करूँगा। पर उस समय किसी ने इस बात पर ज्यादा ध्यान न दिया था

और सरकार ने तो बिलकुल न दिया। इधर जब दूसरे सत्याग्रह-आदोलन के सिलसिले मे गाधीजी जेल मे थे तभी उन्हे पता चला कि सरकार शीघ्र ही जातिगत प्रतिनिधित्व के बारे मे निर्णय करेगी। इसलिए ११ मार्च को उन्होने भारत-सचिव सर सेमुएल होर को पत्र लिखा जिसमे अस्पृश्यो की समस्या पर विशेष चिन्ता प्रकट करते हुए यह सूचना दी कि यदि सरकार अपने निर्णय में इन 'अस्पृश्य' जातियो के लिए अलग प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करेगी तो मै अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार आमरण उपवास शुरू करूँगा।

अगस्त मे ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रधान-मत्री श्री रैंमसे मैकडानल्ड का निर्णय प्रकाशित हुआ, जिसमे अस्पृश्यो के लिए गोलमोल योजनाए थी। नमक-मिर्च भर लगा था पर रूप वही था जिसके विरुद्ध गाधीजी ने अपनी सम्मति प्रकट की थी। इसलिए १८ अगस्त को उन्होने प्रधान-मत्री को पत्र लिखकर सूचित किया कि २१ सितम्बर से मेरा आमरण अनशन शुरू होगा। और तबतक वह भग न होगा जबतक कि उस निर्णय को सरकार बदल न दे। प्रधान मत्री ने भी गोलमोल उत्तर दिया और निर्णय मे परिवर्त्तन करने से इन्कार कर दिया। इसलिए २० सितम्बर को १२ बजे दिन से यह आमरण उपवास—प्रायोपवेशन—अब्बास तैयबजी की लडकी द्वारा बनाये हुए निम्न-लिखित भजन के साथ आरम्भ हुआ—

प्रायोपवेशन का आरम्भ

उठ जाग मुसाफिर भोर भयो, अब रैंन कहाँ जो सोवत है ?
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है। उठ०॥

टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा
और अपने रब से ध्यान लगा

यह प्रीति करन की रीति नहीं, रब जागत है तू सोवत है !
उठ जाग मुसाफिर भोर भयो, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?
जो कल करना है आज करले,
जो आज करना है, अब करले
जब चिड़ियों ने चुंग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है ?
उठ जाग मुसाफिर भोर भयो, अब रैन कहाँ जो सोवत है ?

ज्योही सारा पत्र—व्यवहार प्रकाशित हुआ सारे भारत मे तहलका मच गया। मित्रो का आग्रह गाँधीजी को उनके पथ से विचलित न कर सका। उधर सरकार भी तनी हुई थी। इस बीच एक-मात्र उपाय यही था कि उच्चवर्ग के हिन्दुओ एव अछूतो के विभिन्न दलो के नेताओ पर परस्पर महात्माजी के सन्तोष के लायक समझौता हो जाय क्योकि सरकार ने अपना निर्णय करते समय कहा था कि यह निर्णय तबतक के लिए है जबतक तत्सम्बधी जातियो या दलो के नेता स्वय कोई समझौता न कर ले। बड़ी दौड़-धूप के वाद पूना मे सवर्ण हिन्दू नेताओ और अछूत नेताओ के बीच एक समझौता हुआ। इसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओ मे सारे भारत से कुल १४८ (बगाल ३०, बम्बई-सिन्ध १५, मद्रास ३०, युक्तप्रान्त २०, पजाव ८, बिहार-उडीसा १८, मध्यप्रान्त २०, आसाम ७) सदस्य चुनने का अधिकार अस्पृश्य जातियो को दिया गया और सयुक्त निर्वाचन की शर्तें रखी गई। यद्यपि इसमे भी स्थान सुरक्षित रखा गया था और यह समझौता भी गाँधीजी की शर्तो की पूर्णत. पूर्ति नही करता था फिर भी इसकी अन्त.भावना उनकी माँग के अनुकूल थी। इसलिए उन्होने इसे स्वीकार कर लिया और २६ सितम्वर को सरकार ने भी इसे स्वीकार कर, स्वीकृति की

हलचल

पूना का समझौता

सूचना गाँधीजी को दे दी। यह सूचना गाँधीजी को ४ वजे मिली। इस समय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी पहुँच गये थे। उनके तथा अन्य मित्रो एव स्नेहियो के सामने २६ सितम्वर को ५ वजे गाँधीजी ने उपवास भग किया। सरकार ने माता कस्तूर वा को उपवास-काल मे गाँधीजी की सेवा के लिए पहले ही छोड़ दिया था। उपवास-भग के लिए श्रीमती कमला नेहरू ने दो मीठे नीवुओ का रस निचोड़कर कस्तूर वा को दिया। उन्होने गाँधीजी को दिया। उसे काँपते हाथो से धीरे-धीरे गाँधीजी पी गये। इस प्रकार यह उपवास समाप्त हुआ। इसके वाद अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन करने के लिए गाँधीजी को सव प्रकार की सुविधा भी जेल मे ही, सरकार ने दे दी और जेल के भीतर से ही वह आन्दोलन चलाने लगे। उनके उपवास के समय ही वम्वई में हिन्दू नेताओ की एक सभा हुई थी और उसके निश्चय के अनुसार श्री घनश्यामदास विडला की अध्यक्षता मे भारतीय अस्पृश्यता-निवारण-सघ (जिसका नाम वदलकर पीछे हरिजन-सेवक-सघ कर दिया गया) स्थापित हुआ। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली मे रखा गया और भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे प्रान्तीय सघो तथा उनकी देखरेख मे जिला एव नगर-संघो का निर्माण हुआ। इस प्रकार गाँधीजी की प्रेरणा से इस दिशा मे सगठित कार्य शुरू हुआ। जेल के अन्दर से गाँधीजी इसका नेतृत्व करते रहे। सैकडो मन्दिर और कुएँ अछूतो—हरिजनो के लिए खोल दिये गये; जगह-जगह स्कूल खोले गये, उनकी गन्दी वस्तियो के सुधार की योजनाएँ वनाई गई। कई राज्यो ने घोषणा निकालकर उनकी असुविधाएँ दूर कर दी। जो काम युगो मे न हो सकता था, वह महीनो मे हुआ।

पर उन्होने देखा कि यह आन्दोलन भी पूर्ण सच्चाई एवं पवित्रता के साथ नही चल रहा है। सवर्ण हिन्दुओं का दिल जैसा वदलना चाहिए,

नही बदला है और कई कार्यकर्ता शुद्ध भावना से इसमे शामिल नही हुए है। इन बातो से उन्हे स्वभावत ही दु ख हुआ और इसे अपनी आत्मिक अपूर्णता मानकर उन्होने

फिर अनशन

बिना किसी शर्त के ८ मई १९३३ से २१ दिन का उपवास करने की घोषणा की। उन्होने यह भी प्रकट कर दिया कि 'किसी खास कारण से मै यह उपवास नही कर रहा हूँ। इसलिए इसमे पहले की भाँति कोई शर्त नही रखी गई है। इसे मै अपने आत्मिक विकास के लिए ही कर रहा हूँ।' पर ऊपर जो कारण लिखे है वे इसके मूल में अवश्य काम करते थे। गाधीजी का स्वास्थ्य अच्छा था। पिछली बार के उपवास मे ६ दिन मे ही उनकी हालत खराब हो गई थी। इसलिए न सरकार को, न जनता को यह आशा थी कि २१ दिन का उपवास कर सकेगे। सरकार ने उन्हे छोड दिया। छूटने पर भी पूना ('पर्णकुटी' नाम के सगमर्मर के विशाल प्रासाद) मे रहकर उन्होने अपना उपवास जारी रखा। इस बार भी प्रभु ने उन्हे बचा लिया और इस तपस्या की आग से वह चमकते खरे सोने की तरह बाहर निकले।

× × ×

जब उन्होने उपवास शुरू किया तो सारे देश के प्राण उनमे अँटक गये। लोगो का सारा ध्यान उधर ही खिच गया। देश मे हाहाकार मच गया। इसलिए गाधीजी ने काँग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष श्री अणे से अनुरोध किया कि वह छ सप्ताह

सत्याग्रह स्थगित

के लिए आन्दोलन स्थगित कर दे। दूसरी ओर सरकार से भी उन्होने अनुरोध किया कि अब भी सम्मानपूर्ण समझौते के लिए जगह है और वह चाहे तो वहाँ से फिर बात-चीत आरम्भ हो सकती है जहाँ से गोलमेज़ सम्मेलन से लौटने पर टूटी थी। पर सरकार ने इस पर तब तक विचार

करने से इन्कार कर दिया जबतक कि काग्रेस स्थायी रूप से सत्याग्रह का पथ न छोड दे। इसके साथ ही गाँधीजी ने अपने वक्तव्य मे यह भी कहा कि जिस प्रकार गुप्त रीति से आन्दोलन चलाया जाता रहा है वह सत्याग्रह की प्रेरणा के विपरीत है। खैर, स्थानापन्न राष्ट्रपति ने छ सप्ताह के लिए आदोलन स्थगित कर दिया। पर महात्माजी की दुर्वलता इतनी बढ़ गई थी कि इस अवधि के बाद भी वह देश-दशा पर भली-भाँति विचार करने के योग्य न हुए। इसलिए छ सप्ताह अर्थात् ३१ जुलाई १९३३ तक के लिए फिर आन्दोलन स्थगित किया गया।

पूना सम्मेलन

गाँधीजी की अवस्था सुधरने पर १४ जुलाई को पूना मे काँग्रेस के नेताओ तथा प्रान्तीय प्रतिनिधियो की एक अनियमित पर गुप्त बैठक हुई। इसमे देश की अवस्था पर विचार किया गया। अत मे काँग्रेस के स्थानापत्र अध्यक्ष श्री अणे ने एक वक्तव्य निकाल कर—

१—सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

२. सब काँग्रेस सस्थाएँ तोड दी। (क्योकि आफिस रखने से आन्दोलन गुप्त रीति से ही चल सकता था।)

३ अपनी-अपनी जिम्मेदारी पर व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रखने का आदेश किया।

× × ×

निश्चय के बाद

इस निश्चय के वाद गाँधीजी ने अपने १८ वर्ष के सतत परिश्रम से निर्मित सत्याग्रह-आश्रम को तोड दिया। उनका यह कार्य उनके उज्जवल त्याग का सब से वढिया नमूना है। यह चीज उन्हे ससार मे सब से ज्यादा प्रिय थी क्योकि यह उनके जीवन की प्रयोगशाला थी। तोडने की सूचना उन्होने वम्बई-सरकार को

दे दी और अपना यह निश्चय भी उसे लिख भेजा कि १ अगस्त को मैं अपने आश्रम के ३२ साथियो (१६ स्त्रियाँ, १६ पुरुष) के साथ गुजरात के 'रास' गाँव की ओर प्रस्थान करूँगा, वहाँ जाकर किसानो की स्थिति का अवलोकन करना और आवश्यकतानुसार उनको सलाह देना हमारा उद्देश्य है। ३१ की रात को ढेड बजे के लगभग ये सब लोग गिरफ्तार कर लिये गये। गाँधीजी पूना (यरवदा जेल) भेजे गये। वाद मे ४ अगस्त को जेल से छोड दिये गये और उनको आज्ञा दी गई कि पूना शहर की सीमा मे चले जायँ और उस सीमा के वाहर न जायँ। गाँधीजी ने आज्ञा भग की। फलत वह फिर गिरफ्तार किये गये, जेल मे उनका मुकदमा हुआ और एक वर्ष की सादी सजा हुई।

गिरफ्तारी और सजा

उधर गाधीजी की गिरफ्तारी हुई इधर सारे देश मे व्यक्तिगत सत्याग्रह का आन्दोलन जोर-शोर से शुरू होगया। एक हफ्ते के अन्दर सैकडो कार्यकर्त्ता गिरफ्तार होगये। व्यक्तिगत सत्याग्रह का यह सिलसिला १९३४ के एप्रिल के पहले हफ्ते तक चलता रहा—यानी तवतक जवतक सत्याग्रह आन्दोलन अधिकृत रूप से वन्द नही कर दिया गया।

पिछले कारावास के समय (मई मे) सरकार ने गाधीजी को हरिजन आन्दोलन चलाने के सम्बन्ध मे सब तरह की सुविधाएँ दी थी पर इस वार वे ही सुविधाएँ देने से इन्कार कर दिया। गाधीजी की स्थिति विल्कुल साफ थी। जिस काम के लिए वह प्राणो की वाजी लगा चुके थे और जिसका आरभ हो चुका था उसे वह वीच मे कैसे छोड सकते थे। इसलिए इस वार भी गिरफ्तारी और सजा के थोडे दिनो वाद ही उन्हे फिर अनशन आरभ करना पडा। १६ अगस्त से यह अनशन आरभ हुआ। पहले तो सरकार ज़िद पर अडी

पुनः अनशन

रही। पर पिछले अनशन के कारण गांधीजी काफी कमजोर हो चुके थे। इसलिए इस बार बड़ी तेजी से उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। चार ही दिनो मे हालत इतनी खराब होगई कि पाँचवें दिन कैदी के रूप में ही उन्हे पूना के सासून अस्पताल मे दाखिल किया गया। पर वहाँ भी उनकी हालत बिगड़ती ही गई। यहाँतक कि २३ अगस्त को उनके प्राण सकट मे समझकर सरकार ने उन्हे बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया।

रिहाई के बाद भी गाधीजी ने सजा की अवधि तक अपने को कैदी के रूप मे ही मानकर चलना शुरू किया अर्थात् सत्याग्रह न करने की बात तै की। इससे लोगो मे गलतफहमी भी फैली पर उन्होने यह समय पूर्व-निश्चय के अनुसार ही हरिजन-आन्दोलन मे लगाने का निर्णय कर लिया। नवम्बर १९३३ से उन्होने हरिजन-आन्दोलन के लिए सारे देश का अपना दौरा शुरू कर दिया। लगातार दस महीनो तक वह देश के भिन्न-भिन्न भागो का दौरा करते रहे। इस दौरे से जनता मे जो अभूतपूर्व उत्साह पैदा हुआ उसकी तुलना सत्याग्रह के दिनो के उत्साह से ही की जा सकती है। इस दौरे मे इन पक्तियो का लेखक भी कुछ दिनो तक गाधीजी के साथ था। शिथिलता नष्ट होगई थी और लोगो का उत्साह उमड़ा पड़ता था। इस दौरे से हरिजनो की समस्या तो जनता के सामने खुले और सरल रूप मे आई ही पर उसे यह समझने का भी मौका मिला कि स्वतंत्रता का युद्ध ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे लड़ा जा रहा है। इस आदोलन के फल-स्वरूप जनता मे हरिजन भाइयो के प्रति काफी सहानुभूति पैदा हुई। बहुत जगह मदिर उनके लिए खुल गये; कुओ, सड़को, मदरसो मे उनका समान अधिकार भी बहुत जगह स्वीकार किया गया। उनकी सेवा और सहायता के लिए हरिजन-सेवक-संघ के तत्त्वाव-

हरिजन दौरा

धान मे, और स्वतत्र रीति से भी, बहुतेरी सस्थाएँ खुली। यह क्रम चलता रहा है और कॉंग्रेस सरकारो की सहायता से हरिजनो की समस्या सुलझाने मे काफी मदद मिल रही है।

इस दौरे के दरम्यान दो शोचनीय घटनाएँ भी हुई। २५ जून १९३४ को, जब गाधीजी पूना में थे, उनपर बम फेकने की साजिश की गई। सौभाग्यवश गाधीजी उस मोटर मे न थे जिसमे उनको समझकर बम फेका गया था। किसी को गहरी चोट न लगी। दूसरी घटना अजमेर की है। काशी का लालनाथ नामक एक आदमी गाधीजी के साथ-साथ उनके आन्दोलन का विरोध करने के लिए घूम रहा था। उसकी हरकतो से चिढकर शायद किसी उग्र सुधारक ने उसका सिर फोड दिया। गाधीजी को इसपर बहुत दु.ख हुआ। यह अहिसा की दृष्टि से तो अकल्पनीय था ही, साधारण शिष्टाचार की दृष्टि से भी, कि सार्वजनिक मामलो मे एक—दूसरे से मतभेद रखनेवालो के प्रति पूरी सहिष्णुता रखनी चाहिए, यह अत्यन्त अनुचित था। गाधीजी ने इसपर ७ दिन का उपवास किया। असहिष्णुता के विरुद्ध यह एक प्रायश्चित्त था।

दो शोचनीय दुर्घटनाएँ

उधर व्यक्तिगत सत्याग्रह दिन-दिन शिथिल होता जा रहा था। देश मे काग्रेसवादियो का एक जबर्दस्त वर्ग ऐसा था जो चाहता था कि जो लोग सत्याग्रह मे भाग नही ले रहे है वे रचनात्मक काम करे और कौंसिल-प्रवेश के कार्यक्रम से काग्रेस को शक्तिमान बनावे। डा० असारी इस दल के प्रधान नेता थे। गाधीजी की सलाह से काग्रेस महासमिति ने अपनी १८, १९ मई १९३४ की बैठक मे सत्याग्रह बद कर दिया और डा० असारी की अध्यक्षता मे एक पार्लमेण्टरी बोर्ड बनाया और उसे काग्रेस की ओर से

पार्लमेण्टरी बोर्ड

कौसिलो के निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खडा करने और इसके लिए चदा इकट्ठा करने, रखने और खर्च करने का अधिकार दिया गया। बोर्ड पर महासमिति का नियत्रण रखा गया। २० मई १९३४ को सत्याग्रह बिल्कुल बन्द कर दिया गया। फलत सरकार ने भी अधिकाश काग्रेस सस्थाओ पर से पाबन्दी उठाली और सत्याग्रही कैदियो को छोड दिया।

१७ सितम्बर १९३४ को वर्धा से एक वक्तव्य प्रकाशित करके गाधीजीने कॉग्रेस से अलग होने की सभावना प्रकट की। उग्रवादी काग्रेसियो की यह शिकायत थी कि कॉंग्रेस एक प्रतिनिधि-सत्तात्मक सस्था है पर उसे गाधीजी ने अपने हाथ की कठपुतली बना रखा है। कुछ लोग ऐसे भी थे जो गाँधीजी की अहिंसा का मखौल उडाते थे। फिर कॉंग्रेस विधान की कुछ बाते ऐसी थी जिनके कारण कॉंग्रेस के खुले अधिवेशन मे शान्तिपूर्वक समस्याओ पर विचार करना कठिन होता जा रहा था। गाधीजी ने इन सब बातो की ओर सकेत करते हुए उससे अलग होजाना ही ठीक समझा और यद्यपि बम्बई काग्रेस मे काग्रेस-विधान मे उनके बताये हुए कई सशोधन स्वीकार भी कर लिये गये पर वह काग्रेस से अलग ही रहे। पर इसका यह मतलब न था कि वह काग्रेस के मामलो मे कोई दिलचस्पी न लेते थे। बाहर रहकर भी काग्रेस के निर्णयो पर बराबर उनका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता रहा है। काग्रेस राजनीति पर बराबर उनका अप्रत्यक्ष नियत्रण रहा है।

कॉग्रेस के बाहर

बडी कौसिल के निर्वाचनो मे काग्रेस को काफी सफलता मिली। इससे कौसिलवादी दल का पक्ष पुष्ट हुआ।

अक्तूबर १९३४ से गाधीजी ग्रामोद्योग सघ की स्थापना करके गावो

तथा उनके छोटे-छोटे उद्योग-धघो के पुनरुद्धार के कार्य मे लग गये।

ग्रामोद्योग संघ की स्थापना

देखते-देखते डेढ़-दो वर्षों के अन्दर ग्रामो के पुनर्जीवन के कार्य मे सारे देश की दिलचस्पी बढ गई। चाहे लिबरल हो, चाहे काग्रेसी, चाहे सरकार; सबने इस मुख्य सवाल की तरफ अपने-अपने ढग और दृष्टिकोण से ध्यान देना शुरू कर दिया।

१९३६ मे काग्रेस ने प्रान्तीय कौंसिलो के निर्वाचन में भी भाग लेने का निश्चय किया। इसके लिए एक चुनाव-सम्बन्धी घोषणापत्र

चुनाव एवं पद-ग्रहण

(Election Manifesto) प्रकाशित किया गया। दिसम्बर मे जवाहरलालजी की अध्यक्षता मे जो फैजपुर काग्रेस हुई (यह पहली ग्रामीण काग्रेस थी) उसके खत्म होते ही काग्रेस कार्यकर्ता चुनाव कार्य मे जुट गये। नेताओ ने दौरे शुरू किये और राष्ट्रपति के दौरे ने तो देश में एक तहलका मचा दिया। भारत मे पहली बार एक स्पष्टत. घोषित सिद्धान्त और कार्यक्रम को लेकर चुनाव लड़ा गया। ११ प्रान्तो मे चुनाव हुआ जिनमे ६ में काग्रेस पूर्ण विजयी रही। तीन मे वह सबसे मजबूत कौसिल पार्टी के रूप मे आई। केवल पजाब और सिन्ध मे उसे जैसी चाहिए वैसी सफलता न मिली। यद्यपि गाधीजी कांग्रेस से अलग थे पर चुनावो मे उनका प्रभाव हर स्थान पर देखा गया। उनके नाम का काफी उपयोग किया गया। उनके नाम का असर जादू की तरह होता था। इस चुनाव मे यह बात स्पष्ट होगई कि गाधीजी चाहे काग्रेस से अलग रहे या उसके अन्दर रहे उन्हे देश और विशेषत कांग्रेस की राजनीति से किसी तरह अलग नही किया जा सकता है। राष्ट्र की आत्मा के वह सर्वोत्तम प्रतिनिधि है।

चुनावो के खत्म होने के वाद काग्रेस मे एक वडा विवाद पदग्रहण की समस्या को लेकर उठ खड़ा हुआ। समाजवादी तो पदग्रहण के विरोधी थे ही, डा० पट्टाभिसीतारमैया, श्री पुरुपोत्तमदासजी टण्डन तथा कुछ अन्य नेता भी पदग्रहण के विरोवी थे। राष्ट्रपति जवाहरलालजी ने भी ज़ोरो से पदग्रहण की नीति का विरोव किया। दूसरी ओर श्री सत्यमूर्ति इत्यादि पदग्रहण का समर्थन कर रहे थे। इनके वीच ठोस कार्य-कर्ताओ का एक वडा दल था जो इस शाब्दिक लडाई को महत्त्व न देकर वास्तविक समस्या को देखता था। यह विवाद इतना वढा कि काग्रेस मे फूट की नौवत आगई। इस विकट स्थिति मे काग्रेस ने फिर अपनी शक्ति के मूलस्रोत और एकमात्र पथ-प्रदर्शक गाधीजी की ओर देखा। गाधीजी का स्वय पदग्रहण के पक्ष मे कुछ विशेष उत्साह न था। उन्होने वीच मे पड़कर एक प्रस्ताव वनाया कि यदि सरकार या प्रान्तो के गवर्नर काग्रेस वहुमत दल के नेता को आन्तरिक प्रश्नो मे हस्तक्षेप न करने का आश्वा-सन दे दे तो पद स्वीकार किये जायँ। महासमिति ने भी वड़ी वहस के वाद इसे मान लिया। उसके प्रस्ताव का सम्वन्वित अश इस प्रकार है —
"*अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी असेम्वली की काग्रेस पार्टियो को,* जहाँ वे वहुमत मे है, पदग्रहण की आज्ञा देती है, वशर्ते कि काग्रेस पार्टी के नेता को गवर्नर यह विश्वास दिला दे कि विधान के अन्तर्गत कार्य करते हुए मन्त्रियो के फैसलो को गवर्नर अपने विशेषाधिकार से नही ठुकरायेगा।" गाधीजी के इस मसविदे मे जो गहरी दूर-दर्शिता थी वह आज स्पष्ट हो गई है और इसके कारण प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलो की नैतिक स्थिति उनकी कानूनी या वैधानिक स्थिति से कही ज्यादा मज़वूत होगई है।

यद्यपि स्पष्ट एव सार्वजनिक रूप से इस प्रकार का आश्वासन नही दिया गया पर व्यक्तिगत रूप से इसे स्वीकार किया गया। वीच के महीनो

मे अस्थायी मंत्रिमण्डल बनाये ग ो पर यह स्पष्ट होगया कि बिना बहुमत के कोई मन्त्रिमण्डल शासन-कार्य नही चला सकता। अन्त मे भारतमत्री ने भारतीय जनता को विश्वास दिलाया कि 'गवर्नर न केवल मन्त्रियो से छेड छाडकर सघर्ष पैदा न करने के लिए, बल्कि ऐसे सघर्ष के अवसरो को बचाने की कोशिश करेगे।' जुलाई मे काग्रेस कार्यसमिति ने इस आश्वासन को पूर्णत. सन्तोषजनक न मानते हुए भी उसमे कांग्रेस की नैतिक माँग की पूर्ति का प्रयत्न देखकर पदग्रहण की स्वीकृति दे दी। छ प्रातो मे काग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन गये। बाद मे सीमाप्रान्त मे दूसरे दलो के सहयोग से काग्रेसी मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई। सितम्बर १९३८ मे आसाम मे भी काग्रेस कार्यक्रम को मानने वाला सयुक्त काग्रेस मन्त्रिमण्डल बन गया। सिंध की सरकार ने भी काग्रेस का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया है। बगाल मे भी इस प्रकार का सयुक्त मन्त्रिमण्डल बनने की सभावना की जाती है। इस तरह ११ मे ९ प्रान्तो मे एक प्रकार से काग्रेस का शासन या कार्यक्रम प्रधान है।

बीच-बीच मे सघर्ष पैदा होता रहा है। १९३८ की हरिपुरा काग्रेस के समय आतकवादी राजनीतिक कैदियों को छोडने के कार्य मे गवर्नर के हस्तक्षेप करने पर युक्तप्रान्त और बिहार के मन्त्रिमण्डलो ने इस्तीफे दे दिये। उस समय भी गाधीजी की सलाह से काम लिया गया। और मन्त्रिमण्डलो की बात मानली गई। बाद मे उड़ीसा मे भी वैधानिक सकट पैदा हुआ। वहाँ के गवर्नर बीमार थे अत छुट्टी पर जाना चाहते थे। उनकी जगह वहाँ के रेवेन्यू सेक्रेटरी के गवर्नर बनाये जाने की घोषणा की गई। मन्त्रियो का कहना था कि जो व्यक्ति हमारे एक विभाग के नीचे काम कर चुका है, उसको गवर्नर नही बनाया जाना चाहिए क्योंकि इससे सघर्ष पैदा होगा। पहले सरकार ने नही माना पर जब गाधीजी इस

मामले पर अड गये तो उनकी बात मान ली गई और गवर्नर ने अपनी छुट्टी मन्सूख कर दी तथा जब वह विलायत गये तब दूसरे आदमी को गवर्नर बनाया गया। काग्रेस मन्त्रिमण्डल प्रधानत. गाधीजी के पथ-प्रदर्शन मे चलते रहे है। वर्धा योजना बनाकर गाधीजी ने शिक्षण—पद्धति मे क्राति करने का प्रयत्न किया है। इस योजना को न केवल काग्रेसी सरकारे स्वीकार कर चुकी है बल्कि अन्य प्रातीय सरकारो और और भारत-सरकार ने भी इसपर काफी ध्यान दिया है और इसे आधार मानकर कई योजनाए बनाई जा रही है।

इधर गाधीजी सीमाप्रान्त को सगठित करने तथा देशी राज्यो के प्रश्न पर विशेष ध्यान दे रहे है। त्रावणकोर, हैदराबाद, जयपुर, राजकोट लीम्बडी इत्यादि राज्यो के प्रजा आन्दोलन उनके आशीर्वाद और उनकी सलाह एव पथ-प्रदर्शन मे ही चलाये जा रहे है। काठियावाडी राज्यो के आन्दोलनो मे तो वह बहुत ज्यादा दिलचस्पी ले रहे है।

राजकोट काठियावाड़ का एक छोटा राज्य है। वर्त्तमान नरेश के पिता गाधीजी को पिता-तुल्य मानते थे। गाधी-कुटुम्ब का इस राज्य से बहुत दिनो का सम्बन्ध रहा है। इसलिए गाधीजी की उसमे शुरू से बहुत दिलचस्पी रही है। राजकोट प्रजामण्डल वहाँ उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जबर्दस्त आन्दोलन करता रहा है। मण्डल के कार्यकर्त्ता परखे हुए देशसेवक है। इन कार्य-कर्त्ताओ और प्रजामण्डल के आन्दोलन के फलस्वरूप १९३८ के अन्त मे, सरदार वल्लभभाई पटेल और राजकोट नरेश के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार उत्तरदायित्वपूर्ण सुधारो के सम्बन्ध मे विचार और निर्णय करने के लिए एक कमेटी बनाई गई। ठाकुर साहब ने वल्लभभाई को लिखकर यह भी सूचित किया इस कमेटी के दस

राजकोट-प्रकरण

सदस्यो मे से सात आपके (वल्लभभाई के) बताये प्रजा के प्रतिनिधि रहेगे और कमेटी जो निश्चय करेगी उसे राज्य स्वीकार कर लेगा।

परन्तु वाद मे राज्य के एक पूर्व दीवान श्री वीरावाला (जिसके प्रभाव मे ठाकुरसाहव है) तथा अन्य स्थापित स्वार्थो के इशारे पर ठाकुर साहव ने वल्लभभाई के द्वारा सुझाये हुए ७ प्रतिनिधियो को कमेटी मे रखने से इन्कार कर दिया। यह स्पष्ट था कि जवतक कमेटी मे प्रजामण्डल का वहुमत न हो उसे स्वीकार करने से कुछ लाभ न था। इसलिए फिर राज्य और प्रजा में सघर्ष आरम्भ हुआ। सत्याग्रह शुरू होने की देर थी, लोग धडाधड जेल जाने लगे। सत्याग्रहियो तथा किसानो पर पुलिस के अमानुषिक अत्याचार की खवरे वरावर आ रही थी। राज्याधिकारियो का कहना था कि ये वाते झूठी है और राज्य को वदनाम करने के लिए फैलाई जाती है। इस वीच कस्तूर वा, मणिवेन पटेल इत्यादि भी जेल जा चुकी थी। गाधीजी ठाकुर के विश्वासघात को वहुत अधिक अनुभव कर रहे थे। अन्त मे उन्होने अत्याचार की वातो के विपय मे जाँच करने के लिए खुद राजकोट जाना निश्चय किया और इस वीच सत्याग्रह भी स्थगित करा दिया। गाधीजी ने राजकोट जाकर जॉच की और वहुत-से प्रमाण एकत्र किये।

इनके साथ ही वह यह भी सोच रहे थे कि कोई ऐसा उपाय निकल आवे जिससे सत्याग्रह आन्दोलन मे होनेवाले कष्टो एव राजा-प्रजा के वीच पैदा होनेवाली कटुता से राज्य को वचाया जा सके। उन्होने ठाकुर साहव को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि आपको अपने वचनो का पालन करना चाहिए। पर ठाकुर साहव ने गाधीजी की सलाह मानने से इन्कार कर दिया। इसपर गाधीजी ने अन्तरात्मा की प्रेरणा से तवतक उपवास करने का निश्चय किया जवतक ठाकुर अपने वचनो को पूरा न

करे। २ मार्च से अनशन शुरू हुआ। गाधीजी का स्वास्थ्य पहले से ही खराब था इसलिए सारा देश उनके इस निश्चय से काँप गया। काँग्रेस मत्रिमण्डलो ने वायसराय को सूचित कर दिया कि जब गाधीजी का जीवन इस प्रकार खतरे मे है तब शासन-कार्य चलाना उनके लिए सभव न होगा। देश के कोने-कोने से वायसराय के पास हस्तक्षेप के लिए प्रार्थनाएँ आईं। अन्त मे विषम परिस्थिति पैदा होते देख ७ मार्च को वायसराय ने गाधीजी को तार द्वारा निम्नलिखित पत्र भेजा —

"......मै आपकी स्थिति समझता हूँ। आप जो मुझे बताते है उससे स्पष्ट है कि इस मामले मे आप जिस बात को महत्व देते है वह आपकी यह भावना है कि वचन-भग हुआ है। मै महसूस करता हूँ कि ठाकुर साहब की उस विज्ञप्ति के अर्थ मे शकाएँ उपस्थित की जा सकती है जिसका कि उन्होने बाद मे सरदार पटेल के पत्र मे विस्तार किया। मुझे मालूम पड़ता है कि शका-निवारण के लिए सबसे अच्छा रास्ता यह है कि विज्ञप्ति के अर्थ के लिए देश के सबसे ऊँचे न्यायाधिकारी अर्थात् हिन्दुस्तान के चीफ जस्टिस से पूछा जाय। इसलिए मै यह तजवीज़ करूँगा कि ठाकुर साहब की राय से, जो मै समझता हूँ मिलती है, इस उच्चाधिकारी से यह सलाह ली जाय कि ठाकुर साहब की विज्ञप्ति और उक्त पत्र के अनुसार किस ढग से कमेटी की रचना हो। इसके बाद उसी तरीके से कमेटी की रचना हो जायगी। अलावा इसके यह भी इन्तजाम किया जायगा कि कमेटी के सदस्यो मे विज्ञप्ति के किसी हिस्से पर उन बातो मे, जिनपर कि उन्हे सिफारिशे करनी है, कोई मतभेद होगा, तो वह प्रश्न भी इसी उच्चाधिकारी के सामने पेश किया जायगा, और उसका निर्णय आखरी होगा। मुझे पूरा यकीन है कि यह और साथ मे ठाकुर साहब का यह आश्वासन कि विज्ञप्ति मे कहे गये वादो को वह पूरा

करेंगे, और मेरा आश्वासन कि मै इसके लिए उनपर अपना प्रभाव डालूँगा कि वह ऐसा करे, आपके उन सब सन्देहो को दूर कर देगा जो आपके मनमे पैदा हुए है और आप मेरे साथ इस भावना मे सहयोग करेगे कि ईमानदारी के व्यवहार को निश्चित बनाने के लिए हरेक हिफाज़त करदी गई है। विश्वास है कि आप अपने स्वास्थ्य पर डाले जानेवाले दबाव को छोडकर अपने मित्रो की चिन्ता दूर करेगे। जैसा कि मै आपसे कह चुका हूँ, मै आपको यहाँ देखकर और आपके साथ मसलों पर चर्चा करके, जिससे सभी गलतफहमियाँ दूर हो जायँ, बहुत प्रसन्न हूँगा।"

वायसराय के इस पत्र मे यद्यपि सब बाते नही आई पर गाधीजी ने इस सद्भावना और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की स्पिरिट को स्वीकार करके अनशन तोडने का निश्चय किया और वायसराय को, पश्चिमी भारत की रियासतो के एजेण्ट मि० गिब्सन के ज़रिये, तारद्वारा निम्न-लिखित उत्तर भेजा :—

"मै आपके तत्काल उत्तर के लिए कृतज्ञ हूँ, जो मुझे आज पौने ग्यारह बजे दिया गया। यद्यपि स्वभावत. इसमे कई बातो पर कुछ नही कहा गया है, मै आपके कृपापूर्ण सन्देश को इसकी काफी गारण्टी समझता हूँ कि अपना अनशन तोड दूँ और उन लाखो की चिन्ता का अन्त करदूँ जो मेरे अनशन पर प्रार्थना कर रहे है और समझौते के जल्दी हो जाने की उनसे जितनी कोशिशे हो सकती है, कर रहे है। मेरे लिए यह कह देना ठीक ही होगा कि आपने अपने सन्देश मे जिन बातो का ज़िक्र नही किया है, उनका दावा मैने छोड़ नही दिया है। मुझे उनपर सन्तोष मिलने की आशा करनी चाहिए। उनपर आपके साथ चर्चा होने तक इतज़ारी की जासकती है। जैसे ही डाक्टर मुझे दिल्ली की यात्रा करने

की इजाज़त देंगे, मैं दिल्ली आऊँगा। मैं एकबार आपको फिर धन्यवाद दूँगा कि आपने इस मामले में तत्परता और सहानुभूति से काम लिया, जिसकी वजह से मुझे यह अनशन तोड़ना पड़ा है।"

अनशन तोड़ने के बाद गांधीजी इतने कमज़ोर होगये थे कि बहुत इच्छा करने, और लोगो के अनुरोध, पर भी कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में शरीक नहीं हो सके। १५ तारीख़ को प्रातःकाल गांधीजी दिल्ली आये। उसी दिन, तथा अगले दिन भी, वायसराय से मिले। दिल्ली जेल में उपवास करनेवाले तीन राजबन्दियो से भेंट की और उनसे उपवास तोड़वाया। उन्होंने गांधीजी के आश्वासन पर कि उनके सम्बन्ध में भारत-सरकार से बातचीत की जायगी, उपवास तोड़ दिया। चार-पाँच दिनो बाद गांधीजी के आश्वासन पर कि इन राजबन्दियो ने हिंसा में अपने विश्वास का त्याग कर दिया है, ये छोड दिये गये। १९ तारीख़ को एक संक्षिप्त वक्तव्य निकालकर गांधीजी ने जयपुर-राज्य में होनेवाले सत्याग्रह के स्थगित कर देने की सलाह दी। यद्यपि तबतक ७०० आदमी जेल जा चुके थे और सत्याग्रह की गति और शक्ति दिन-दिन बढ़ती जाती थी पर सत्याग्रह-समिति ने गांधीजी की सलाह मानकर सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

ऐसा जान पड़ता है कि गांधीजी देशीराज्यो में सत्याग्रह करने की कोई विशेष विधि का आविष्कार करने के सम्बन्ध में विचार कर रहे है। क्योंकि सभी राज्यो में होनेवाले आन्दोलनो को उन्होंने कुछ काल के लिए बन्द कर दिया है। राजकोट के झगडे पर भारत के चीफ जस्टिस सर मारिस गेयर का निर्णय अभी-अभी निकला है। यह निर्णय गांधीजी के सर्वथा अनुकूल है। इससे राजकोट के प्रजा-आन्दोलन को ही नहीं, सम्पूर्ण रियासतो की प्रजा को बल मिलेगा।

इस निर्णय मे चीफ जस्टिस ने तीन मुख्य बाते कही है :—

१. समझौते के अनुसार सरदार पटेल को कमेटी के सात सदस्यो को चुनने का अधिकार है। हॉ, ये सदस्य राज्य के प्रजाजनो या सेवको मे से होने चाहिएँ।

२ सरदार पटेल के द्वारा सुझाये हुए नामो के सम्बन्ध मे ठाकुर साहब को कुछ एतराज हो तो वह सरदार से इन नामो मे परिवर्तन की सिफारिश कर सकते है। पर सरदार की स्वीकृति के विना उन्हे बदल नही सकते।

२. कमेटी का सभापति—कमेटी के दस सदस्यो मे से ही एक होना चाहिए, बाहर का नही। यह फैसला गाधीजी के सर्वथा अनुकूल है।

× × ×

दुर्भाग्यवश काग्रेस मे आज अनुशासन की बडी कमी होती जा रही है। प्रमाद, असहिष्णुता तथा अनुचित उपायो का बोलबाला है। उग्रवादी एव समाजवादी लोग स्पष्टत गाधीजी के नेतृत्व को कोसते है। सुभाषबाबू गाधीजी तथा देश के परखे हुए अनुभवी नेताओ की सलाह न मानकर चल रहे है। त्रिपुरी कॉग्रेस के पूर्व सुभाष बाबू के निर्वाचन को गाधीवादियो की हार कहा जाता था। स्वय गांधीजी ने भी वैसा ही कहा था। पर त्रिपुरी कॉग्रेस ने जबर्दस्त बहुमत से गाँधीजी के नेतृत्व मे चलना तै किया। सुभाष बाबू ने पुराने नेताओ पर जो छीटाकशी की थी उसकी निन्दा की और राष्ट्रपति गाँधीजी की सलाह से काग्रेस कार्य-कारिणी का निर्माण करे यह निश्चय किया। अभीतक सुभाष-पक्ष का रुख अनिश्चित है पर यह मानना पड़ेगा कि गाधीजी के पथ-प्रदर्शन से हीन होना देश का भीषण दुर्भाग्य होगा और उनके सिद्धान्तो को छोडने का परिणाम भारत के लिए खतरनाक और अकल्याणकर होगा।

"*You can not say, this is he, or that is he. All you can say with certainty is that he is here, he is here. Evreywhere his influence reigns, his authority rules, his elusive personality pervades. This must be so, for it is true of all great men that they are incalculable beyond definition.*"[1]

—H. POLAK

—तीन—

जीवन का रहस्य

संसार की एक शक्ति

गाधी आज ससार की एक शक्ति है। शत्रु-मित्र, शासक और शासित सब इसे मानते है। कोई उसकी तुलना बुद्ध और ईसा से करता है, और कोई उसे असम्भव क्रान्तिकारी मानता है पर सब उसकी असाधारणता के कायल है। उसने भारत मे एक जीवन फूंक दिया है और प्रत्येक क्षेत्र मे चर्चा, अनुमान और कल्पना का विषय बन गया है। घोर जगली भील से लेकर, जिसने उसे देखा नही, सुना नही, ससार के महापण्डित एव तत्त्ववेत्ता तक उसे अपने-अपने ढग से देखते है और सब उसकी मानवता स्वीकार करते है—उससे मतभेद भले ही रखे।

१. "तुम यह नहीं कह सकते कि गांधी यह चीज है, वह चीज है। निश्चय के साथ तो तुम इतना ही कह सकते हो कि वह यहाँ है, वह यहाँ है। हर जगह उसका प्रभाव शासन करता, उसका अधिकार राज करता है; उसका व्यक्तित्व हर जगह फैल गया है। और ऐसा तो होना ही चाहिए क्योंकि यह बात सभी महापुरुषों के लिए सत्य है कि वे परि-भाषा के परे और अ-गण्य है।" —हेनरी पोलक

तब फिर वह क्या चीज़ है जिसने उसे ऐसे अजेय, ऐसे शक्तिमान रूप में हमारे सामने ला खड़ा किया है ? यह एक प्रश्न है और गूढ प्रश्न है।

किसी महापुरुष की अन्त प्रेरणा का ऊहापोह करना खेल नही। वह बन्धन मे बँध नही सकता, वह सकुचित नही है; वह महान् है और जगत् के साधारण नाप से नापा नही जा सकता। फिर गाधी तो अनेक टेढी-मेढी लाइनो से बना है। और साधारण आदमी तो उसे सब ओर से पूरा का पूरा देख भी नही सकता।

फिर भी जब हम दुनिया की गति से, उसके ढंग से गाधी का मिलान करते है तो वह अपने-आप चमक उठता है,—अधकार मे

वह आप चमकता है!

चन्द्रमा की भाँति। इस द्वेष और कलुष से भरे ससार मे, जहाँ भाई-भाई का गला काटने की तैयारी मे लगा है, जहाँ ससार के महान् कहे जानेवाले राष्ट्र, मुँह से शान्ति की मीठी-मीठी बाते करते हुए भी मौका पाते ही दूसरे को खा जाने की ताक मे है, वहाँ—उस दुर्वह अन्धकार मे गाधी अपने-आप चमकता है। वह दिखता है क्योकि **वह साधारण के बीच खड़ा हुआ असाधारण है।**

× × × ×

पाश्चात्य सभ्यता ने जीवन को उन्माद से भर दिया है। लोग एक नशे मे जल-धारा के तिनके की भाँति बहे जा रहे है;—अपनी शक्ति

पाश्चात्य सभ्यता का विष

से नही, एक प्रबल धारा से वेग से। मनुष्य मशीन बन गया है। उसने अपना आत्म-विश्वास, अपना ईश्वरत्व खो दिया है और असहाय-सा, अपनी इच्छा के विरुद्ध, न जाने कहाँ, जा रहा है। पाश्चात्य सभ्यता ने सबसे बड़ा

अकल्याण—जिसे पाप कहने मे भी अत्युक्ति न होगी—जो किया है वह यह कि उसने मनुष्य को बिलकुल अचेत कर दिया है और उसकी असीम दैवी सम्भावनाओ (Possibilities) को हर लिया है। आज किसी से ब्रह्मचर्य की बातें करो, वह अविश्वास की हँसी हँस देगा—'यह हम—जैसे साधारण मनुष्य का काम नही।' जीवन-हीन, मूर्च्छना से भरे ये शब्द क्यो ? मनुष्य, जो जगत् का श्रेष्ठ उपादान है, जो भगवान् की श्रेष्ठ विभूति है, उसके मुख से ऐसे दीनता, दुर्बलता और असहायता के शब्द क्यो ?

बात यह है कि जीवन की बाह्य गुलकारियो मे हम भूल गये, आधुनिक सभ्यता के विष ने, हमारे अन्दर जो दिव्य ईश्वरीय विरासत थी उसे गदा मारकर चकनाचूर कर दिया है। उसने हमे रेलगाडियाँ दी, हवाई जहाज दिये; उसने घर में बैठे हुए पृथ्वी के उस छोर तक हमारी आवाज मिनटो—क्या सेकण्डो—मे पहुँचाई। उसने सुबह कलकत्ता मे और शाम को हमे बगदाद मे लेजाकर बैठाया। यह मायाविनी बिजली मे चमकती है, वायुयानो पर हवा खाती है, मोटरों मे दौडती है, तोपो मे दहाडती और अट्टहास करती है। उसकी मुस्कराहट पर हम भूल बैठे, उसके आलिंगन ने हमारा विवेक हर लिया। हम उसकी सुविधाओ का गान गाते है पर हम यह भूल गये कि हमारा जो कुछ परमतत्त्व था, हममे जो जीवित **मनुष्य** था वह निष्प्राण हो गया है। उसने हमे विश्व के सग्रहालय मे—संसार की प्रदर्शनी मे—मोहक रूप मे सजाये मुर्दे-की भाँति रख छोडा है ! सुविधाएँ बढी पर सुख न बढा, जीवन न बढा। हमारे दुख बढ गये है, सारी मानसिक, नैतिक एव शारीरिक शक्तियाँ बरफ की भाँति गल गई है। मानवता दुख, दभ, ईर्ष्या-द्वेष के अन्धकार मे भटक रही है। करोडो गरीबो की हड्डियो पर बडे-बडे

साम्राज्य खडे किये गये है और उन्होने अपनी जगमगाहट और चकाचौंध से हमारी दिव्य दृष्टि को धुँधला कर दिया है।

ऐसी दुनिया मे, आत्म-विश्वास खोकर बेसुध, दैन्य से भरे हुए ऐसे जन-समूह मे हम एक मनुष्य को देखते हैं जो असीम आत्म-विश्वास के

इस दैन्य के बीच

स्तभ की भाँति शान्ति के साथ खड़ा होकर हमें अगुली से मार्ग दिखा रहा है। वह हमे आकर्षित करता है—गरीब उसकी ओर त्राता की तरह देखते हैं, धनी और अधिकारी उसकी हिम्मत पर आश्चर्य करते है। यह कैसा आदमी है!—पर यही गाँधी है। आत्मा-विश्वास की मूर्ति, मानवता के दुख से दुखी और उसे अधकार से प्रकाश मे लाने को उद्यत!

पहली बात जो गाधी के जीवन मे प्रकाश-रेखा के समान चमकती है और जो उसके जीवन मे आदि से अन्त तक व्याप्त है, उसकी दिव्य

जीवन की साधना

साधना है। आरम्भ से लेकर अन्त तक उसका जीवन साधनामय है। वह उठता है, गिरता है, फिर उठता है और आगे वढता जाता है। और साधना किस की? सत्य की। अहिंसा उसकी नीति है; अन्त.करण उसकी कसौटी है, अपना निजी एव भारत का सार्वजनिक जीवन उसकी प्रयोगशाला है। इस दृष्टि से वह राजनीतिक नेता नही, साधक है जो सत्य के शोध मे चला जा रहा है। राजनीतिक प्रयोग इस साधना का एक अग है। गाधी भारत के राजनीतिक क्षेत्र मे इसलिए नही आया कि उसे स्वराज लेना है—स्वराज केवल स्थूल राजनीतिक अर्थ मे, वल्कि इसलिए कि उसने जिन सिद्धान्तो को, जिस साधना को अपने जीवन मे अपनाया है उसे विशाल जन-समूह के जीवन मे भी वह लाना चाहता है, यह इसलिए कि हमने, जीवन नीति-प्रधान होना चाहिए, इसे भुला दिया है। वह प्रत्येक ऐसे वन्धन

का विरोधी है जो आत्मा को मूर्छित करता है, जो अन्त.करण की आवाज को दबा देता है। वह पाश्चात्य सभ्यता का विरोधी है क्योकि वह जीवन मे कृत्रिमता लाती है, मनुष्य में स्वार्थ को प्रबल करती है—फलत. मानव-समाज मे शारीरिक--भौतिक—सुखो के लिए होड उत्पन्न करती है और दूसरी ओर अन्त करण को शून्य, शक्तिहीन और मृतप्राय कर देती है। गाधी भारत-सरकार के प्रति विद्रोह करता है इसलिए कि उसकी नीव मे लूट-खसोट के सिद्धान्त है, कोई नैतिक उद्देश्य नही। मतलब यह कि उसका व्यक्तियो से, शासन-प्रणालियो से कोई झगडा नही। उसके पास तो एक कसौटी है। जो नियम, जो सिद्धान्त, जो शासन-प्रणाली, जो समाज-व्यवस्था किसी नैतिक आधार पर स्थित है, जिससे आत्मिक शक्ति बढती है, अन्त करण को वल मिलता है, उसका यह समर्थन करेगा और जो आत्मा को कुठित करेगी, मनुष्य को शरीर-सुख का, वासनाओ का गुलाम बनायगी, उसका विरोध करेगा।

इससे पहली और सबसे जरूरी बात तो यह निकलती है कि वह एक साधक है—समाज-सुधारक, राजनीतिज्ञ इत्यादि तो उस (साधक) के टुकडे है। प्रत्येक क्षेत्र मे उसका जीवन साधना का एक अविच्छिन्न प्रयत्न है। उसके जीवन को देखिए—

निरन्तर तैयारी

वह असीम संघर्षों का, सतत प्रयत्नशीलता का जीवन है। उसमें एक निरन्तर युद्ध है, एक निरन्तर तैयारी है। वहाँ कभी अकर्मण्यता नही, कही निराशा नही। जेल मे हो तो, बाहर हो तो, बीमार हो तो—प्रतिक्षण उसके जीवन की साधना, वायु के अविच्छिन्न प्रवाह की भाँति, चल रही है।

आत्म-साक्षात्कार इस साधना का उद्देश्य है। उसे वह सत्य के नाम से पुकारता है और अपनी अन्त.प्रेरणा को, अपनी भीतर की आवाज़ को उसने इस सत्य की, इस साधना की कसौटी बनाया है।

इस सतत साधना के लिए, उसने अहिंसा का मार्ग अपनाया है। उसकी अहिंसा इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि सृष्टि मे जितने भी जीवन-मय, प्राणमय या चेतन पदार्थ है सब पवित्र है। यह भाव रखकर ही मनुष्य सृष्टि के सम्पूर्ण जीवन की अभिन्नता को देख एव ग्रहण कर सकता है। इस दृष्टि से अहिंसा विश्व की अभिन्नता, एकात्मरूपता की अनुभूति का आवश्यक उपादान है और इस अर्थ मे, एक प्रकार से, वह स्वय अपरिणत सत्य ही है। इसमे अपने एव दूसरे के जीवन-नाश की सबसे कम सभावना है। इससे शक्ति का क्षय नही होता, इससे आत्म-शक्ति जाग्रत करनेवाली भावनाओ को उत्तेजन मिलता है। इसलिए अहिंसा तात्विक एव व्यावहारिक दोनो दृष्टियो से उसकी साधना का सबसे महत्त्वपूर्ण अग है।

अहिंसा का मर्म

इस अहिंसा को अपने सतत प्रयोगो से माँज-माँजकर उसने अत्यन्त दिव्य रूप मे हमारे सामने रखा है। उसने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण मे उसे प्रकाशित कर उसपर युग-युग से पडी काई को काट दिया है और उसे निर्मल बना दिया है। केवल जीव के नाश न करने मे ही उसकी अहिंसा का अन्त नही हो जाता, उसे किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक पीडा न देना, न देने की भावना करना, तथा उसके कल्याण की कामना एव चेष्टा करना भी, उसी मे आ जाता है। इस भाव की परिणति तबतक सम्भव नही है जबतक साधक मे ईर्ष्या-द्वेप, लोभ, भय इत्यादि असात्त्विक—तामसिक भाव भरे हुए है। इसलिए सत्य का साधक जब अहिंसा-मार्ग का अवलम्ब लेता है तो स्वभावत उसे प्रारम्भ मे ही तमस् का त्याग कर देना पडता है। ज्यो-ज्यो उसकी अहिंसा शुद्ध एव निर्मल होती है त्यो-त्यो जीवन की अभिन्नता एव अविच्छिन्नता की अनुभूति के कारण सत्य उसके सामने स्पष्टतर होता जाता है। इस

अहिंसा को समाज के परिष्कार, सुधार और कल्याण के लिए गाधीजी ने सार्वजनिक--सामूहिक-- रूप से सगठित किया है। इसके पहले ऐसा कभी नही हुआ था।

× × × ×

नीति का प्रवक्ता

बुद्ध के बाद जीवन मे नीति की प्रधानता पर इतना जोर देनेवाला दूसरा महापुरुष हमारे बीच नही आया। (कबीर की याद हमे है पर वह केवल आध्यात्मिक भक्ति मे व्यक्त होनेवाले नीतिवाद के ही प्रवक्ता थे।) और यह स्पष्ट है कि जिसने जीवन को नीतिमय कर डाला है वह किसी एक क्षेत्र मे ही उसका उपयोग करके चुप नही रह सकता। **जीवन का प्रवाह अविच्छिन्न है। उसके टुकडे नहीं किये जा सकते। जब वह प्रत्येक क्षेत्र में एक-रस होकर प्रवाहित होता है तभी वह जीवन है।** गाधी ने अपने जीवन की साधना को विश्व के राज-मार्ग पर ला खडा किया है और प्रत्येक को उसे अपनाने का निमन्त्रण दिया है। **अप्रतिकार का, अहिंसा का यह व्यापक प्रयोग ही--जो आज वह भारतीय राजनीति के व्यापक क्षेत्र में कर रहा है--उसकी विश्व-राजनीति को सबसे बडी देन है।**

× × × ×

'मारल बैरोमीटर'

यहाँ इसे फिर से कहने की जरूरत है कि अन्त करण की स्वीकृति ही उसके प्रत्येक कार्य की कसौटी है। इस आत्मिक स्वीकृति के सिवाय उसके कार्यो को नियमित करनेवाला कोई अधिकारी नही, कोई तन्त्र नही। और दूसरो से भी उसकी यही आशा है कि अन्दर का आत्म-शासन ही सब माने। इसलिए जनता की सम्मति-असम्मति, यश-निंदा, लोक-प्रियता एव विरोध, सरकार की इच्छा-अनिच्छा का जीवन के विशेष अवसरो पर उसके निर्णय के बीच

स्थान नही। **वह एक नैतिक—आध्यात्मिक अराजकवादी है।** जनता ने विरोध किया, नेताओ ने बुरा-भला कहा पर उसने चौरीचौरा के बाद बारडोली-सत्याग्रह बन्द कर किया। लोग तिलमिलाकर, कुडबुडाकर रह गये पर उसने अन्त प्रेरणा के अनुसार राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच अस्पृश्यता की समस्या लाकर खड़ी कर दी। उसके जीवन का, उसके प्रत्येक कार्य का निर्णायक उसका अन्त करण है। इस बातपर उसने इतनी प्रधानता दी है कि **वह हमारे समय का नैतिक—'मारल'—बैरोमीटर बन गया है।**

राजनीतिज्ञ नहीं; राजनीतिक तत्त्ववेत्ता

इस साधना एव साधना की इस कसौटी के कारण ही राजनीति मे भी वह राजनीतिज्ञ के रूप मे नही, राजनीतिक तत्त्ववेत्ता ('पोलीटिकल फिलासफर') के रूप मे आया है। राजनीतिज्ञ जनता को सगठित करने का अधिक ध्यान रखता है, राजनीतिक तत्त्ववेत्ता या प्रवक्ता ('प्राफेट') अपने जीवन मे कुछ सिद्धान्तो को प्रकाशित कर राष्ट्र की आत्मा को चैतन्य करता है। उसका सम्बन्ध ऊपरी नही, गूढ बातो से है। जहाँ राजनीतिज्ञ केवल शासन-प्रणाली के परिवर्तन के उद्देश्य को लेकर चलता है वहाँ तत्त्ववेत्ता जीवन के ध्येय, जीवन तत्त्वज्ञान को—समाज एव व्यक्ति दोनो मे - निर्मल एव विशुद्ध रूप मे प्रकट करना चाहता है।

गांधीजी की सारी हस्ती जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होनेवाले अन्तःकरणनाशक कार्यो के विरुद्ध एक स्थायी—अविच्छिन्न नैतिक विरोध है। जहाँ कानून मनुष्य की आत्मा के विकास की सुविधा नही देता, उलटे उसे धुंधला कर देता है वहाँ कानून का मानना पाप है; जहाँ 'धर्म' विवेक को छोड़ देता है, व्यक्ति एव समाज की आत्मिक—नैतिक—

उन्नति में बाधक होता है वहाँ वह ताज्य है। इस प्रकार के अत्याचार को न सहन करना सत्य-शोधक का कर्तव्य है। और इस कर्तव्य मे जो कष्ट दिये जायँ उसे शुद्ध हृदय से सहन कर लेना उसका धर्म है। यदि तुम संसार को प्रेम-द्वारा बदलना चाहते हो तो तुम्हे उसके द्वारा पीड़ित होने, घृणा किये जाने, वहिष्कृत होने को तैयार रहना चाहिए। इस विरोधाभास से अपने आप शुभ परिणाम निकल आते है। क्योकि इस प्रकार का सत्याग्रही के विरुद्ध किया हुआ फैसला, अनजान मे, स्वय अपनी ही प्रणाली के दूषण को स्पष्ट करता है। एक गाधी का अपना अपराध स्वीकार करना ही वर्तमान समाज-व्यवस्था पर ज़बरदस्त टीका है। इसे देखकर दर्शक के मन मे यह विचार आये विना नही रह सकता कि जो समाज-व्यवस्था डायर के लिए पेशन का प्रवन्ध करती है और एक साधु पुरुष को छ. वर्ष के लिए जेल भेजकर उसका मुँह बद कर देती है, उसके मूल मे अवश्य कुछ दोष होगा।[१]

इस तरह प्रतिक्षण अपने जीवन से, अपने कष्ट-सहन से वह उस कभी न रुकनेवाले युद्ध को प्रकाशित करता है जो उसके अन्त करण और

अपूर्व युद्ध : विश्व को देन

आत्मा को दवानेवाली, उसकी सत्ता की अवहेलना करनेवाली प्रत्येक शक्ति के साथ चल रहा है। जव शरीर-वल राज-शक्ति का स्थायी आधार मान लिया गया है तव वह अपनी, एव उसके द्वारा एक राष्ट्र की, आत्मा-शक्ति को

१ When a Gandhi pleads guilty, it is the existing political system that seems to be condemned Men feel in the depths of their souls that there is surely something inherently wrong with a social arrangement which continues to pay a pension to Dyre but silences a saint for six years"

—Conscience of A Nation : Gagan Vihari Mehta Page 6

जाग्रत करके शरीर-बल पर अधिष्ठित ससार के सबसे शक्तिशाली एव साधन-सम्पन्न राष्ट्र को चुनौती देता है। वर्तमान समय का यह अद्‌भुत युद्ध, जिसका ससार के इतिहास मे दूसरा उदाहरण नही मिलता, विश्व के लिए और गहरी सैनिकता के बोझ से जिसकी हड्डियाँ टूट रही है, उस पीडित मानवता के लिए एक आशा, एक प्रकाश है। **यह गांधी की, और उसके द्वारा भारत की, मनुष्यजाति को सबसे बडी देन है।**

और इस युद्ध ने ही ससार का ध्यान उसकी ओर आकर्षित कर दिया है—और इसके कारण ही इस समय ससार की प्रयोगशाला मे उसके साथ बैठाया जा सके, ऐसा दूसरा आदमी दिखाई नही पड़ता!

× × ×

सरकार को भय क्यों : महाराष्ट्र को आकर्षण क्यों ?

एक दुबला-पतला बूढा आदमी, जिसके रूप मे कोई आकर्षण नही और जिसका शरीर जीवन के युद्ध मे खोखला-सा होगया है; जिसके प्रेम के आगे साँप भी निर्भय होकर, उसके आश्रम में विचर सकता है,—इस डेढ हड्‌डी-पसली के आदमी के अगुली उठाते ही सरकार कॉप उठती है और भारत मे एक कोने से दूसरे कोने तक अद्‌भुत कम्पन होता है। ऐसा क्यो? इस ज़रा-से आदमी से, जिसने अपने प्राण लेने-वाले शत्रु को भी निर्भय कर दिया है, इतना डर क्यो? और दूसरी ओर एक महान् राष्ट्र का इतना गहरा आकर्षण क्यो?

पहले प्रश्न का जवाब दूसरे प्रश्न मे अपने-आप प्रकाशित है। इस शरीर से दुर्बल, वाहर से आकर्षण-हीन पुरुष ने एक विशाल राष्ट्र की सारी चेतना और श्रद्धा अपने अन्दर केन्द्रित कर ली है। ब्रिटिश सरकार चाहे जितना इन्कार करती जाय पर अपनी खण्डनात्मक अगणित विज्ञ-प्तियो के रहते हुए भी वह जानती है कि गावी में भारत की शक्ति

केन्द्रित है। भारत में जो-कुछ सूक्ष्म, रहस्यमय और विशाल है और जिससे लोहा लेने का कोई साधन यूरोप के पास नहीं है, उन सबके प्रतीक रूप में वह विश्व क्षितिज पर उदय हुआ है। उसने सूखे हुए शेर को शेर बना दिया है; उसने राष्ट्र की कमजोरी के उस मूल में ही आघात किया है जिसके कारण सब प्रकार की पराधीनता का उसमें जन्म होता है।

फिर उसने अपने युद्ध का अस्त्र—अहिंसा—ऐसा निकाला जिसके प्रयोग की सर्वोत्तम विधि वही जानता है। विरोधी को इस अस्त्र का कुछ ज्ञान नहीं। फिर हिंसात्मक प्रवृत्तियों को लेकर लड़नेवाला अहिंसा और प्रेम के सामने, युद्ध में भी, नगण्य-सा हो जाता है। उसका भौतिक बल इस नैतिक अस्त्र के सामने तुच्छ है अतः हिंसक के लिए अहिंसक बड़ा भयप्रद प्रतिद्वंद्वी है। सारा रोमन-साम्राज्य एक अहिंसक ईसा की फूँक में उड़ गया; उसके रक्त की बूँदों से वह ज्वाला निकली जिसमें विरोधी जल गया; विरोधी के अन्दर जो प्रेमी था, जो सत्य था, वह भर रह गया।

दूसरा प्रश्न : भारत का इस पुरुष में इतना आकर्षण क्यों? उससे बड़े मेधावी हमने देखे; उससे कहीं श्रेष्ठ वक्ताओं के शब्द आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं; उससे कुशल राजनीतिज्ञ अपनी दाँव-पेंच की अद्भुत कला की स्मृतियाँ हमारे पास छोड़ गये हैं। फिर इसमें ऐसी क्या बात, जिसने सब की स्मृति को धुँधला कर दिया है?

इसका यदि हो सके तो एक-मात्र यही उत्तर हो सकता है कि उसने

भारत की आत्मा का प्रतिष्ठापक

भारत की आत्मा को पहचाना है; उसने भारत के हृदय की मूर्च्छित शक्ति को चैतन्य किया है; उसने हमारी मनुष्यता की मरहम-पट्टी करके उसे सचेत किया है—वह हमारे हृदय के अत्यन्त रहस्यमय खण्डों को समझकर

उनको उबार सका है। औरो ने जहाँ राष्ट्र के शरीर के रोगो को दूर करने का प्रयत्न किया वहाँ उसने उसके हृदय की व्यथा को समझा है। और उसके युग-युग से सञ्चित सस्कार मे जो-कुछ सर्व-श्रेष्ठ है उसे निकाल—मथकर उस मथन को ही उसके उद्धार का साधन बनाया है। बहुत-से लोग जिन्होने गांधी के टुकड़े देखे है पर गांधी को पूरा-का-पूरा देख नहीं पाये है, धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र मे उसके हस्तक्षेप पर उत्तेजित है पर गाधी का अध भक्त न होकर भी मैंने सब तरफ से उसे देख-देखकर और अत्यन्त निर्दय कसौटियो पर उसे कस-कसकर पाया है कि उलटे राजनीति की अपेक्षा इन क्षेत्रो में हस्तक्षेप करने के वह अधिक योग्य अत अधिक अधिकारी है। क्योकि तत्वतः वह भारत का राजनीतिक नेता नहीं, संस्कृतिक नेता है। हमारी सस्कृति की 'स्पिरिट' को जितनी गहराई से उसने समझा है, कदाचित् ही किसी दूसरे भारतीय ने समझा हो। वह हमारी पंगु हिन्दू सस्कृति का पख है। उसने उसे उडाकर फिर विश्व की सभ्यताओ की दौड मे ला खडा किया है।

इसीलिए वह, जाति के—राष्ट्र के हृदय में पैठकर भारतीय मजूर को, भारतीय किसान को पहचान सका है; इसीलिए भारतीय नारी का तात्त्विक महत्त्व उसने समझा है और इसीलिए वह हमारी सभ्यता की इन महत्वपूर्ण इकाइयो को, पूँजीपतियो, राजाओ, व्यापारियो तथा शिक्षित एव 'प्रतिष्ठित' लोगो से, जो फालतू श्रृंगार के रूप मे आ गये है, अधिक महत्व देना चाहता है—अपने जीवन मे तो देता भी है। और यही कारण है कि बिना देखे-सुने काठियावाड़ का भील, मध्यप्रात का गोड़ और आसाम के वन्य मनुष्य ने भी अपना जीवन उसके जीवन से जोड लिया है।

गाधी की सफलता का दूसरा कारण यह कि उसके अन्दर आदर्श-

वादी और व्यवहारवादी मिलकर एक हो गया है। बीसवी शताब्दी के ससार ने रोम्याँरोलाँ से आदर्शवादी और स्व० लेनिन से अद्भुत कर्मनिष्ठ महापुरुष को देखा है पर गाँधी से उनकी भी तुलना नही की जा सकती—क्योकि गाँधी, रोम्याँ रोलॉ की भाति, प्रथम श्रेणी का आदर्शवादी है, जहाँ मानव-जीवन के उच्चतम आदर्श को उसने जीवन का ध्रुवतारा बनाया है तहाँ वह कर्म मे स्वय ओत-प्रोत हो गया है। इस विषय मे—आदर्श और व्यवहार की एकता मे—वह वर्तमान ससार मे बेजोड है और निश्चय ही ससार के महत्तम कर्मयोगियो मे उसे स्थान मिलेगा।

आदर्श और व्यवहार

और इसका कारण है। वह जीवन को उसकी सम्पूर्णता मे ग्रहण करता है। हम लोगो की तरह जीवन के खण्ड-खण्ड करके उन्हे नही अपनाता। इसीलिए हम लोगो मे से जहाँ कोई राजनीतिज्ञ, कोई समाज-सेवक, कोई आदर्शवादी और कोई व्यावहारिक बनकर बैठता है तहाँ वह राजनीतिज्ञ, समाज-सेवक, आदर्शवादी और व्यावहारिक सब एक मे ही है। जीवन के इस प्रकार टुकडे नही किये जा सकते कि जो उच्च सिद्धान्त एक क्षेत्र मे ठीक हो वही दूसरे मे अनुचित,—अभी तक तो ऐसा ही रहा है पर अपने दिव्य प्रयत्नो-द्वारा वह सभी क्षेत्रो का मेल मिला रहा है। पहले राजनीति मे धर्म को स्थान न था पर अब उसकी सतेज वाणी कहती है—"वह कौनसा क्षेत्र है जहाँ धर्म को स्थान नही ?" जीवन के भिन्न दृष्टिकोणो के कारण ही यह सकुचितता पैदा होती है। यदि हम एक प्रश्न को चारो ओर से देख सके तो यह सकुचितता कैसे रहे ? जैसे गाँधीजी के लिए राजनीति सर्वसाधारण के कल्याण का साधन है। इस कल्याण का स्थूल तात्पर्य तो सबके लिए रोटी और कपडे की समुचित

एक कारण

व्यवस्था होना है। अब इस रोटी और कपडे को ही ले तो राष्ट्र या राज्य की दृष्टि से यह समाज में धन के न्यायपूर्ण बँटवारा और उचित समाज-व्यवस्था का प्रश्न है और मानवता की दृष्टि से नीतिशास्त्र, तत्त्वज्ञान एव धर्म का प्रश्न है। इसीलिए इन अलग-अलग दृष्टि-कोणो से विचार करनेवाले, इन क्षेत्रो को अलग-अलग लेकर चलने वाले, जहाँ उसे एक सकुचित रूप मे ग्रहण करते है वहाँ गाँधी उसे धर्म भी मानता है, राजनीति भी मानता है और समाज-सुधार भी। इन तीनों को मिलाकर वह एक मे—उस प्रश्न की परिपूर्णता मे—उसे देखता है। **इसीलिए गाँधी वर्तमान संसार में अपने ढंग का अकेला ही आदमी है।** और इसीलिए अमेरिका के पादरी होम्स के शब्दो मे कहना चाहे तो कहा जा सकता है—"जब मै रोलॉ का खयाल करता हूँ तो मुझे टाल्स-टाय का ध्यान आता है। जब मै लेनिन की बात सोचता हूँ तो नेपोलियन का खयाल आता है पर जब मै गॉधी का ध्यान करता हूँ तो मुझे क्राइस्ट का ध्यान आता है।"

भारतीय समाज-व्यवस्था का प्रतिबिम्ब

जन्म से वनिया, आदर्श से ब्राह्मण गाधी मे भारतीय समाज की व्यवस्था पूर्णत प्रतिम्बित है। धर्म और आदर्श की प्रतिष्ठा मे लगनेवाला उसका त्याग और तपस्या का जीवन आदर्श 'ब्राह्मण' का जीवन है। इस आदर्श को कर्म-मय बनाने मे उसका उत्साह, उसका युद्ध, उसकी लगन एक आदर्श 'क्षत्रिय' को प्रकाशित करती है। उसकी सहिष्णुता, उसका परिश्रम, उसकी समझौते की व्यावहारिक बुद्धि, उसके श्रेष्ठ वैश्यत्व का उदाहरण है और मजदूर के प्रति, अछूत के प्रति उसका असीम प्रेम, उसका निरन्तर सेवामय जीवन, उसका अपने को 'भगी' कहने की उत्सु-कता और किसान-मजूर जैसा स्वच्छ सीधा-सादा परिश्रमी जीवन बिताने

की भावना उसे श्रेष्ठ शूद्र के रूप मे हमारे सामने लाती है। इस प्रकार **वह भारतीय सभ्यता का शुद्ध समीकरण एवं समन्वय है।**

वह जीवन के साधारण उपकरण—'स्टफ'—को लेकर धीरे-धीरे गढा गया है। एक श्रेष्ठ मूर्तिकार जिस पत्थर से अत्यन्त श्रेष्ठ मूर्ति का निर्माण करता है—जिसमे जीवन बोलता हो, उसी से एक साधारण सगतराश टेढी-मेढी आकृतियाँ ही बना पाता है। गाधी ने अपने आत्मिक उपकरणो को तराश-तराश कर उमे अपने सतत् निरीक्षण-परीक्षण से आज एक दिव्य रूप दे दिया है। महापुरुषो की भी दो श्रेणियाँ होती है। एक वे जो अपने सचित दिव्य सस्कारो के कारण एकाएक हमारे सामने ज्योतिर्मय रूप मे प्रकट होते है। उनका निर्माण आरम्भ से ही कुछ असाधारण होता है। स्वामी रामतीर्थ ऐसे ही एक महापुरुष थे। दूसरे वे जो निरन्तर की साधना एव प्रयत्नो से तिल-तिल करके गढे जाते है, जो साधारण मनुष्य के उपकरण लेकर गिरते-पडते-उठते आगे बढते जाते है और अन्त मे अपने अन्दर की कमजोरियो को दूर कर दिव्य रूप मे हमारे सामने आते है। वे धीरे-धीरे गढे जाते है। गाँधी ऐसा ही महापुरुष है। **सब न रामतीर्थ हो सकते है, न गांधी पर सब जहां गांधी का अनुकरण कर सकते है वहां सब रामतीर्थ के पथ पर नहीं चल सकते।** इस दृष्टि से भी वर्तमान युग मे गाधी हमारे अनुकरण के लिए सर्वोत्तम महापुरुष है। वह प्रत्येक क्षेत्र मे काम करने-वाले ईमानदार कार्यकर्ता के लिए ध्रुवतारा के समान मार्ग-दर्शक है।

सतत् प्रयत्न से गढ़ा हुआ महापुरुष

× × ×

आज जब हिंसा का दैत्य मानवजाति, को निगलने के लिए अपना भयावना मुख फैलाता जा रहा है, जब मानवता की पीडा पर राष्ट्रो की झूठी समृद्धि के महल खड़े किये जा रहे है, जब दुनिया के श्रेष्ठ पर गरीब

मनुष्य प्राणी के दैन्यमय जीवन को बिछाकर उस पर विलास सतत् (ताण्डव) नृत्य कर रहा है, जब घायल, पीडित, अपमानित एव दर्द से कराहती हुई मनुष्यता सर्वग्राही अधकार मे छटापटा रही है तव उसकी एक-मात्र आशा गाधी के रूप मे क्षितिज पर फूट रही है। इस दुवले पर अत्यन्त शक्तिमान महापुरुष मे विश्व की आशा और मानव-जाति का निकट भविष्य, बडी दूर तक,केन्द्रित है। इसीलिए यदि उसका अहिंसा का व्यापक प्रयोग असफल हुआ तो ससार के लिए बडी भयप्रद बात होगी।

इस समय तो वह हमारी आशा का पंख है। वह हमारी जीवन-निशा का दीपक है। वह विश्व की आध्यात्मिक साहसिकता का प्रतीक है। इस घोर अधकार में उसकी डेढ़ हड्डी-पसली की मूर्ति ध्रुवतारे की तरह चमक रही है!

O White Innocence !
That thou shouldst wear the mask of guilt to hide
Thine awful and serenest countenance
From those who know thee not ! —SHELLY.

—चार—

तपस्वी गांधी

गाधी के सारे जीवन मे ही साधना और तपस्या ओत-प्रोत है। ज्यो-ज्यो उसमे सत्य की प्रेरणा निश्चित एव स्पष्ट रूप पकडती गई त्यो-त्यो जीवन मे सादगी, कष्ट-सहन और अपरिग्रह को उसने वढाया है। ब्रह्मचर्य, अस्वाद और अपरिग्रह को, जो एक तपस्वी जीवन की आधार-शिला है, उसने सम्पूर्ण आग्रह से अपना लिया है और वार-वार अपने हृदय को

निर्दय आत्म-परीक्षक

उलट-पुलट कर देखा करता है—उसे कसौटी पर कसा करता है कि कही उसमें शिथिलता तो नही आ रही है—कही भूल तो नही हो रही है। इस विषय मे वह अत्यन्त निर्दय परीक्षक है,—ऐसा निर्दय जिसकी निर्दयता की मिसाल नही।

खाने के लिए बकरी का दूध और चद चीजे, जो गरीबो के घर मे भी मिल सके, उसके लिए बस है। उसमें भी मिर्च नही, मसाले नही, स्वाद

अनावृत जीवन

के नाम पर कुछ-न-जैसा है। कपडे के नाम पर एक लँगोटी और एक चादर! रेल मे सैकडों मील लबा सफर तीसरे दर्जे मे करता है। पाखाना साफ करने और जूता बनाने से लेकर वायसराय के बराबर बैठकर बातें करनेवाले इस अद्भुत पुरुष ने विश्वा की निस्पृह सरलता और तपस्या-वृत्ति को जीवन मे अपना लिया है। वह सदा जागरूक रहता है। ईर्ष्या-द्वेष, दंभ एव क्रोध को उसने अपने मन से निकाल फेंका है। फिर भी अपनी अपूर्णताओ पर, पश्चात्ताप-दग्ध प्रेमी की भाँति उसका हृदय जल रहा है।

× × ×

१९१५ ई० की बात है। गाधी ने गोखले के एक चित्र का उद्घाटन किया था। उद्घाटन के पहले एक भजन गाया गया। जब उद्घाटन

जन-सेवा की गहरी भावना

करने के लिए गाधी खडे हुए तो भजन का उल्लेख करते हुए कहा—"मैने भजन मे पाया कि प्रभु उनके साथ है जिनके वस्त्र फटे एव धूल-धूसरित है। मेरा ध्यान तुरन्त अपने वस्त्र के निचले भाग पर गया। मैंने देखा कि वह धूल-धूसरित नही है और जीर्ण-शीर्ण भी नही है। वह विना एक धब्बे के—बिलकुल साफ है। ईश्वर मुझ में नही है।" इस भाषण में गाधी की तपस्या की भित्ति स्पष्ट दीख पडती है। उसका हृदय सदा दीन-

दुखियो एव गरीबो के बीच रहता है। वह सदा उनकी सेवा, उनकी रक्षा, उनकी सहायता मे लगा रहना चाहता है। इस सम्बन्ध मे सतत जागरूक रहने के लिए वह अपने को (और अपने द्वारा सब ईमानदार कार्यकर्ताओ को) पुकारकर कहता है—"दीन-दुखियो की निष्काम सेवा से बढकर पवित्र और प्रभु को प्रिय कोई पूजा नही है।" और—"ईश्वर इन्ही गरीबो के बीच रहता है क्योकि वे उसे अपनी एक मात्र शरण एव रक्षक के रूप में अगीकार करते हैं। इसलिए उनकी सेवा करना ईश्वर की सेवा करना है।" उसने दरिद्रनारायण के साथ अपना जीवन मिला दिया है।

उसने गरीबी को सूम के धन की तरह अपना लिया है और इसीलिए वह गरीब को अपने अन्दर देख सका—पा सका है और इसीलिए गरीब भी उसे पा सके है। एक पैसे की फजूलखर्ची उसे चोरी करने के समान मालूम पडती है। एक बार की बात है कि साबरमती आश्रम के उनके कमरे मे एक मोखे से धूप आती थी और उनके मुख पर पडती थी। इससे उनको तकलीफ होती थी इसलिए उन्होने उसे बन्द करने की इच्छा प्रकट की। एक आदमी बढई को बुला लाया और उससे 'शटर' (बन्द करने और खुलनेवाला रोशनदान) लगवा लिया। गाधीजी की सम्मति से ही यह काम हुआ पर उस समय अन्य कामो मे लगे रहने के कारण उन्होने बारीकी से इस प्रश्न पर विचार नही किया था। बाद में जब विचार किया तो उन्हे मालूम हुआ कि मैंने पैसे का अपव्यय और दुरुपयोग किया है और यह काम एक दफ्ती या कपडे का टुकडा कीलो द्वारा लगा देने से भी हो सकता था। उस दिन शाम की प्रार्थना मे पश्चात्ताप-दग्ध वाणी मे उन्होने अपनी दुर्बलता स्वीकार की।

दॉडी-यात्रा के समय भी साथियो-द्वारा कुछ अपव्यय होने पर उन्होने बडे दु ख के साथ कहा था—"आह! हम ईश्वर के नाम पर यह यात्रा

कर रहे है और भूखों, नगो एवं वेकारों के नाम पर कार्य करने का दावा करते है !"

पर यह गरीवी,—यह अपरिग्रह ही तपस्या का सव-कुछ नही है। उसमे सयम का प्रकाश होना चाहिए। गांधी ने इस पर वहुत ध्यान दिया है। ब्रह्मचर्य का निरन्तर अभ्यास उनके जीवन मे चल रहा है। शरीर, मन और जिह्वा (अस्वाद-व्रत द्वारा) पर विजय प्राप्त करने की साधना उसके जीवन का स्थायी अंग बन गई है। इसने जीवन मे त्याग को महत्व दिया है और उसे त्याग से महिमामय वना दिया है।

संयम का प्रकाश

पर तपस्या के कटकाकीर्ण पथ का पथिक इतने ही से सफल नही हो सकता। मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ है, अनेक प्रलोभन है। हिंसक वासनाएँ उसे निगलने को तैयार। दोनो ओर खाईं है,—ज़रा फिसले और नीचे गिरे। इसलिए तपस्वी का अपने और अपने प्रभु मे पूर्ण विश्वास होना चाहिए। गाधी को वह विश्वास असीम मात्रा मे प्राप्त हुआ है। **यह श्रद्धा ही उसकी लाठी है; यही उसका कवच है। यह श्रद्धा पहाड़ की तरह अचल है, आंधी जिसे हिला नहीं सकती और तूफानी बादल जिससे टकराकर स्वयं चूर-चूर हो जाते है।** उसके ये शब्द अविश्वास के अधकार और कोहरे को भेद कर वायु की सतह पर तैर रहे है—"अपनी छाती पर हाथ रखकर मैं कह सकता हूँ कि अपने जीवन के एक क्षण मे भी मै ईश्वर को नही भूलता। इन २० से भी अधिक वर्षो में मैंने जितने भी कार्य किये है सव इस तरह किये है मानो ईश्वर के सामने हूँ।"

प्रभु में अगाध श्रद्धा

भगवान् ने अपनी चिर-सत्यवाणी—

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज'

में आत्मार्पण का जो आदेश किया है उसे इस बूढे दुबले-पतले तपस्वी ने सम्पूर्ण सच्चाई के साथ ग्रहण कर लिया है। सर्वस्वार्पणकारी को भगवान् ने जो आश्वासन—

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।

दिया था, उसके अनुसार ही उसने इस तपस्वी भक्त को अपना लिया है। फिर भी उसकी नम्रता, उसकी गरीबी देखो, जो वह व्यथित वाणी मे, रह-रहकर पुकार उठता है—

'मो सम कौन कुटिल खल कामी !'

यह सतत् आत्म-निरीक्षण, अन्त व्यथा और प्रायश्चित्त भी उसकी तपस्या के अग है। वह पूर्णत देव पर चढा हुआ जीवन है। वह सेवा, त्याग एव नि स्वार्थता का एक उपदेश है। उपवास और प्रार्थना उसके दो पहरेदार है। उसका जीवन सतत उपासना का जीवन है जिसको प्रार्थना ने, विनय ने मॉज-माजकर उज्ज्वल वना दिया है। यह प्रार्थना भी कैसी—"भिक्षा नही, आत्मा की आकुलता, अपनी दुर्वलताओ की दैनिक स्वीकृति अपने कर्तार के साथ मिलकर एक हो जाने की हृदय-विह्वलता।" यह प्रार्थना उसकी शक्ति है और इसके वल पर वह तपस्या का कण्टकाकीर्ण पथ अद्भुत शान्ति से तै कर रहा है।

—पाँच—

तत्वज्ञानी के रूप में

अपने सत्य-अहिंसा (सत्याग्रह) के जीवन-व्यापी प्रयोग कर-करके गाधी ने उसे एक सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान के रूप मे परिणत कर दिया है। उसका जीवन आदि से अन्त तक सत्य की एक चिर-साधना है। उसके कार्य-क्रम वदलते रहे हैं, उसका क्षेत्र वदलता रहा है, उसके वाह्य आवरण मे

उतार-चढाव होते रहे है पर इन सबके बीच गाधी की दिशा ज्यो-की-त्यो—एक—रही है।

जैसा कि सत्यालोक के प्रत्येक दर्शन मे होता है, गाँधी का जीवन-सत्य भी किसी देश या जाति की सीमा मे बँधा नही है। वह स्वय कहते है—

नीति की प्रधानता

"मेरे धर्म में कोई भौगोलिक बन्धन नही है।" गाँधी का सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान नीति-प्रधान है। आत्मानुभव की दृष्टि से जो सदाचरण आवश्यक है उन्हे ही वह धर्म मानते है और इसीलिए नीति और धर्म मे अन्तर नही देखते। जीवन के प्रत्येक पग पर वह शुद्ध नैतिकता पर जोर देते है। वस्तुत उनका तत्त्वज्ञान ही आध्यात्मिक की अपेक्षा नैतिक अधिक है। नैतिकता से स्वय आध्यात्मिकता का जन्म होता है, यह उनके जीवन से ही स्पष्ट है। उनका धर्म व्यावहारिक आदर्शवाद पर निर्भर है। **शुद्ध निःस्वार्थ सेवा इस धर्म का साधन है; सार्वदेशिक प्रेम इस सेवा का साध्य है।**

सत्य गाधी के तत्त्वज्ञान का ध्रुवतारा है और वही उसका लक्ष्य भी है। अहिंसा इस सत्य की सिद्धि का साधन है। अहिंसा का विकसित और

तत्त्वज्ञान का ध्रुवतारा

परिणत रूप प्रेम है। उच्च प्रेम से सब कुछ सभव है, इस आधार को लेकर ही गाधी चलता है। ऐसी अहिसा—प्रेम—एक प्रकार का अपरिणत सत्य ही है। वह विरोधी का प्रहार हँसते-हँसते सहन करती है और तबतक सहन करती है जबतक उसका क्रोध हार नही जाता। इस प्रकार अक्रोध से क्रोध को जीतकर अहिसा का प्रयोक्ता अपना और विरोधी दोनो का कल्याण करता है। और फलत दोनो के बीच प्रेरणा की एकता (आत्मैक्य की भावना) आती है। इसके अवलम्ब से इर्ष्या-द्वेष-भय-लोभ इत्यादि का—तमस् का—लोप होता है और ज्यो-ज्यो अहिंसा पूर्णतर

प्रेम मे परिणत होती है त्यो-त्यो सत्य का अनुभव अधिक स्पष्ट होता है। तमस् एव रजस के क्रमिक लोप और सत् के क्रमिक विकास के साथ स्वभावत आध्यात्मिक अनुभूति का जन्म होता है। ज्यो-ज्यो साधक मे सत्यानुभव की अधिक शक्ति आती है त्यो-त्यो उसके आत्म-दर्शन की क्षमता बढती है। वह जगत् को आत्ममय देखने लगता है। यह सर्वात्म-भाव ही विश्वात्मानुभव की कुजी है।

इस प्रकार सत्य और अहिसा दोनो सामान्य एव सर्वश्रुत शब्दो को गाधी ने अपने जीवन की साधना मे अत्यन्त दिव्य तात्त्विक रूप दे दिया है। उनके लिए जो सत्य है वही परमेश्वर है। यह सत्य सर्व-व्यापक है—उसके बिना किसी चीज की स्थिति नही। अत उसका प्रयोग प्रत्येक क्षेत्र मे किया जा सकता है। इस सम्बन्ध मे गॉधी मानव-जीवन के विकास की अधिक से अधिक सुविधा देता है। क्योकि सत्य के साथ अहिसा मिली रहने से, जहाँ एक आदमी अपने आत्मिक विकास की सुविधा पाता है, वहाँ उसका उपयोग करने मे उसे दूसरो के विकास के लिए भी सुविधाओ का खयाल रखना पडता है। अहिसा के बिना सामूहिक रूप से मनुष्य का विकास रुक जाता है और अन्त मे इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति और समाज दोनो सच्चे विकास एव सुख की सुविधा से वचित रह जाते है। इस प्रकार भारतीय और यूरोपीय तत्त्वज्ञान के दो दृष्टि-बिन्दुओ को उन्होने मिला दिया है। और आत्म-शोध एव समाज-सेवा का अद्भुत समन्वय अपने जीवन एव तत्त्वज्ञान मे किया है।

गॉधी फिलासफी कैसे चलती है ?

लक्ष्य के विषय मे प्रमाद न हो इसलिए उन्होने सत्य को जहाँ लक्ष्य बनाया और अहिसा को उसका साधन, वहाँ साधक की पवित्रता की रक्षा और उसे प्रलोभनो से बचाने के लिए कुछ और शर्त्तें भी उन्होने लगा

सभव ही कैसे हो सकता है कि वह मनुष्य-मनुष्य के बीच घृणा फैलाने वाली अस्पृश्यता की कुत्सित प्रथा का समर्थन करे ? इसीलिए उसकी दृष्टि मे 'अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कलक है ।' और 'हिन्दू धर्म ने अस्पृश्यता को स्वीकार कर पाप किया है। और हमे साम्राज्य मे अछूत बना दिया है ।' गाँधी चाहता है कि यदि उसका दूसरा जन्म हो तो भगी के घर हो, जिससे यह उनके बीच रहकर, उन्ही का होकर उनकी सेवा कर सके । १९२१ मे उसने अपने एक व्याख्यान मे कहा था कि जिन दो आकाक्षाओ ने मुझे जीवित रखा है उनमे एक अस्पृश्यता-निवारण है और दूसरी गो-रक्षा । जीवन के आरभ से ही हम देखते है कि अस्पृश्यता को उसके हृदय ने कभी कबूल नही किया । दक्षिण-अफ्रीका मे उसने इसे क्रियात्मक रूप दिया और इसके कारण कुटुम्ब मे जो तूफान उठे, उनका सामना किया । जब कोचरब मे सत्याग्रह-आश्रम खुला तब अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को उसने अपने जीवन मे स्थायी रूप से ग्रहण किया और तब से लक्ष्मी (एक अछूत कन्या, जिसका विवाह १९३३ ई० मे हुआ) उनकी पुत्री के रूप मे आश्रम मे पलती रही है । १९२४ से काग्रेस कार्यक्रम मे भी उसने अस्पृश्यता-निवारण को महत्वपूर्ण स्थान दिलाया । हिन्दू दृष्टि-कोण छोड दे, तो मनुष्यता की दृष्टि से भी, और राष्ट्रीय दृष्टि से भी, अस्पृश्यता भारत के लिए एक वडा खतरा है । इसलिए काग्रेस के विधायक कार्यक्रम मे उसका मुख्य स्थान है । और अब तो इस समस्या के लिए तीन वार वह अपने जीवन की वाजी भी लगा चुका है । दो वार प्रभु से लडाई लडी है । उसका उपवास एकाएक हमारे सामने आया और सोते हुए हिन्दू अन्त करण को उसने झकझोरकर जगा दिया । जिस राक्षस ने हमारे सुधारको को युगो तक तग किया, जो हमारे सब प्रयत्नो पर सदा उपेक्षापूर्ण अट्टहास करता रहा, जिसने

हमे विदेशी बाज़ारो मे—'मेयो' इत्यादि की किताबो मे—अपमानित किया वह आज इस असाधारण पुरुष के प्रहारो से दम तोड रहा है।

एक दिन जो मन्दिर स्वच्छता और पवित्रता के केन्द्र थे, जहाँ से हमे आत्मिक प्रकाश मिलता था और ससार-यात्रा मे थके, निराश जनो को जहाँ श्रद्धा जीवन देती थी वहाँ आज अस्पृश्यता ने मानव-धर्म को बलिदान कर दिया है, वे जोर-ज़बर्दस्ती के अड्डे हो रहे है। लोग यह भूल गये है कि धर्म आत्माओ को नियोजित करता है, पृथक् नही। और जो मिलाता है, वृद्धि करता है, विकसित करता है, वही सत्य है—वही धर्म है। श्रद्धा अन्ध-विश्वास नही है, वह मानवी अन्त करण का पख है, वह आत्मिक सत्यो को ग्रहण करनेवाली मानव-हृदय की उदार भावना है। धर्म के नाम पर आज जो हो रहा है, वह कितना व्यथाकारी है? वस्तुत अस्पृश्यता की समस्या तो सामाजिक समस्या है, धर्म से उसका कुछ सम्वन्ध नही, गाँधी ने इस अमानुषिक प्रथा को दूर करने के लिए अपने सत्याग्रह से, अपनी तपस्या से कार्य-शक्ति की एक लहर हिन्दू-समाज के अन्दर उत्पन्न कर दी है। और आशा की जाती है कि हिन्दू-समाज इस चिर-सचित गदगी को इस लहर मे धो डालेगा।

स्त्रियो का जागरण

स्त्रियो के अभूतपूर्व जागरण मे गाँधी एक मुख्य कडी है। उसने सत्याग्रह-आन्दोलन का सचालन इस ढग से किया कि जो बाते दो साल पहले अनहोनी समझी जाती थी, वे सभव हो गईं। शत-शत बहनो ने परदे को तोडकर मातृभूमि की वेदी पर अपनी पूजा, अपनी भेट अर्पित की है और इन बहनो के त्याग, कष्ट-सहन और वीरता की गाथाएँ हमारे इतिहास के उज्ज्वलतम पृष्ठो मे स्थान पावेगी। दो वर्ष के इस युद्ध मे भारतीय नारी ने अपनी शक्ति, अपनी असीम सभावनाओ को अच्छी तरह पहचान लिया है। वह जान

गई है कि वह न केवल अपने बच्चो की माता और अपने पति की चिरसगिनी है, वह न केवल कुटुम्ब को अपने चिर-स्नेह के अमृत से सीच सकती है वरन् देश और समाज के भविष्य-निर्माण के कार्य में भी किसी से पीछे नही है। अभी तक अबला, दुर्बल, शिथिल, दबी और दबाई हुई तथा दयनीय इत्यादि अनेक अनुपयुक्त विशेषणो से पुकारी जानेवाली भारतीय नारी का अत्यन्त दिव्य और तेजस्वी रूप सत्याग्रह-युद्ध मे प्रकट हुआ। इसका श्रेय, बहुत बडी मात्रा मे, गाँधी को है।

पर गाधी की भारतीय नारी आखो मे चश्मा, हाथ मे बैग लेकर आफिस जानेवाली नारी नही है, न वह पाउडर—भूपित मुख और 'लिपस्टिक'—रजित ओष्ठो तथा बार-बार 'वैनिटी बाक्स' के उपयोग द्वारा लोगो का ध्यान अपनी ओर—अपने रूप की ओर आकर्षित करने-वाली रमणी है। वह नारीत्व के प्रकाश और मातृत्व की दिव्य आभा से दमकती हुई, पुरुष की सच्ची सहचरी है। उसके हृदय मे सहानुभूति है, दया है। वह अन्नपूर्णा है; वह कुटुम्ब को स्नेह-दान करनेवाली है और वही उसका असली क्षेत्र है। जगद्धात्री की प्रतिनिधि-रूपा यह भारतीय नारी, जिसमे श्रद्धा है, विश्वास है, तेज है, सेवा है, धर्म है, गाधी की आदर्श नारी है।

परदा-प्रथा हटाने, विवाह-प्रथा को शुद्ध धार्मिक संस्कार का रूप देने और उसमे आदर्श सादगी लाने का प्रयत्न गाधी की ओर से बराबर होता रहा है। खान-पान मे असाधारण स्वच्छता और पवित्रता का पालन करते हुए उसने जातिगत छूत-छात को दूर भगाने का काम भी, एक सीमा तक, किया है। आश्रम मे शुरू से विभिन्न देशो, वर्णो एव जातियो के भाई-बहन साथ बैठकर खाते है तथा दूसरे हजारो राष्ट्रीय एव सामाजिक कार्यकर्ता इस पद्धति का पालन अपने जीवन मे करते है।

अन्य सुधार

इस प्रकार गाँधी ने समाज-सुधारक के रूप मे भी इतना काम किया है, जिससे उसका नाम हमारे सर्वश्रेष्ठ समाज–सुधारको के साथ लिया जा सकता है ।

—सात—

लेखक और कलाकार गांधी

बहुत कम लोग इस बात को जानते है कि गुजराती साहित्य को उसके वर्तमान रूप मे लाने का कितना श्रेय गाँधीजी को है । गुजराती भाषा, आज जो, एक नूतन विचार-प्रवाह का साधन बन गई है, आज उसमे जो शक्ति हम पाते है, आज उसमे जो एक नूतन प्राणोन्मेष है, वह मुख्यत गाँधी की देन है । पर गुजराती ही क्या अग्रेजी भाषा पर भी उसकी छाप पड रही है । क्या गुजराती मे, क्या अँग्रेजी मे गाँधीजी की लेखन-शैली एक उच्चकोटि के कलावन्त की शैली है । एक शब्द भी व्यर्थ नही, नपे-तुले शब्द अपने-अपने स्थान पर ठीक । आडम्बर नही, श्रृगार नही । फिर भी वह इस सादगी मे शैली का अद्भुत सौन्दर्य विकीर्ण करते है । कभी-कभी छोटे-छोटे वाक्यो मे वह असीम भाव-सौन्दर्य भर देते है । गो पर, विधवा पर, भारतीय नारी पर लिखे हुए उनके वाक्य उच्चश्रेणी के गद्यकाव्य-से लगते है । "गाय दया की एक कविता है" इस छोटे वाक्य में इस प्राणी के जीवन को उन्होने थोडे मे कह डाला है और उस कहने मे कितना भावोद्रेक, कितनी कला है । इसी प्रकार "घृणा सदैव घातक होती है, प्रेम कभी नही मरता" या "सख्या-बल आलसियो या कायरो का आनन्द है । आत्मवीर अकेले लडने मे आनन्द पाता है"

शैली और भाव के राजा

या "विवाह वह बाड है जो धर्म की रक्षा करती है" या 'प्रेम बोलता नही, जो बोले वह प्रेम नही ।'

उनकी लिखी पुस्तके, उनके लिखे लेख और 'नवजीवन' 'यग इण्डिया' और 'हरिजन' में उनकी कलम से निकली अजस्र विचार-धारा से भाषा पर उनके अधिकार का पता चलता है। अनेक अग्रेज यात्रियो एव लेखको ने उनकी अग्रेजी की प्रशसा की है। बात यह है कि उनकी विचार-शक्ति बहुत सूक्ष्म और तीव्र है, इसलिए भाषा अपने-आप उनके दिव्य विचारो का अनुसरण करती है।

पर जब हम उन्हे कलाकार कहते है तब हमारा यह अभिप्राय नही कि उन्होने कोई सुन्दर चित्र बनाया है, या कविता लिखी है, या सुन्दर गायक वा वादक है। जब उन्हे कलाकार कहते है तो हम कला को उसके अत्यन्त विकसित रूप मे लेते है। उनका सारा जीवन ही श्रेष्ठ कला का नमूना है। वह एक सदेह काव्य है। उनकी आत्मा सतत झकृत वीणा है जिससे आत्मार्पण की रागिनी निकलती है और जो उनके कभी न रुकनेवाले कर्ममय जीवन के मृदग पर उछल-उछलकर जगत् को उत्साहित करती है। गाँधीजी एक श्रेष्ठ कर्म-कलाविद् (Artist in action) है। वह कहते हैं—"भूखा जन-समूह केवल एक कविता चाहता है—प्राणदायक भोजन।" उन्होने काव्य को क्रियात्मक मानवी करुणा से ओतप्रोत कर दिया है। दाडी-यात्रा की योजना सिवाय गाँधी के दूसरा न बना सकता था। इस योजना पर ही एक श्रेष्ठ कलाकार की छाप है। एक कवि के अतिरिक्त कौन इसे कर सकता था?

एक सदेह काव्य

गाँधीजी 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के समर्थक नही, वह वर्डस्वर्थ की भाँति कला की नैतिक कीमत के पूजक है। वह कला को नैतिक

प्रेरणाओ, नैतिक शक्तियो का विकासक मानते है। उनके मत से सब प्रकार की कला आत्मा की—मनुष्य की आन्तरिक दिव्यता को प्रकट करती है और इस प्रकार आत्मानुभव मे सहायक होती है। वर्डस्वर्थ की भाँति ही गाँधीजी भी प्रकृति मे अनन्त रमणीयता—अनन्त सौन्दर्य देखते है। प्रकृति के इस सौन्दर्य में नहाकर उनकी मानसिक क्लान्ति दूर हो जाती है और आत्मा का तेज शरच्चन्द्र की निर्मलता के साथ प्रकट होता है। वह स्वय कहते है—"जब मै सूर्यास्त की सुषमा या चन्द्रमा के सौन्दर्य को देखता हूँ तो मेरा अन्त करण प्रभु की पूजा मे फैल जाता है।" वह उस श्रेणी के कवि है जो एक हँसती कली को देखकर मुग्ध हो जाता है और उसमे भगवान् की मुस्कराहट को प्रत्यक्ष देखता है। एक दिन रात को जब मीरा बहन (मिस मेडलीन स्लेड) धुनकी के काम मे लाने के लिए बबूल की पत्तियो का एक गुच्छा तोडकर लाई तो गाँधीजी ने देखा कि प्रत्येक पत्ती सिमटी हुई गहरी नीद मे पड़ी है। दु खभरी आँखो से मीरा बहन की ओर देखकर कवि बोला—"वृक्ष हमारी ही तरह प्राणी है। उनमे जीवन है, वे साँस लेते है, वे खाते-पीते है और हमारी ही तरह उनको नीद की जरूरत होती है। इसलिए रात के समय, जब वृक्ष सो रहे हो, पत्तियो को तोड़ना निर्दयता है।······निश्चय ही कल की सभा मे मेरा भाषण तुमने सुना होगा जिसमे मै बेचारे फूलो के बारे मे बोला था कि लोग मेरे ऊपर फेकने या गले मे डालने के लिए हलकी-हलकी कोमल कलियो के गुच्छे तोडकर लाते है, उससे मुझे कितना दु ख होता है। हमे अपने एवं शेष प्राणिजगत् के बीच जीवित सम्बन्ध का अनुभव करना चाहिए।"

प्रकृति-सौन्दर्य का पुजारी

× × ×

शुद्ध सगीत के वह अनन्य प्रेमी है और उन्होने इसे आश्रम की व्यवस्था मे स्थान भी दिया है। उनके ही शब्दो मे देखे तो उनका कहना

सगीत के प्रेमी

है—"सगीत ने मुझे शान्ति दी है। · ···सगीत ने मेरे क्रोध पर विजय पाने मे सहायता की है। ऐसे अनेक अवसर मै याद कर सकता हूँ जब एक भजन मेरे अन्त करण मे पैठ गया है, जब वे ही भाव गद्य में मुझे स्पर्श करने मे असफल रहे।" एक बार स्व० द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र गायक दिलीपकुमार राय से गाँधीजी ने कहा था—"मै सगीत के विरुद्ध हो ही कैसे सकता हूँ ? मै तो सगीत बिना भारत के धार्मिक जीवन के विकास का खयाल ही नही कर सकता। मैं तो सगीत की तरह तमाम कलाओ का प्रेमी हूँ। हाँ, कला नाम से आजकल अनेक चीजो का परिचय कराया जाता है, उनके खिलाफ जरूर हूँ। कला के लिए हृदय चाहिए, इसका रहस्य समझने लिए शिक्षा और ज्ञान की जरूरत नही।" ·····"तपस्या जीवन में सबसे बडी कला है। जीवन समस्त कलाओ से श्रेष्ठ है। मै तो समझता हूँ कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवन की भूमिका विना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है ? कला के मूल्य का आधार है जीवन को उन्नत वनाना। जीवन ही कला है। कला जीवन की दासी है। और उसका काम यही है कि वह जीवन की सेवा करे।·· कला विश्व के प्रति जाग्रत होनी चाहिए।"

उनके विचार से सत्य मे अद्भुत सौन्दर्य समाहित है। और सत्य के द्वारा ही सच्चा सौन्दर्य-दर्शन हो सकता है। सुन्दर में सत्य और शिव खोजने की जगह वह सत्य मे ही सुन्दर और शिव खोजते है। इस प्रकार वह एक नैतिक (एव उपयोगितावादी) कलावन्त है। उनका सारा जीवन आत्म-सौन्दर्य से जाग्रत है और श्रेष्ठ कला का एक सुन्दर प्रतीक है।

—आठ—

दीनबधु गांधी

गाँधी दीनो की लाठी है। उसने इनकी सेवा मे ही अपनी सार्थकता मानी है। वह इनकी सेवा को ईश्वरोपासना का सर्वोत्कृष्ट रूप मानता है। उसने दरिद्र को नारायण बना दिया है। उसे रात-दिन इस दरिद्र-नारायण का ध्यान रहता है और उसने अपने को उनमे मिला दिया है।

—और इन दीनो ने भी उसे समझा है और हम शिक्षितो से अधिक उसे अपनाया है। वे उसका नाम सुनकर उसी प्रकार चमत्कृत होते है जैसे तुलसीदास का नाम सुनकर। उनके लिए वह कोई असाधारण पुरुष है, कोई सन्त-महात्मा है।

—और गाँधी ने निश्चित रूप मे भी उनके लिए क्या कुछ कम किया है ? अछूतो के लिए प्राण देनेवाला यह महापुरुष उनको खूब समझता है और उनकी हित-चिन्ता मे उसने ब्रिटिश-साम्राज्य की दृढ दीवारो को हिला दिया है। इसी प्रकार भारत की गरीबी की मूर्ति— से, चारो ओर से दुरदुराये हुए, हमारे अभागे किसान को उसने धनियो का 'अन्नदाता' कहकर घोषित किया। उनके पल्ले दो पैसे पडे, इसके लिए उसने भारत के गाँवो मे चर्खा ला खडा किया है और उसकी मन्द रागिनी से उनमे आत्म-विश्वास का अद्भुत बल पैदा कर रहा है। यह चरखा, जो भारतीय उद्योग का प्रतिबिम्ब है, धीरे-धीरे उनके जीवन मे स्थान पा रहा है। शहरातियो मे से भी बहुतो को उसने सादगी और पवित्रता प्रदान की है।

यह चरखा गाँधी का सहचर है। यात्रा मे, जेल मे, सर्वत्र 'भारत

के लिए विष्णु-रूप' यह चरखा उपस्थित है। चरखे के पीछे वह पागल है क्योंकि इसमे वह भारतीय किसान का उद्धार देखता है। उसे खादी मे भारत की स्वतन्त्रता के, भारतीय नारी के शील के, स्वराज्य और सत-युग की स्थापना के दर्शन होते है। यह बात सुनकर कोई सोचने लगता है, कोई हँसता है, कोई विमूढ हो उसकी ओर ताकता है पर उसका चर्खा तो इन सबके बीच अबाध गति से चल रहा है।

यह चरखा न केवल भारतीय किसान का सहारा है वरन् पश्चिम की यात्रिक औद्योगिकता के प्रति विद्रोह का प्रतीक है। वह उद्योग एव जीवन मे सादगी लाता है जिसे हम ग्रहण करले तो यात्रिक उद्योगवाद से उत्पन्न श्रेणी-युद्ध (पूँजीपति और मजूर के झगडे) से बच सकते है। इस दृष्टि से देखे तो चरखे का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व कुछ कम नही है और जब गाँधीजी ने कहा था कि अमेरिका के प्रति भी यह चर्खा ही हमारा सन्देश है तो उनका ध्यान इसी बात पर था। यह चरखा पश्चिम की औद्योगिकता से उत्पन्न होड और कलह के बीच शान्ति की सन्देश-वाहक पताका की भाँति खडा है और सच्चे रास्ते का निर्देश करता है।

× × × ×

इन रूपो के अतिरक्त देश-भक्त, विद्रोही, श्रमिक अनेक रूपो मे हम गाँधी को देखते है पर इन रूपो से जनता इतनी जानकारी रखती है कि उनके वर्णन एव विवरण की यहाँ आवश्यकता नही। वह मनुष्यो का प्रेमी है। उसकी विनोद-वृत्ति (sense of humour) और उसका मुक्त हास्य सार्वजनिक क्षेत्र मे अफवाह की भाँति प्रसिद्ध है। इस विनोद-वृत्ति के कारण ही वह इतनी कठिनाइयो, दु खो के बीच भी जीवित रह सका है। इस विनोद-वृत्ति में विरोधी के विरोध का विष बह जाता है और इस साधक को बच्चे की भाँति निर्दोष कर जाता है। जब उसके हृदय

मे आँधी चल रही हो तो वह हँस सकता है। जो कोई उसके सामने आता है, उसे वह प्रेम की शक्ति से अपना लेता है। उसने प्रेम को एक कला बना दिया है। शिष्टाचार इस कला का सब से उपयोगी एव आवश्यक अग है।

इस प्रकार अपने विविध रूपो मे प्रकट होकर मोह-निशा मे ज्ञान के प्रकाश-स्तभ की भाँति वह हमे मार्ग दिखा रहा है।

—नव—

कतिपय स्मरणीय प्रसंग

गाँधीजी का जीवन उनके विशेष गुणो को व्यक्त करनेवाले प्रसगो से भरा पडा है। जो व्यक्ति प्रति क्षण अपने सिद्धान्तो के अनुसार चलने मे सचेष्ट है, उसके जीवन मे ऐसे प्रसगो की कमी क्या ? वे सब लोग, जो उनके सम्पर्क मे आये है, दो-चार उदाहरण अवश्य बता सकेगे। यहाँ कतिपय स्मरणीय प्रसगो का उल्लेख किया जाता है।

दक्षिण-अफ्रीका का गाँधीजी का जीवन एक तेजी से बन रहे साधक का जीवन था। उस साधना मे अद्भुत भावावेश भी था। और यह

"शीश चढ़ा चुका हूँ !"

उनके पवित्र भावावेश तथा साधना का ही परिणाम था कि उस समय सब धर्मो, जातियो एव देशो के ईमानदार साथी उन्हे मिले थे। यह उनके सत्याग्रह का ही प्रभाव था कि कई यूरोपियन ईसाई बन्धुओ ने भी भारतीयो का साथ दिया और यातनाएँ सहन की थी। इस सत्याग्रह ने प्रवासी भारतीय स्त्रियो मे भी त्याग की लौ जलाई थी। उन्होने अपने कष्टो को उदाहरणीय धीरता के साथ सहन किया था। पर गाधीजी तो उनके दु खो का कारण भी अपने को हो समझते थे और उनके कष्टो को अपनी

आत्मिक सहानुभूति से दूर करते थे। २२ दिसम्बर १९१३ का दिन दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह मे महत्वपूर्ण था। डरबन मे पारसी रुस्तमजी का मकान भारतीयो से भर गया था। सैकडो सत्याग्रही अपने स्त्री-बच्चो सहित बैठे थे। इनमे वे लोग भी थे जिन्हे गोलियाँ लगी थी। शहीदो की विधवा स्त्रियाँ अपने बच्चो को गोद मे लिए बैठी हुई थी। सध्या समय, लगभग ४ बजे, गाँधीजी वहाँ आये। दो ही दिन पहले वह जेल से छूट-कर आये थे। वह उस तरफ गये जहाँ परलोक-गत सुजाई और सेलवनी (ये सत्याग्रह-युद्ध मे गोली से शहीद हुए थे) की विधवाएँ बैठी थी। गाँधीजी को देख उन्होने आँखो मे आँसू भरकर उनके चरणो पर सिर रख दिया। गाँधीजी ने बडी कठिनाई से सिर हटाया और एक विधवा बहन के कन्धे पर हाथ रखकर एक टक उसकी ओर देखने लगे। विधवा की आँखे भरी हुई थी और गाँधीजी के हृदय मे भी व्यथा-राशि उमड रही थी। गाँधीजी को ऐसा मालूम हो रहा था, मानो भारत-माता ही उस विधवा बहन के दीन वेश मे सामने खडी है। ये बहने तमिल थी। अत उन्होने एक तमिल दुभाषिये को बुलाकर उसके द्वारा इन बहनो से कहा—

"माता तुम चुप रहो, रोओ मत। तुम्हारा रोना सुनकर मुझसे रहा नही जाता। तुम्हारा पति अत्याचारियो के हाथ मारा गया है। आज वह भगवान् की गोद मे बैठा हुआ है। उसने देश के लिए अपना शरीर दिया। वह अमर हो गया। यदि वह किसी रोग से मरा होता तो मै आज इस तरह तुम्हारे सामने खडा न होता। ससार को उसकी मृत्यु की खबर भी न होती। यह उसके लिए बडे भाग्य की बात है कि उसको इस अच्छे काम में मौत मिली। जिस दिन तुम्हारी तरह हजारो माताएँ और बहने विधवा बनेगी उसी दिन भारत-माता का उद्धार होगा। मैं

अपना सिर भारत-माता के चरणो पर चढा चुका हूँ। अगर जुल्मी सर-कार उसे धड से अलग कर दे और तुम्हारी तरह मेरी स्त्री भी एक निराश्रित विधवा हो जाय, तो मै समझूँगा कि मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। तभी मेरी अन्तरात्मा को शान्ति मिलेगी। माता, तुम दु खित न हो। मै अपना सिर तुम्हारी गोद मे देता हूँ। तुम्हारे विधवा होने का कारण मै ही हूँ। मुझे क्षमा करो और शान्त हो।"

इतना कहने के बाद गाधीजी ने एक बार फिर प्रणाम किया और वहाँ से चले गये। जो लोग वहा मौजूद थे, गाँधीजी की ये स्नेहपूर्ण बाते सुनकर रोने लगे। बहुतो से दिल हिला देनेवाली यह घटना देखी न गई तो वहाँ से चले गये। हमारे अन्य नेताओ मे इतना स्नेह कहाँ दिखाई पडता है ?

× × × ×

अभय

शरीर के सम्बन्ध मे ज़रा भी भय करना गाँधीजी को नास्तिकता प्रतीत होती है। जिसने अपना जीवन जन-सेवा में अर्पित कर दिया है और जो प्रभु की शरण मे जा चुका उसे मृत्यु का भय क्या ? वह मरे तो, जिये तो, उसका शरीर प्रभु का सदेश-वाहक है। वह तो हथेली पर सिर लेकर घूमता है। गाँधीजी की निर्भयता और अहिंसा का एक उदाहरण लीजिए —

गाधीजी के एक मित्र एव सहयोगी श्री केलेनबैक थे। यह जर्मन थे और दक्षिण-अफ्रीका मे एक प्रसिद्ध इजीनियर थे। गाँधीजी के साथ रह-कर उनका जीवन भी बिलकुल बदल गया था, वह भी साधु प्रकृति के हो गये थे। वह प्राय गाँधीजी के साथ रहते थे। जब उन्हे मालूम हुआ कि कुछ लोग गाँधीजी को मारने की ताक मे है तो वह सदा परछाई की तरह गाँधीजी के साथ रहने लगे। कुछ दिन बाद गाँधीजी को उनके

ऊपर सन्देह हुआ और अनुमान से उन्होने सब बाते जान ली। एक दिन उन्होने केलेनबैक की जेब मे हाथ डाला तो उसमे एक तमंचा मिला। उन्होने कडकर पूछा—"है ! क्या महात्मा टाल्सटाय के शिष्य भी शस्त्र साथ रखते है ?"

केलेनबैक ने धीरे से कहा—"जरूरत होने पर रखना ही पडता है।"

गाँधीजी ने और कडककर पूछा—"तमचा साथ रखने की कौन-सी आवश्यकता आ पडी है ?"

केलेनबैक ने कुछ घबराहट के साथ उत्तर दिया—"मुझे समाचार मिला है कि कुछ लोग आप पर आक्रमण करनेवाले है, इसी से मै तमंचा रखता हूँ।"

गाँधीजी ने कहा—"मेरी रक्षा की जिम्मेदारी तुमने अपने ऊपर ले रखी है ! क्या इस तमचे से तुम मेरी रक्षा करोगे ?"

केलेनबैक चुप रहे। गाँधीजी बोले—"और यदि इस तमचे से ही मेरी रक्षा होती हो तो मै अभी इसी से अपने शरीर के टुकडे कर डालता हूँ। तब तुम क्या करोगे ? मेरे मित्र, यदि तुम मेरे सच्चे स्नेही होते तो इस शरीर पर तुम्हारा इतना मोह होना सम्भव ही नही था। स्नेह केवल शरीर की ही रक्षा नही करता, आत्मा की भी रक्षा करता है। शरीर आज नही तो कल अवश्य नष्ट हो जायगा। स्नेह के लिए क्षण-भगुर वस्तु पर आसक्ति रखना अनुचित है। उसे अमरत्व की अभिलाषा रखनी चाहिए। यदि तुम मेरे सच्चे मित्र हो तो तमचे से मेरी रक्षा करने का विचार छोडकर इसे फेक दो।"

उस दिन से केलेनबैक ने तमचे को छुआ तक नही।

सत्याग्रह की अन्तिम लडाई मे गाँधीजी डरबन से जोहान्सबर्ग जाने वाले थे। तब यह बात मालूम हुई कि कुछ लोगो ने मार्ग मे उनकी

हत्या करने का षड्यन्त्र रचा है। एक सत्याग्रही ने सब बातें गाँधीजी से कही और प्रार्थना की कि जोहान्सबर्ग न होकर बाहर-बाहर नेटाल जायँ।

और उदाहरण

इस पर गाँधीजी ने कहा—"यदि मरने के भय से जोहान्सबर्ग न जाऊँ तो मैं सचमुच ही जीवित रहने के योग्य नही। मैं वहाँ जाऊँ और मारनेवालो की योजना सफल हो जाय तो मुझे सन्तोष होगा। शायद ईश्वर की यही इच्छा हो कि मैं अपना काम पूरा कर चुका और अब बुला लिया जाऊँ।"

केलेनबैक इस अवसर पर जोहान्सबर्ग में ही थे। उन्होने यह बात सुनी तो उस आदमी से, जिसने उन्हे यह बात सुनाई थी, कहा—"हम लोगो की अपेक्षा गाँधीजी ज्यादा अच्छी तरह अपनी रक्षा करने मे समर्थ है। और उनसे भी ज्यादा ईश्वर उनकी रक्षा करता है।"

गाँधीजी जोहान्सबर्ग गये। वहाँ लोगो ने उनका खूब स्वागत किया। १९०८ मे जिन चार पठानो ने गाँधीजी पर आक्रमण किया था उनमें से एक—जिसका नाम मीर था—वहाँ उपस्थित था। उसे जब इस षड्यंत्र की खबर मिली तो उसने गाँधीजी की रक्षा की ज़िम्मेदारी ली और उनके पहुँचते ही उनके चरणो पर लोटने लगा।

अभय और आत्म-बल की यह महिमा है! इनसे क्या नही होसकता?

× × × ×

एक बार गाधीजी के सबसे छोटे लड़के देवदास ने आठ दिन तक अलोना भोजन करने की आज्ञा मागी। आज्ञा मिल गई। इसके दो-तीन दिन बाद की बात है, कस्तूरबा सबको नियमानुसार भोजन परस रही थी। बढ़िया नमकीन तरकारी देखकर देवदास के मुँह मे पानी भर आया। पर व्रत-भग होगा इसलिए

बाल-हठ पर विजय

तरकारी उसे नही दी गई। तब उसने कोई अलोनी चीज खाने को नही ली और रोने लगा। गाँधीजी ने भी भोजन नही किया और प्रतिज्ञा की कि 'जब देवदास मुझसे कहेगा कि पिताजी, मै भोजन करता हूँ, आप भी कीजिए, तभी मै करूँगा।' बात अड गई। एक तरफ बाल-हठ, दूसरी तरफ आत्म-बल। उस समय संगी-साथियो ने बहुत समझाया पर देवदास अड गया। पर सध्या होते-होते उसे अपने कार्य के अनौचित्य का बोध हुआ। वह पिता के पास पहुँचा और नम्रतापूर्वक बोला—"पिताजी, मै अलोना ही भोजन करता हूँ, आप भी कीजिए।" तब पिता-पुत्र ने साथ बैठ भोजन किया।

व्रत और प्रतिज्ञा का निर्वाह कठिनाइयो एव प्रलोभनो की परवा न करके करना ही चाहिए, यह शिक्षा इस प्रसग से मिलती है।

परिश्रम और सेवा

जीवन-कथा मे इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि १९१० ई० मे ट्रासवाल-सरकार ने वहाँ के बहुत-से भारतीय सत्याग्रहियो को निर्वासित किया। वे भारत लाकर छोड दिये गये। इनका जन्म अफ्रीका मे ही हुआ था और भारत मे उनका सगा-सम्बन्धी कोई न था। इसलिए उन्हे बडा कष्ट भोगना पडा। १०४,६० और १२६ के तीन दल भारत लाकर छोडे गये। पहले दो मद्रास और तीसरा बम्बई मे। पीछे आन्दोलन करने पर इस प्रकार का निर्वासन बन्द हुआ। इनके स्त्री-बच्चे दक्षिण-अफ्रीका मे ही थे। पर गाँधीजी पर उनका ऐसा विश्वास था कि उनके सम्बन्ध मे वे बिलकुल निश्चिन्त थे। गाधीजी ने भी उनके स्त्री-बच्चो की सेवा अद्भुत लगन से की। ये लोग 'टालस्टाय फार्म' मे रहते थे। उस समय गाधीजी का परिश्रम और उनकी सेवा देखने योग्य थी। बडे तडके उठते, उठकर विद्यार्थियो को पढाते थे। फिर अपने ही हाथो स्त्रियो के पाखाने साफ

करते थे। इसके बाद वह स्त्रियो के स्थान पर जाकर पूछते—"क्या आप लोगो के पास मैले कपडे है ?" "कृपया औरो के मैले कपडे भी ला दीजिए मै उन्हे धो लाऊँ।" सब मैले कपडे उनके हवाले किये जाते। वह पास के नाले से उन्हे धो लाते और सुखाकर सबके कपडे दे देते। वह इन लोगो का इतना ध्यान रखते कि अपने निर्वासित पतियो एव पिताओ की उनको याद भी बहुत कम आती थी।

हिन्दी-प्रेम

राष्ट्र भाषा के प्रचार और समुत्थान मे गाधीजी का जितना हाथ है उतना और किसी का नही। उनके हिन्दी व्याख्यानो को सुनने के लिए सैकडो ने हिन्दी सीखी। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दो-दो बार वह अध्यक्ष बन चुके है।

स्व० लोकमान्य तिलक, आरम्भ मे, हिन्दी के प्रेमी न थे, न उनकी तार्किक युक्तियो के आगे कोई उनसे हिन्दी के लिए कहने की हिम्मत करता था। एक बार की बात है कि कलकत्ता की एक बडी सभा मे देश के अनेक नेता उपस्थित थे। गाधीजी भी मौजूद थे। लोकमान्य का व्याख्यान होनेवाला था। लोकमान्य उठे और उन्होने अग्रेजी मे व्याख्यान दिया। व्याख्यान समाप्त होने पर गॉधीजी उठे और श्रोताओ से बोले—"आप लोगो मे से जिस-जिसने लोकमान्य का व्याख्यान समझा हो, हाथ उठावे।" बहुत थोडे आदमियो ने हाथ उठाया। गॉधीजी ने फिर कहा—"अब वे लोग हाथ उठावे जिन्होने व्याख्यान नही समझा।" बहुत लोगो ने हाथ उठाया। तब गॉधीजी ने हाथ जोडकर लोकमान्य से कहा—"इसीलिए हिन्दी सीखने की आवश्यकता है। यदि लोकमान्य आज हिन्दी मे बोले होते तो हमारे अधिक भाई उनके व्याख्यान का लाभ उठाने से बचित न रह जाते। अग्रेज को समझाने के लिए हमे अपनी मातृभाषा छोड़कर अग्रेज़ी सीखने की ज़रूरत नही। अगर उसे हमारी बात समझने

की गरज होगी तो वह खुद हिन्दी पढेगा या दुभाषिया रक्खेगा। लोग कहते है कि लोकमान्य पर इस बात का इतना असर पडा कि उन्होने उसी समय प्रतिज्ञा की कि "मै दो महीने मे हिन्दी सीख लूँगा।"

फीनिक्स मे रहते समय एक दिन सवेरे ९ बजे एक तार आया। डाक (जिसमे तार भी था) रावजी भाई नाम के एक सज्जन के हाथ मे थी। वह उसे गाँधीजी के पास ले जा रहे थे कि रास्ते मे गाँधीजी के द्वितीय पुत्र मणिलाल मिले।

आत्म-संयम

उन्होने तार हाथ मे ले लिया। कुछ ही दिन पहले गाधीजी के बडे भाई की हालत खराब होने का समाचार मिला था। इसलिए मणिलाल तार का समाचार जानने को उत्सुक थे। उन्होने तार खोला और पढकर बन्द करके उसी तरह चुपचाप रख दिया। उसमे उनके चचा की मृत्यु का ही समाचार था। सारी डाक महात्माजी के सामने आई। सब लोग समझते थे कि तार पढ गाँधीजी पाठशाला के बाहर आ जायँगे पर वैसा कुछ न हुआ। दिन भर सब काम, रोज की तरह ही, शान्ति-पूर्वक हुए। शाम की प्रार्थना समाप्त होने पर उनके चेहरे पर दु ख के चिन्ह दिखाई पडे। उस समय उन्होने लोगो को यह समाचार बताया और कहा—"नित्य के कामो मे रुकावट न पडे, इसलिए मैंने हृदय का वेग दवाकर सब काम यथाक्रम होने दिया। निश्चत कार्य-क्रम मे गडवड करने का मुझे क्या अधिकार है ? अतएव मैने निश्चित किया कि मुझे अपना मन इस प्रकार स्थिर रखना चाहिए जिससे किसी को ज़रा भी सन्देह न हो।"

कैसा आत्म-सयम है ? और फिर यह घटना लगभग, २६ वर्ष की पुरानी है। तव से तो वह इस पथ पर वहुत आगे वढे गये है। दिन-दिन स्थितप्रज्ञ की अवस्था के निकट पहुँचते जा रहे है।

× × ×

गाँधीजी जहाँ कर्तव्य मे अत्यन्त निष्ठुर है वहा अपने सहकारियो के प्रति उनका स्नेह भी अद्भुत ही होता है। उनके आश्रमवासियो को उनके वात्सल्य का अनुभव तो सदा ही होता रहा है।

अद्भुत वात्सल्य

उनकी उपस्थिति से रोगी को ऐसा मालूम होता है मानो माँ की गोद मे बैठे है। उनमे स्त्रियोचित गुणो की प्रधानता है इसीलिए हिन्दू नारी की नाई जहाँ उनमे असीम त्याग, कष्ट-सहन और कर्तव्य-पालन का उदाहरण मिलता है वहाँ उसके स्नेह से भी उनका हृदय भरा है। एक आश्रमवासी ने १९२२ की एक घटना का ज़िक्र किया है जिससे उनके अद्भुत वात्सल्य का परिचय मिलता है—

"बापूजी के गिरफ्तार होने के कोई चार मास पहले एक आश्रवासी को खेत मे झोपडी बनाकर एकान्तवास करने की इच्छा हुई। बापूजी ने उसे समझाया कि ऐसा न करो, पर उसने न माना। अन्त को उन्होने इजाजत दे दी। पर शर्त रखी—मै जब चाहूँ तब मिल सकूँ। उस भाई को एकान्त-सेवन की इच्छा इतनी तीव्र हो गई थी कि अत्यन्त सकोच के साथ उसने इसे स्वीकार किया। उसने यह भी सोचा कि यह ठहरे बहु-धधी आदमी, कौन बार-बार मिलने आवेगे ? पर जबतक उस भाई ने उनसे मिलने की छुट्टी रखी तबतक कभी ऐसा नही हुआ कि बापूजी आश्रम मे रहे हो और उससे मिलने न गये हो। चाहे अपना मौन दिन हो, उपवास-दिवस हो, कितने ही लोग दूर से आकर बैठे हो, सब बातो को एक ओर रखकर लकडी के सहारे अपने इस पुत्र से मिलने के लिए चल देते। एक बार अनेक कार्यो मे लगे रहने के कारण ११–१२ बजे तक वह न जा पाये। न तो स्नान ही कर पाये और न भोजन ही। फिर भी पहले वहाँ जाकर अपने उस पुत्र से मिले और आकर बाद मे भोजन किया। जब मिलकर आते तब उन्हे ऐसा आनन्द मालूम होता

मानो कोई महान् कार्य सफल हुआ हो। प्रार्थना के स्थान पर इस भाई के विषय मे सब आश्रमवासियो को समाचार सुनाते। "उसे नीद अच्छी तरह पडी थी, उसका चित्त शान्त था।" ऐसी-ऐसी बाते कहकर एक पुत्र—दीवानी माता के वात्सल्य का परिचय देते। यात्रा से लौटते ही पहले उसके समाचार पूछते। जेल मे जो लोग उनसे मिलने के लिए जाते थे उनसे उसकी खबर सबसे पहले पूछना वह नही भूलते। महासभा की धूम-धाम के समय आप 'खादी नगर' मे रहते थे और उस भाई की इच्छानुसार मिलना बद रखा था। तो भी वह उसके हाल-चाल पूछना भूलते न थे। बारडोली मे सविनय-भग की शुरूआत करने के लिए गये थे; अनेक महत्वपूर्ण कार्यो मे जी लगा हुआ था, महासभा-समिति की बैठक की गडबडी थी। उन्हे खबर लगी कि उस आश्रम-वासी की भाभी कही नजदीक ही है। बस तुरन्त उनके देवर की खबर देने को उत्सुक हो गये। मानो सारा रचनात्मक कार्यक्रम उस भाई के आरोग्य और मानसिक शान्ति पर ही अवलम्बित हो, इस तरह सब बातो को अलग रखकर उसकी भाभी को बुलाया और समाचार सुनाने लगे।"[1]

प्रलोभन-'प्रूफ'

जब गाँधी-इर्विन समझौते की बाते चल रही थी और गाँधीजी तथा अन्य नेता दिल्ली मे डा० असारी के यहाँ ठहरे हुए थे तब एक दिन एक अमेरिकन पत्रकार ने गाधीजी से पूछा—"क्या आप निकट भविष्य मे अमेरिका जायँगे ?"

गाधीजी ने कहा—"तबतक नही जबतक इससे मेरे देश का कोई विशेष हित न हो।"

पत्रकार फिर अपने अमेरिकनशाही ढग पर बोला—"यदि दस लाख डालर (लगभग तीस लाख रुपये) की सहायता मिले तो भी नही ?"

१. 'हिन्दी नवजीवन' (जयन्ति-अंक) से।

गाधीजी ने विना उत्तेजना के शांति-पूर्वक उत्तर दिया—"नहीं ।"

यह सुनकर उस अमेरिकन की आँखे कपार पर चढ़ गई। बेचारे को क्या मालूम था कि जिस दुवले-पतले व्यक्ति से वह बात कर रहा है उसके लिए, उसकी आध्यात्मिक साधना के सामने, तीस लाख रुपये क्या समस्त पृथ्वी का वैभव तुच्छ है।

ये तो थोडे से प्रसग है, वैसे उनके जीवन का प्रत्येक दिवस स्मरणीय प्रसगो से भरा हुआ है। इन प्रसगो मे उनका रूप रह-रहकर हमारे सामने प्रकाशित हो उठता है।

जीवन-तालिका

१८६९	२ अक्तूबर	गाधीजी का जन्म(पोरवन्दर)में। प्रारभिक शिक्षा घरपर तथा एक मामूली पाठशाला मे हुई।
१८७६		पिता एव परिवार के साथ राजकोट आये। वहाँ एक वर्नाक्यूलर स्कूल मे भरती।
१८७९	...	काठियावाड हाईस्कूल में प्रवेश।
१८८३	..	विवाह।
१८८५		पिता का शरीरान्त।
१८८६		मैट्रिक परीक्षा मे पास हुए।
१८८७		भावनगर के श्यामलदास कालेज मे प्रवेश।
१८८८	४ सितम्बर	वैरिस्टरी की शिक्षा के लिए इग्लैण्ड-यात्रा।
१८९१	१० जून	बैरिस्टरी की परीक्षा पास की।
	१२ जून	वैरिस्टर होकर भारत लौटे।
१८९३	अप्रैल	दक्षिण-अफ्रिका की यात्रा।
१८९४	मई	'नेटाल इडियन कांग्रेस' की स्थापना।
१८९६	..	भारत लौटे।
	.	फिर दक्षिण-अफ्रिका की यात्रा।
१८९७-९९	...	अग्रेज-बोअर युद्ध, उसमे सेवा-शुश्रूषा।
१९०१	...	भारत-आगमन।
१९०२	...	दक्षिण-अफ्रिका को रवाना हुए।
	...	श्री चेम्बरलेन को अर्जी (मेमोरियल) दी।

१९०३	..	'ट्रासवाल ब्रिटिश इण्डियन असोसिएशन' स्थापित किया ।
	...	'इण्डियन ओपीनियन' निकाला ।
१९०४	...	जोहान्सवर्ग मे प्लेग फैला, उसमें वड़ी सेवा की।
१९०५	२२ नवम्वर	लार्ड सेलवर्न के पास डेपुटेशन ले गये ।
१९०६	...	नेटाल मे 'जुलू'—विद्रोह के समय घायलो को ढोने और शुश्रूपा का काम किया ।
१९०७	१ अगस्त	'एण्टी एशियाटिक ला' के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध' आन्दोलन करने की प्रतिज्ञा ली ।
१९०७	२६ दिसम्वर	प्रवास कानून (एमीग्रेशन ऐक्ट) पर सम्राट् की स्वीकृति ।
	...	जोहान्सवर्ग मे एमीग्रेशन कानून के विरुद्ध सभा की और भापण दिया । गिरफ्तारी ।
१९०८	फरवरी	जेल मे जेनरल स्मट्स से समझौता । रिहाई, स्वेच्छा-पूर्वक परवाने लेने का समर्थन । पठानो द्वारा पीटे गये ।
	...	लन्दन गये ।
१९१२	...	गोखले को दक्षिण-अफ्रीका वुलाया ।
१९१३	सितम्वर	३ पौंड का टैक्स, सत्याग्रह-आन्दोलन का पुनरारभ ।
	...	स्मट्स-गाधी समझौता ।
१९१४	जनवरी	दक्षिण-अफ्रीका की सरकार से सन्धि ।
	३० जून	सत्याग्रह का अन्त ।
	जुलाई	'इण्डियन रिलीफ ऐक्ट' पास हुआ ।

	६ अगस्त	गोखले से मिलने लन्दन पहुँचे। वहाँ महायुद्ध मे ब्रिटेन की सहायतार्थ 'भारतीय स्वयसेवक दल' का सगठन किया।
१९१५	जनवरी	भारत लौटे। सरकार ने 'कैसरे हिन्द' पदक प्रदान किया।
	२५ मई	अहमदाबाद (कोचरब) मे सत्याग्रह-आश्रम स्थापित किया।
१९१६	४ फरवरी	हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय व्याख्यान। उसमे उपस्थित राजाओ को उनकी वेश-भूषा और विलासिता के लिए फटकारा।
१९१७	अप्रैल	चम्पारन मे गिरफ्तारी। काँग्रेस-लीग योजना का समर्थन।
	१७ सितम्बर	'वम्बे को-आपरेटिव कान्फ्रेन्स' की अध्यक्षता।
	३ नवम्बर	गुजरात राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता।
१९१८		अहमदाबाद मिल मजूरो की हडताल, उस सम्वन्ध मे उपवास और उसका सफल अन्त।
	अप्रैल	दिल्ली युद्ध-सम्मेलन मे उपस्थिति।
१९१९	फरवरी	रौलट ऐक्ट जारी हुआ।
	२८ फरवरी	रौलट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह की प्रतिज्ञा।
	१० अप्रैल	दिल्ली जाते हुए गिरफ्तारी। वम्बई ले जाकर छोड दिये गये।
	१८ अप्रैल	सत्याग्रह स्थगित कर दिया। उपवास।
१९१८-१९		खिलाफत और पजाब के अन्यायो के विरुद्ध आन्दोलन।
१९१९	नवम्बर	रावर्टसन कमीशन (दक्षिण-अफ्रीका)।

१९२०	१४ जून	लार्ड चेम्सफर्ड (वायसराय) को पत्र लिखा।
	१ अगस्त	'कैसरे हिन्द' मेडल लौटा दिया। असहयोग का आरम्भ।
	सितम्बर	कलकत्ता मे कॉग्रेस का विशेष अधिवेशन।
	दिसम्बर	नागपुर कॉंग्रेस। असहयोग का कार्यक्रम पास हुआ।
१९२१	फरवरी	ड्यूक ऑव् कनाट के नाम खुली चिट्ठी।
	मई	नये वायसराय लार्ड रीडिंग से मुलाकात।
	सितम्बर	अली-बन्धुओ की गिरफ्तारी।
	नवम्बर	'प्रिंस ऑव् वेल्स' का बम्बई मे आगमन।
	दिसम्बर	लार्ड रीडिंग से मालवीय-डेपूटेशन मिला।
१९२२	१४ जनवरी	बम्बई में नेताओ का सम्मेलन।
	जनवरी	लार्ड रीडिंग को चुनौती (अल्टिमेटम)।
	१४ फरवरी	चौरीचौरा-काण्ड।
	१० मार्च	अहमदाबाद मे (गाधीजी की) गिरफ्तारी।
	१८ मार्च	६ वर्ष की सजा।
१९२४	फरवरी	जेल मे मुक्ति।
	१७ सितम्बर	दिल्ली मे २१ दिन का उपवास। दिल्ली सम्मेलन
	दिसम्बर	बेलगाँव-कॉंग्रेस की अध्यक्षता।
१९२७	दिसम्बर	मद्रास कॉंग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता को लक्ष्य बनाया।
१९२८	दिसम्बर	कलकत्ता कॉग्रेस मे सरकार को राष्ट्रीय माँग स्वीकार करने के लिए एक वर्ष का समय दिया गया।

१९२९

मार्च	कलकत्ता मे कपडो की होली। उस सम्बन्ध मे गाधीजी पर जुर्माना।
मई	ब्रिटेन मे पार्लमेण्ट का चुनाव। मजूर दल की विजय।
३१ अक्तूबर	वायसराय की घोषणा।
•	नेताओ की घोषणा।
२३ दिसम्बर	वायसराय से मुलाकात।
३१ दिसम्बर	लाहौर कॉग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया।

१९३०

२६ जनवरी	सारे देश मे स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया।
१५ फरवरी	भारतीय कॉग्रेस कमिटी ने गाधीजी को डिक्टेटर नियत किया और सत्याग्रह-आन्दोलन के सम्बन्ध मे उन्हे सर्वाधिकार दिये।
४ मार्च	लार्ड इरविन के नाम पत्र।
१२ मार्च	दाँडी-यात्रा।
६ अप्रैल	दाँडी मे नमक-कानून भग किया।
१७ अप्रैल	वायसराय ने प्रेस आर्डिनेन्स जारी किया।
२५ अप्रैल	श्री विट्ठलभाई पटेल ने असेम्बली की अध्यक्षता से इस्तीफा दिया।
५ मई	गाधीजी की गिरफ्तारी। ८२७ के रेगूलेशन २५ के अनुसार यरवदा जेल मे नजरबन्द।
१६ मई	कॉग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक।
२० मई	यरवदा जेल मे श्री स्लोकाम्ब की गाँधीजी से मुलाकात।
२१ मई	धरासणा पर धावा।

२३ मई श्रीमती सरोजिनी नायडू की गिरफ्तारी और सज़ा।

२४ मई वडाला की नमक की क्यारियो पर सार्वजनिक धावा।

२७ मई मालवीयजी की गिरफ्तारी और रिहाई।

१० जून साइमन-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

२० जून स्लोकाम्ब की मोतीलालजी से मुलाकात।

३० जून मोतीलालजी की गिरफ्तारी और सज़ा।

४ जुलाई मालवीयजी भारतीय कॉंग्रेस-कमेटी के सदस्य नामजद हुए।

२० जुलाई जयकर-सप्रू और वायसराय मे समझौते की बातचीत का आरभ।

२३ जुलाई जयकर-सप्रू जेल मे गाधीजी से मिले।

३१ जुलाई वायसराय ने मोतीलालजी एव जवाहरलालजी को जेल मे गाधीजी से मिलकर सुलह के बारे मे सलाह-मशविरा करने की आज्ञा दी।

३ अगस्त बम्बई मे वल्लभभाई और मालवीयजी की गिरफ्तारी।

७ अगस्त मौ० अबुलकलाम आजाद स्थानापन्न कॉंग्रेस-अध्यक्ष हुए।

९ अगस्त मालवीयजी की रिहाई।

१३ अगस्त यरवदा मे जयकर-सप्रू की उपस्थिति मे नेहरू-द्वय की गाधीजी और सरोजिनी देवी से मुलाकात।

२१ अगस्त मौलाना आज़ाद की गिरफ्तारी और सज़ा।

२६ अगस्त कॉंग्रेस कार्य-कारिणी गैर-कानूनी घोषित की गई।

१९३०

२७ अगस्त गाधीजी के प्रस्तावो को लेकर जयकर-सप्रू वायसराय (लार्ड इर्विन) से मिले।

२८ अगस्त काग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक। मालवीयजी, विट्ठल भाई और डा० अन्सारी की गिरफ्तारी।

५ सितम्बर समझौते की वातचीत भग। पत्र-व्यवहार प्रकाशित।

१९३१

२५ जनवरी वायसराय की घोषणा।

२६ जनवरी घोषणा के अनुसार कार्य-कारिणी के सदस्य जेलो से छोड दिये गये। कॉंग्रेस संस्थाओ को गैर-कानूनी करार देने की आज्ञा हटाली गई।

१६ फरवरी से ४ मार्च तक गाधीजी और वायसराय के बीच समझौते की वाते।

५ मार्च भारत-सरकार और कॉंग्रेस के बीच समझौता। सत्याग्रह आन्दोलन बन्द। आर्डिनेन्स उठा लिये गये और कैदी छोड़ दिये गये।

२८ मार्च करॉची मे काग्रेस का अधिवेशन।

२९ अगस्त गोलमेज-सम्मेलन मे शामिल होने के लिए गाधीजी की इग्लैण्ड-यात्रा।

१२ सितम्बर लँदन पहुँचे।

५ दिसम्बर लदन से फ्रास के लिए प्रस्थान।

६ दिसम्बर रोम्याँरोलाँ से मुलाकात।

६ से ११ तक रोम्याँरोलाँ के साथ रहे।

१३ दिसम्बर मुसोलिनी से मुलाकात।

१४ दिसम्बर ब्रिंडसी से बम्बई के लिए प्रस्थान।

२८ दिसम्बर बम्बई पहुँचे।

१९३२

२८ दिसम्बर वायसराय लार्ड वेलिंगटन से तार-द्वारा पत्र-व्यवहार।

१९३१ से ४ ज १९३२ तक वायसराय का रूखा व्यवहार। कॉंग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक। सत्याग्रह का आरम्भ।

११ मार्च	सर सैमुएल होर को, आवश्यकता होने पर आमरण उपवास-द्वारा अछूतो का जातिगत प्रतिनिधित्व मिटाने के सम्बन्ध मे पत्र लिखा ।
अगस्त	प्रधान मन्त्री-द्वारा जातिगत प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी निर्णय की घोषणा ।
१८ अगस्त	प्रधान मन्त्री को उपवास की सूचना ।
२१ सितम्बर	आमरण उपवास का आरम्भ ।
२६ सितम्बर	पूना का समझौता और सरकार द्वारा उसकी स्वीकृति ।
अक्तूबर	भारतीय अस्पृश्यता निवारण सघ (बाद मे हरिजन सेवक-सघ) का सगठन ।
१९३३	
८ मई	२१ दिन के, किसी शर्त्त पर भग न होनेवाले, उपवास का आरम्भ ।
९ मई	गाधीजी बिना शर्त्त छोड़ दिये गये । स्थानापन्न राष्ट्रपति श्री अणे द्वारा छ सप्ताह के लिए सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित ।
१७ जून	फिर छ सप्ताह—३१ जुलाई तक के लिए आन्दोलन स्थगित ।
१२-१३ जुलाई	पूना मे नेता-सम्मेलन ।
१५ जुलाई	गाधीजी, ने मिलकर, समझौते के सम्बन्ध मे वात करने के लिए वायसराय से तार-द्वारा आज्ञा माँगी ।
१७ जुलाई	वायसराय ने मिलने से इन्कार कर दिया ।
जुलाई	स्थानापन्न राष्ट्रपति श्री अणे की घोषणा ।
२५ जुलाई	सत्याग्रह-आश्रम तोडने का निश्चय किया गया ।
३० जुलाई	गाधीजी ने १६ स्त्री एव १६ पुरुष सदस्यो-द्वारा १ अगस्त को 'रास'—यात्रा का निश्चय किया ।

३१ जुलाई	रात को डेढ बजे गाधीजी, कस्तूर बा तथा अन्य सत्याग्रहियो की गिरफ्तारी।
४ अगस्त	यरवदा जेल से गाधीजी छोडे गये और उनको आज्ञा दी गई कि तुरन्त पूना शहर मे चले जाओ। गाधीजी ने आज्ञा अमान्य की, गिरफ्तार हुए। एक साल की सज्ञा। 'ए' क्लास मे रखे गये।
१६ अगस्त	सरकार ने पूर्ववत् हरिजन-आन्दोलन की सुविधा न दी। इससे उन्होने आमरण उपवास शुरू किया।
२० अगस्त	गाधीजी जेल से सासून अस्पताल ले जाये गये।
२१ अगस्त	कस्तूर बा जेल से बिना किसी शर्त्त रिहा करदी गई और गाँधीजी की सेवा-सुश्रूषा की आज्ञा उन्हे मिली।
२३ अगस्त	शाम को, ३-४५ पर, गाँधीजी बिना किसी शर्त्त छोड़ दिये गये।
१ नवम्बर	हरिजन-दौरे का आरभ।

१९३४

३१ मार्च	कौसिल-प्रवेश का निश्चय।
७ अप्रैल	सत्याग्रह स्थगित।
१७ सितम्बर	काग्रेस से अलग होने के सम्बन्ध मे लम्बे वक्तव्य का प्रकाशन।
२६-२७-२८ अक्तूबर	बम्बई काँग्रेस। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघ की स्थापना।

१९३५

२०-२४ अप्रैल	हिन्दी साहित्य-सम्मेलन इन्दौर का सभापतित्व।
२२ मई	कमला नेहरू से मिलने बम्बई प्रस्थान।

१९३६

दिल्ली मे विश्राम। लखनऊ काग्रेस मे खादी प्रदर्शिनी का उद्घाटन। सेगॉव मे रहने का निश्चय।

१९३७

फैजपुर कॉग्रेस प्रदर्शिनी का उद्घाटन। (मार्च) पद-ग्रहण की स्वीकृति। त्रावणकोर यात्रा, वायसराय से मुलाकात। कलकत्ता मे बगाल सरकार के साथ राजबन्दियो की रिहाई के बारे मे बातचीत। गवर्नर से मुलाकात। (नवम्बर) लौटने पर बीमार। (दिसम्बर) स्वास्थ्य-सुधार के लिए जुहू-निवास।

१९३८

जुहू से सेगाँव वापिस (८ जनवरी)। हरिपुरा काँग्रेस मे प्रदर्शिनी का उद्घाटन (फरवरी)। युक्तप्रान्त—बिहार मे वैधानिक सकट। सरकार को चेतावनी। बगाल के राजबन्दियो की रिहाई के लिए बगाल सरकार से बातचीत। वायसराय से मुलाकात। जिन्ना से भेट। सीमान्त की यात्रा। खरे-प्रकरण (जुलाई)। अनिश्चित काल के लिए मौन। दिल्ली मे कार्यसमिति की बैठक। सीमान्त यात्रा।

१९३९

बारडोली-निवास। राजकोट-प्रकरण और उस सम्बन्ध मे प्रायोपवेशन। वायसराय का आश्वासन। अनशन-भग। दिल्ली-आगमन। वायसराय से अनेक बार मुलाकात। देशी राज्यो के प्रश्न पर बातचीत। भारत के चीफ जस्टिस सर मारिस गेयर द्वारा गाधीजी के अनुकूल राजकोट का निर्णय। राजकोट-प्रस्थान।

: २ :

मोतीलाल नेहरू

['त्यागमूर्ति' : 'राजपुरुष']

जन्म	मृत्यु
६ मई १८६१ ई०	६ फरवरी १९३१ ई०

: त्यागमूर्ति :

"The Patriot who gave his all to India.'

—St Nihal Sinh.

"इस देशभक्त ने अपना सर्वस्व भारत को अर्पण कर दिया।

—सत निहालसिंह

: 'राजपुरुष' :

"....his features instinct with the spirit of combat, a figure emblematic of

Thrones, dominations, princeedoms, powers"

—Al-Kafir.

"उसकी आकृति पर सघर्ष की—मल्लता की छाप है,—एक पुरुष जो सिहासनो का, शासन का, राज्य का, शक्ति का प्रतीक है।"

—अल–काफिर

"*A taut, stockily built man, his mighty head set square and challenging, erect with just a suspicion of defiance, his sparse well-groomed white hair brushed close to the crown,*

With Atlantean shoulders fit to bear
The weight of mightiest monarchies

and a terrible jaw which has never yielded to any body and is not going, at this time of life, to yield to such a thing as old age, he stands like a block of granite foresquare to all the winds that blow—as if the sweet-scented manuscript of his youth would never close—his features instinct with the spirit of combat, a figure emblematic of—

Thrones, dominations, princedoms, virtues, powers[१]"

—AL-KAFIR

—एक—

तूफान और आंधी के वे दिन !

आँधी उठ चुकी थी। देश के हृदय मे लुटने का—मर मिटने का साहस भर रहा था। युवको की आँखें चमकती थी। आकाश मे घटाएँ घिरती जा रही थी। वादल—वरसनेवाले वादल गरजते और चिनगारियाँ चमकाते इकट्ठे हो रहे थे। जान पडता था, जल-थल एक करके छोड़ेगे। पुराने नेताओ के पैर उखड रहे थे, नये मैदान मे चमकने लगे थे। राज-

१ पं० मोतीलाल के जीवित रहते (१९२८ ई० में) लिखा गया था।

नीति के घने जगल से कुछ सूझता न था पर तूफान ने प्रत्येक वृक्ष को अस्थिर कर दिया था। बहुत दिनो से, बुजुर्ग की तरह उम्र का बोझ उठाये हुए वृक्ष आँधी से जीवन-मरण के बीच झोके खा रहे थे और आधी लानेवाली शक्तियो को कोस रहे थे कि बुढापे मे, शान्ति से पूर्व जीवन की स्मृतियो का गौरव-गान करते-करते, तथा नवागन्तुको को सावधानी एव गभीरता के उपदेश देते-देते, चार दिन की जिन्दगी शेष कर देने के वक्त, यह कहाँ का तूफान खडा हुआ !

इस आधी के बीच, अपने उथल-पुथल हो रहे जीवन मे, पहली बार मैने मोतीलालजी को काशी मे देखा। कई नेताओ को देख चुका था—लोकमान्य को भी, लालाजी को भी। ये भारतीय राजनीति को व्यक्तित्व से प्रकाशित करनेवाले नेता हुए है। पर इनको देखकर दूसरा ही भाव उपजा था। व्यक्तित्व का कोई तात्कालिक असर उनके दर्शन से नही होता था। पर मोतीलालजी तो, इस लिहाज से, बेजोड थे। उनके सिर को देखते हुए जान पडा, एक असाधारण पुरुष को देखा है !

—दो—

अद्भुत व्यक्तित्व

निस्सन्देह मोतीलालजी का व्यक्तित्व सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक नेताओ मे अद्वितीय था। उनका ग्रीक (यूनानी) काट का चेहरा, उनकी गठन, उनके दृढ जबडे, ज्योतिर्मयी आँखे और ऊँचे कंधो को देखते ही एक अपरिचित के मन पर भी उनके महत्व की छाप पडती थी,—जैसे वह साधारण से भिन्न हो। उनके चेहरे से खान्दानी बडप्पन—(Aristocratic greatness)—टपकता था। गाधी को न जाननेवाला मुसा-

फिर सिर्फ देखकर यह नही समझ सकता कि यह एक महापुरुष है—उनके ढाँचे मे कोई ऐसी बात नही पर मोतीलाल को साधारण आदमी, प्रथम दर्शन मे भी, न जानने पर भी, अपनी श्रेणी का समझ ही न सकता था। वह खुद भी अपने को सामान्य कभी न समझते थे। अनेक बार ऐसी घटनाएँ घटी हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व की महानता प्रकट होती है। १९२९ या ३० की बात है। श्री जेम्स वान शेक (James Van Shyke) नाम के एक अग्रेज पत्रकार भारत मे यात्रा के लिए आये थे। उन्होने पहले कभी मोतीलालजी को देखा न था। उन्होने मोतीलालजी के प्रथम दर्शन का जिक्र किया है जिससे उनके असाधारण व्यक्तित्व का पता चलता है—

"गरमी पड रही थी। रेलगाडी दौडी जा रही थी। कई स्टेशनो पर मैने भीड देखी। एक बार मेरी निगाह प्लेटफार्म पर खडे, मामूली पोशाक पहने, एक आदमी पर पडी। पता नही क्यो मुझे अनुभव हुआ कि यह तो असाधारण आदमी है—ऐसा आदमी जो जनता का होकर भी जनता से भिन्न हो। जैसे कोई युरोपीय हो। × × × पीछे मैने उस आदमी को 'भोजन के डब्बे'—'डाइनिग सैलून'—मे बडी बेतकल्लुफी से बैठे देखा। मामूली हिंदुस्तानी कपडा पहने इस बेतकल्लुफी के साथ 'डाइनिग कार' मे बैठनेवाला दुर्लभ आदमियो मे से एक मालूम हुआ। × × × अन्त मे मुझसे न रहा गया। मैने उसके पास जाकर पूछा—"क्षमा कीजिएगा, क्या मै इस सम्बन्ध में आपकी राय जान सकता हूँ कि जिन दगो के बारे मे हम विदेशो मे पढते है, उनका अन्त कब होगा ?" × × वह हँसा, ओठ दबाया। मुखपर अद्भुत दृढ़ता थी। बोला—"इनमे अधिकाश तो निर्माण किये जाते है।" × × × एक मिनट सोचकर मै बोला—"वही सही पर आपकी सम्मति मे इनका

रेखाएँ खीचनी शुरू कर दी थी। धनुषाकार भौहो के नीचे से दो काली आँखे चमक रही थी—जिनके पीछे मस्तिष्क की आग होगी। वे दयापूर्ण आँखे थी। वे दुनिया की ओर अत्यन्त सहिष्णुता-पूर्वक देखती थी। उनमे ससार के प्रति विनोद के भाव भी भरे थे। वे रसीली भी हो सकती थी और आवश्यकता होने पर असन्तोष से जल भी सकती थी। नाक से शक्ति और उच्च भावना का पता चलता था। × × × ओठ 'अरिस्टोक्रेट' के ओठ थे, पतले और भारतीय चित्रकला मे चित्रित धनुष की भाँति। × × ठुड्डी मे योद्धा के चिन्ह थे और अन्य अगो की ग्रीक—युनानी—पवित्रता से उसका पूर्ण सामञ्जस्य था।"

एक दूसरे लेखक ने लिखा था—

"जब-जब देश के भाग्य-निर्माता नेताओ को देखने का अवसर मुझे मिला है, तब-तब उन्हे देखकर मेरे मन में यह जिज्ञासा उठती रही है कि साधारण व्यक्तित्व मे इतनी महानता कैसे आ गई। मैंने अक्सर महात्माजी की ओर लोगो को उँगली उठाकर आश्चर्य एव कुतूहल के साथ पूछते देखा—सुना है—"यही महात्माजी है?" इसी प्रकार वल्लभ-भाई को देखकर किसान का भ्रम होने की सम्भावना सदा रहती है किन्तु बहुत-से ऐसे भी है जिनके विषय मे ऐसा नही होता। मोतीलालजी भी उन्ही मे से एक थे। बिना परिचय के उन्हे पहली बार देखने पर भी दर्शक पर यही प्रभाव पडता था कि उसने एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को देखा है।"

"उनकी दृढता-बोधक ठुड्डी, चौडा माथा, प्रकाशमान आँखे आदमी पर अग-रक्षको एव कीमती लाल कालीनो से अधिक प्रभाव डालती थी। उनका व्यक्तित्व ऐसा विजयशील (Overpowering) था कि अधिकाश व्यक्ति उनके साथ बैठकर अपने को हवाना सिगार की तरह अनुभव

करते थे। × × × उनके व्यक्तित्व के आगे बड़े-बड़े अपने को कमज़ोर पाते थे। केवल उनकी दृष्टि जवाब ('रिटार्ट') के समान थी। उनका जवाब ऐसा होता था मानों किसी ने बरछी घुसेड़ दी हो।"

"एक बार की बात है कि एक मूर्ख मनुष्य सभा में बीच-बीच में बोलकर विघ्न डालने की कोशिश करता था—कोशिश शब्द मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि उनके व्याख्यान में विघ्न डालने में कोई सफल न हो सकता था। पण्डितजी ने उनसे कुछ कहा नहीं। सिर्फ एक बार आँखें तरेर कर उसकी ओर देखा। आँखों ने काम कर दिया। अन्त तक फिर वह आदमी कुछ बोलने की हिम्मत न कर सका।"[1]

निस्सन्देह उनकी राजनीति उनके व्यक्तित्व में केन्द्रित थी। भारतीय राजनीति के क्षेत्र में उनका व्यक्तित्व अध्ययन की चीज थी। वह जिस वातावरण में पले थे वह राजसिक था इसलिए हुकूमत और अधिकार उनके लिए स्वाभाविक हो गये थे।

—तीन—

वह विलास एवं वैभव

एक ज़माना था जब उनके विलास एवं वैभव की कहानियाँ कही जाती थीं। विलास नाचता था; वैभव गाता था। कभी पार्टियाँ सज रही हैं; कभी गायन हो रहा है; मदिरा के प्याले इस तरह चल रहे हैं, मानो फ़ारसी कवि उमर ख़य्याम की भावना सिद्ध होकर पृथ्वी पर उतर आई हो। उस समय के 'इलाहाबाद के नवाब' का क्या पूछना था। विलास एवं वैभव का वह ज़माना, जो कहावत एवं दृष्टान्त के रूप में प्रचलित था, आज कहानी हो गया है!

१. श्री बी० डी० धनपाल—'लीडर' ९ फरवरी १९३१।

सन् १९१० में जब सन्त निहालसिंह पहली बार उनसे मिले थे तब वह वैभव की दोपहरी मे था। वह लिखते हैं—"उनके सुन्दर सुगठित मस्तक पर बाल किसी शौकीन एव चतुर नाई-द्वारा काटे और बडी होशयारी से सँवारे गये थे। उनकी पोशाक ऊपर से नीचे तक अग्रेज की भान्ति थी। उनको देखकर ऐसा मालूम होता था मानो अभी-अभी वाण्ड स्ट्रीट[1], लन्दन के किसी विख्यात दर्जीखाने से से निकलकर आ रहे हो। × × × भोजन के साथ मदिरा का प्रवाह जारी था। यद्यपि मै शुरू से ही मदिरा नही पीता पर उसकी विविधता को देखकर कहा जा सकता था कि (उन दिनो के) आनन्द-भवन का मद्य-भाण्डार यूरोप के प्रसिद्ध मदिरालयो से कही अच्छा था।"

उनके विलास-वैभव का क्या ठिकाना था। सर रास बिहारी घोष ने उनकी तरह लाखो कमाये। वह भारत के चोटी के वकीलो मे हुए है। मरते समय ४० लाख तो केवल सस्थाओ को ही दान कर गये पर इस सम्बन्ध मे वह भी मोतीलाल की बराबरी न कर सकते थे। एक बार की बात है कि मोतीलाल जी कलकत्ता आने और सर रास बिहारी का आतिथ्य ग्रहण करने वाले थे। सर रास बिहारी ने उनके लिए सब प्रकार की सुविधा कर रखी थी फिर भी उन्हे सकोच ही था। वह बोले—"मेरे मकान में मोतीलाल को वह आराम न मिलेगा।" इस पर जो लोग उपस्थित थे, मजाक समझकर अविश्वास की हँसी हँसने लगे। सर रास-बिहारी ने उत्तर दिया—"तुम लोग नही जानते कि मोतीलाल इलाहाबाद मे किस तरह रहते है, इसीलिए तुम हँस रहे हो!"

जिसने ऐसे राजसिक वैभव को तिनके के समान छोड दिया, उस

१. लन्दन का यह एक बड़ा ही मँहगा और फैशनेबुल मोहल्ला है जहां बडे-बडे दर्जीखाने है।

पुरुष की जीवन-कथा जानना हमारे लिए कर्तव्य-सा है। आइए, उधर, भी नज़र डाल ले।

—चार—

जीवन-कथा

वंश-परिचय

नेहरुओ के पूर्वज प० राजकौल बादशाह फर्रूखसियर के शिक्षक के रूप मे दिल्ली आये थे। उसी समय से इनका वश दिल्ली मे वस गया और अव भी कुछ अशो मे वहाँ है। कई पीढियो के वाद गगाधर जी हुए, वे वहुत दिनो तक दिल्ली के कोतवाल रहे। इनके तीन पुत्र हुए—नन्दलाल, वशीधर, मोतीलाल। फरवरी सन् १८६१ ई० मे जव मोतीलाल जी गर्भ मे थे, पिता का देहावसान हुआ। इनका जन्म ६ मई १८६१ ई० को दिल्ली मे हुआ इनके वडे भाई नदलाल जी ने वड़े प्रेम से इनका पालन किया।

शिक्षा

बारह वर्ष की उम्र तक इनकी शिक्षा इस्लामी मकतव मे हुई। इस काल मे इन्होने फारसी—अरबी अच्छी तरह सीख ली जिसकी छाप अन्त तक इनके जीवन पर रही। १८७३ ई० मे गवर्नमेण्ट हाई स्कूल कानपुर मे भरती हुए और १८७९ ई० मे प्रथम श्रेणी मे इण्ट्रेस परीक्षा पास की। उन दिनो कानपुर मे कोई कालेज न था अत प्रयाग आकर म्योर सेण्ट्रल कालेज मे भरती हुए। यह वड़े तीव्र बुद्धि के विद्यार्थी थे, विद्यार्थियो के नेता माने जाते थे। प्रिंसपल मि० हैरिसन इन्हे वहुत मानते थे; उन्होने शायद एक वार कहा भी था कि 'मि० नेहरू एक दिन अवश्य ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होगे।' यहाँ बी० ए० तक पढा पर वीमार पड़ जाने से वी० ए० की परीक्षा मे न बैठ सके। फिर वकालत पढने लगे और सिर्फ तीन महीने मे १८८२–

८३ की वकील हाई-कोर्ट की परीक्षा ससम्मान सर्वप्रथम पास की।

सन् १८८३ ई० (२२ साल की उम्र) में कानपुर में वकालत शुरू की। बहुत जल्द चल निकली। वहाँ के प्रमुख वकील प० पृथ्वीनाथ से इनका खूब हेल-मेल हो गया। उनकी सलाह से १८८६ ई० में हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने के विचार से प्रयाग आये। प्रयाग में इनके बड़े भाई नंदलाल जी पहले से ही वकालत कर रहे थे। उनके साथ यह भी करने लगे। पहले यह मीरगंज मुहल्ले में रहते थे, वहीं जवाहरलाल का जन्म हुआ पर बाद में लक्ष्मी की कृपा होने पर स्व० सर सुन्दरलाल के एलगिन रोड वाले वाले बँगले में चले चले गये। पीछे मुरादाबाद के राजा श्री परमानंद का बँगला खरीदा। यह बँगला पहले सर सैयद अहमद के पुत्र जस्टिस महमूद का था। वह भी इन्हें बच्चे की तरह मानते थे। यही बँगला आगे चलकर सुप्रसिद्ध 'आनन्द-भवन' (आज का 'स्वराज-भवन') हो गया।

वकालत

इनके प्रयाग आने के कुछ ही दिनों बाद ० नंदलाल जी का हैजे से देहान्त हो गया। मरते समय उन्होंने सारे कुटुम्ब का भार सौंपते हुए इनसे कहा—"मोतीलाल, यह खानदान तुमको सुपुर्द करता हूँ, इस बाग के तुम माली हो, इसको सजाना, इसको बढाना, इसकी रक्षा करना, इसके फूल अलग न होने पावें और इसके जान का शीराज़ा बिखरने न पावे।" प० मोतीलालजी ने इस थाती की खूब रक्षा की। एक-एक बच्चे पर वह जान देते थे।

देहान्त के समय नंदलाल जी के हाथ में बहुत-से मुकदमे थे। इन्होंने उनके मुकदमों को जीतकर उनके मुवक्किलों को भी अपना बना लिया। पहले-पहल इनकी प्रसिद्धि एक प्रयागवाल के मुकदमे में हुई, जिसपर ७ जुर्म लगाये गये थे। उन्होंने उसे सब से बरी करा दिया। जज ने स्वयं

फैसले में लिखा—"इस मुकदमे मे अभियुक्त को बचाने का सारा श्रेय पं० मोतीलाल जी को है। किसी भी अभियुक्त का, जिस पर ६–७ जुर्म लगाये गये हो, सभी जुर्मो से बरी हो जाना बडा कठिन है। इस अभियुक्त को बरी करना पं० मोतीलाल जी ऐसे वकील का ही काम है। नेहरू जी ने जिस विद्वत्ता और खोज के साथ अभियुक्त के पक्ष का समर्थन किया और उसकी पैरवी की वह सर्वथा प्रशसनीय है।" इसके बाद यह खूब चमके। अग्रेजी के प्रमुख पत्रो ने इनकी प्रशसा की और तात्कालिक चीफ जस्टिस सर जॉन एज की इनपर कृपा हो गई। जब सन् १८९६ ई० मे हाईकोर्ट के जजो को पहली बार वकीलो मे से एडवोकेट बनाने का अधिकार मिला तो जिन चार वकीलो को चुना गया उनमे उम्र के लिहाज से यह सब से छोटे थे। यह विजय पर विजय पाते गये और थोड़े ही दिनों मे इनकी गिनती सर्वोच्च वकीलो मे होने लगी। सन् १९२१ ई० तक यह वकील असोसिएशन के सभापति रहे। इसके बाद तो वकालत करनी ही छोड दी।

प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण लखनाराज का एक मामला बाद मे भी इन्हे लेना पड़ा जो प्रिवी कौंसिल तक गया और इन्होने अपने मुवक्किल को जिताया। असहयोग-आदोलन की समाप्ति के बाद चेम्बर प्रैक्टिस करने लगे और १९३० का सत्याग्रह-आदोलन आरभ होने तक करते रहे। सन् १९२८ ई० मे प्रसिद्ध 'सर्चलाइट' के मामले मे इनकी बहस का ढग देखकर अदालत और वकील विस्मित रह गये। सन् १९२९ ई० मे कायस्थ पाठशाला और इंदौर के सेठ सर हुकुमचंद के मुकदमो की पैरवी करने गये तो अदालत में भीड लगी रहती थी। इसके बाद महाराज दरभगा ने खास तौर पर आपको अपने मुकदमे मे वकील किया। उन्होने कॉंग्रेस कार्य-कारिणी की अनुमति से इस मुकदमे को लिया और इसकी

तीन-चौथाई आय कांग्रेस को दे दी। प्रयाग हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध वकील और भूतपूर्व जज श्री इकबाल अहमद ने कहा था—"माई लार्ड, बिना अतिशयोक्ति के मैं कह सकता हूँ कि अपने सारे जीवन मे मैंने उनसे बडा एडवोकेट और अद्‌भुत वकील नही देखा। वास्तव में वह वकील पेशे के जिन्न थे। उन्ही के समान व्यक्ति इस पेशे के सम्मान और पद की मर्यादा बढाते हैं।" इसी प्रकार उनकी मृत्यु के बाद, वकीलो के सामने बोलते हुए चीफ जस्टिस सर ग्रिमउड मियर्स ने कहा था—"आप में से बहुतो को इटावा के मुकदमे में उनकी अद्‌भुत पैरवी याद होगी जिसमे वह रानी किशोरी की तरफ से वकील थे। सारे संसार का कोई वकील उस मुकदमे को उनसे ज्यादा अच्छा नहीं लड़ सकता था।"

सार्वजनिक जीवन

सन् १८८८ ई० मे राष्ट्रीय महासभा का चौथा अधिवेशन जार्ज यूल के सभापतित्व मे प्रयाग मे हुआ था। तभी से उसमे शामिल होने लगे। सन् १८९२ ई० मे जब फिर अधिवेशन प्रयाग मे हुआ तो यह स्वागत-समिति के एक पदाधिकारी थे। इसके बाद प्राय सभी अधिवेशनो मे शामिल होते रहे। १९०३ मे जवाहरलाल के साथ बम्बई अधिवेशन मे शामिल हुए। सर हेनरीकाटन सभापति थे। यही गरम-नरम के भेद की नीव पडी। यह पूरे नरम थे। सन् १९०६ ई० मे इग्लैण्ड से लौटकर कलकत्ता कांग्रेस मे शामिल हुए। यहाँ दोनो दलो का मत-भेद स्पष्ट था। विपिनपाल, अरविन्द घोष और तिलक सदल-बल माडरेटो से सत्ता छीनने आये थे। बग-भग के कारण वातावरण और अशान्त हो उठा था। पर मुख्य प्रस्ताव पर मालवीयजी, मोतीलालजी तथा युक्तप्रान्त की सहायता से नरम दल की हार होते-होते बची। सन् १९०७ ई० मे युक्तप्रातीय कान्फ्रेस का प्रथम अधिवेश प्रयाग मे हुआ। मोतीलालजी सभापति हुए। उस समय भी त्रिटे

न्यायप्रियता मे इनका विश्वास अटल था ओर वायकाट, कानून-भग इत्यादि से चिढ थी। इनके भाषण से उस समय लोग निराश भी हुए। सन् १९१३ मे फिर लखनऊ की प्रातीय कान्फ्रेस के सभापति हुए। १९०९ से १९१९ तक बराबर सर्वभारतीय काग्रेस-कमिटी के प्रमुख सदस्यो मे इनकी गिनती होती थी। प्राय सात वर्ष तक युक्तप्रातीय काग्रेस केमेटी के अध्यक्ष भी थे। समाज-सुधार-सम्बन्धी अपने उग्र सामाजिक विचारो के कारण सामाजिक सम्मेलन एव पटेल बिल—कमेटी के अध्यक्ष भी चुने गये। बहुत दिनो तक सेवा-समिति, प्रयाग के उपाध्यक्ष रहे। इन सस्थाओ के अतिरिक्त विद्या-मदिर हाई-स्कूल कमेटी, होमरूल लीग और बार असोसिएशन के सभापति भी रहे।

'लीडर'

सन् १९०९ ई० मे कई मित्रो के सहयोग से 'लीडर' नामक अग्रेजी दैनिक निकाला। यह उसके प्रथम मैनेजिग चेयरमैन हुए। उसके हिस्सेदार भी थे। सन् १९१० ई० मे पत्रो का मुँह बद कर देने को सरकार तुली थी। उस समय इन्होने कहा था—"जबतक मेरे मकान मे एक ईंट के ऊपर दूसरी ईट खडी है, तबतक मै 'लीडर' के स्वतत्रता के लिए लडने के अधिकार की रक्षा करूँगा।" पीछे मत भेद के कारण यह 'लीडर' से अलग हो गये।

व्यस्थापक के रूप में

सन् १९०९ ई० मे मार्ले मिण्टो सुधारो का आरम्भ होने पर यह कौसिल के सदस्य हो गये। वहाँ भी समय-समय पर निर्भीकतापूर्वक सरकार के अनुचित कार्यो की आलोचना करते रहे। सन् १९१७ ई० मे रुडकी इजीनियरिंग कलेज के गोरे प्रिंसपल ने भारतीय विद्यार्थियो के प्रति अनुचित बाते कही। उसके घृणित व्यवहार पर इन्होने कौसिल मे निन्दा का प्रस्ताव पेश किया। सरकार ने मामले को गम्भीर होता देखकर इन्हे

उत्तर देने का मौका ही न दिया। इसपर विरोध मे कौसिल-भवन छोड-कर चले गये। पर गवर्नर एव सर सुन्दरलाल के मनाने पर फिर गये। सन् १९१८ ई० मे युक्तप्रान्तीय कौसिल मे जब रायबहादुर आनन्दस्वरूप ने माण्टेगू—चेम्सफर्ड सुधार-योजना के समर्थन का प्रस्ताव पेश किया तो इन्होने उसका विरोध किया। १३ अगस्त १९१८ ई० को इन्होने कौसिल के सम्मुख एक विचारणीय प्रस्ताव उपस्थित किया था। वह यह कि गवर्नर कौसिल के सदस्यो मे से एक प्रधान मन्त्री चुन ले। और मन्त्रि-मण्डल का चुनाव उसकी इच्छा पर छोड दे। मन्त्रिमण्डल कौसिल की अनुमति से ही कार्य-सचालन करे। मन्त्रियो के वेतन का बजट प्रति वर्ष कौसिल द्वारा निश्चित हुआ करे। उस समय के लिहाज़ से ये प्रस्ताव कितना आगे बढे थे। १९१४ से १७ तक यह प्रयाग म्युनिसिपल बोर्ड मे भी रहे। महायुद्ध के समय महात्माजी की तरह इन्होने भी सरकार की बडी सहायता की।

प्रयाग मे होमरूल लीग की एक शाखा खुली जिसके यह सभापति थे। सर सप्रू, चितामणि एव जवाहरलाल भी इसमे थे। प्रयाग मे इस लीग ने खूब जोर पकडा। गोरे अखबार 'पायोनियर' ने व्यग करते हुए 'होमरूल लीग के ब्रिगेडियर जेनरल' के नाम से इनका जिक्र किया। सन् १९१७ ई० मे प्रान्तीय सम्मेलन के विशेष अधिवेशन के सभापति हुए।

होमरूल लीग और 'इण्डिपेण्डेण्ट'

प्रान्त मे स्वतन्त्रता एवं निर्भीकतापूर्वक जनता के अधिकारो के लिए आवाज बुलन्द करने वाले दैनिक का अभाव खल रहा था। फलस्वरूप अपने विचारो के प्रचारार्थ, महाराजा साहब महमूदाबाद के सहयोग से, इन्होने 'इण्डिपेण्डेण्ट' नामक अग्रेजी दैनिक पत्र निकाला। ५ फरवरी १९१८ ई० को वसन्तपचमी के दिन उसका जन्म हुआ।

मोतीलाल जी उसपर बहुत ध्यान देते थे। पजाब के सैनिक शासन के दिनो मे वह सम्पादकीय लेखो को प्रेस मे जाने के पूर्व, स्वय देखते थे। उन्हे सैयद हुसेन (जो आजकल अमेरिका मे रहते है)—जैसे योग्य सम्पादक भी मिल गये थे। एक दिन उन्होने सैयद हुसेद से एक लेख की भाषा और मुलायम करने को कहा और तीन बार ऐसा करने पर भी जब वह छपा तो इतना कडा था कि पजाब और बर्मा मे यह अक जब्त कर लिया गया। इस लेख मे सम्पादक ने उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि 'आतिश' के इन शेरो को उद्धृत किया था—

छुपेगा कुश्तों का ख़ून क्यो कर,
क़रीब है यारो रोज़े महशर।
जो चुप रहेगी जबाने खजर,
लहू पुकारेगा आस्ती का॥

सैयद हुसेन के सम्पादकत्व मे 'इण्डिपेण्डेण्ट" ख़ूब चमका। कुछ दिनो तक 'लीडर' इसके आगे धुँधला हो गया था पर आरम्भ से ही इस पर सरकार की कुदृष्टि पड़ गई। सरकार ने प्रेस ज़ब्त कर लिया, फिर हस्तलिखित निकलता रहा। अन्त मे असहयोग-आन्दोलन मे पिता-पुत्र दोनो के जेल चले जाने पर बन्द हुआ।

पंजाब-हत्याकाण्ड

महासमर की समप्ति हुई। प्रतिहिसा ने थककर दम लिया। विश्व की त्रस्त ऑखे निराशा से भरी थी। दलित राष्ट्र स्वतन्त्रता की आशा से उद्दीप्त हो रहे थे। भारत ने, अपनी इतिहास-प्रसिद्ध उदारता के साथ, अपने बच्चो का इस दिन के लिए उत्सर्ग किया था, पेट काट-काटकर करोडो रुपये प्रतिहिंसा की ज्वाला की शान्ति के लिए उसने दे दिये थे। अब मौका आया था, वह आशा के साथ इग्लैण्ड की ओर देख रहा था। ऐसे समय विप्लववादियो

के दवाने के नाम पर रौलट ऐक्ट—काला कानून—सार्वजनिक विरोध पर भी पास हुआ—विना मुकदमा चलाये, जिसे चाहे उसे जेल में ठूंस देने के लिए। जिस समय चातक स्वाति की आशा से चोंच खोलकर ऊपर देख रहा था, उसी समय बिजली कडकी और उसपर पत्थर आ गिरा। इस अद्भुत पुरस्कार को देखकर भारत पागल हो उठा। जो काम अरविन्द और सुरेन्द्रनाथ, विपिनपाल और तिलक न कर सके थे वह शासको के गहरे अन्याय ने धक्के दे कर दिखाया। गाधी ने विरोध का झण्डा वुलन्द किया। जवाहरलाल शामिल हो गये, उनके साथ मोतीलाल जी भी। पजाव में आन्दोलन ने भीषण रूप धारण किया। कई जगह सरकार ने गोलियाँ चलाई। कई जगह पशुता का ताण्डव हुआ। उस समय लाजपतराय अमेरिका मे थे। पजाब लावारिस हो रहा था। उस समय श्रद्धानन्द, मोतीलाल एव मालवीयजी ने उसकी जो सेवा की, वह अकथ है। मोतीलाल जी ने प्रयाग मे भाषण देते हुए कहा कि कोई शासन-सुधार भारत को स्वीकार न होगा, जवतक राजवन्दी छोड नही दिये जाते और हत्याकाण्ड की जॉच नही होती। सरकार ने दोनो शर्तें मान ली। कुछ राजवन्दी छोड दिये और जाँच के लिए हण्टर कमेटी वैठाई गई। सरकारी जाँच मे पोल एव ढील देख काग्रेस ने मोतीलालजी की अध्यक्षता मे जाँच—कमेटी वैठाई। दिसम्बर १९१९ ई० मे अमृतसर मे महासभा का अधिवेशन हुआ। यही सभापति वनाये गये।

अमृतसर कांग्रेस ने सुधारो को 'अपर्याप्त, असतोषप्रद और निराशाजनक' तो वताया पर सहयोग करने का निश्चय किया। सरकार ने राजवन्दी छोड दिये थे और जाँच कमेटी वैठा दी थी। इस कार्य के कारण काग्रेस के निश्चय में भी नरमी आ गई पर यह नरमी कवतक टिकनेवाली थी? अमृतसर के राष्ट्रीय तीर्थ से शहीदो के खून से तर

निट्री लोग अपने-अपने घरो को ले गये। और इसने आग जलाने का काम किया।

कांग्रेस और हण्टर कमेटियो की रिपोर्टें प्रकाशित हुई। हण्टर कमेटी की जाँच से भारतवासियो को सतोष न हुआ पर हण्टर कमेटी ने जो-कुछ निर्णय किया था वह भी कार्य-रूप मे परिणत नही हुआ। ब्रिटिश जनता ने डायर के गुणगान करके हण्टर कमेटी-द्वारा की हुई निन्दा की पूर्ति के लिए उसे तीन लाख रुपये उपहार दिये। इसने जख्म पर नमक छिड़क दिया। सहन-शक्ति की सीमा हो गई। गाधी ने अपना अस्त्र सम्हाला। असहयोग-आन्दोलन का आरभ हुआ। इधर मोतीलाल का विश्वास भी अग्रेजो से उठ गया। गाधी के सम्पर्क से त्याग, सादगी और पवित्रता आई। जवाहरलाल गांधी के कट्टर समर्थक हो गये थे। यह सब था पर अबतक मोतीलाल जी दिल मे माडरेट ही बने थे। इसीलिए १९२० ई० के कांग्रेस के कलकत्ता विशेषाधिवेशन में स्व० देशबन्धु के साथ इन्होने असहयोग कार्य-क्रम का विरोध किया और विपिनचन्द्र पाल के सशोधन का समर्थन; पर बहुमत से कांग्रेस ने महात्माजी का प्रस्ताव मान लिया। दिसम्बर में महासभा का अधिवेशन नागपुर मे हुआ। वहाँ दास बाबू और मोतीलालजी सदल-बल विरोध करने पहुँचे पर अधिवेशन आरम्भ होने के पहले अद्भुत घटना घटी, सब मे मेल हो गया। दोनो नेताओं ने बडे उत्साह से असहयोग का समर्थन किया। और नागपुर कांग्रेस के बाद देश में जो प्रचण्ड आँधी उठी, उसमे दोनो ने सारी शक्तियाँ लगा दी।

असहयोग

इसके फल-स्वरूप मोतीलाल का सारा जीवन बदल गया। कहाँ आनन्द-भवन का वह राजकीय विलास, जहाँ नित्य यूरोपीय और भारतीय अतिथियो को दावतें दी जातीं; जहा राजा-महाराजा गवर्नर सभी

भोजन कर चुके थे, जहाँ शराब ढला करती और जो फैशन का नेता था, उसने अपने को एकदम बदल दिया। आनन्द-भवन कल्पना का—परियो के देश का एक महल था। उसके मालिक की हज़ारो की दैनिक आय थी। अपने हाथ से बनाई इस इमारत को ढहा देना बडा भारी त्याग था। पर पण्डितजी तेजस्वी थे। जिस क्षेत्र में रहे, सदा आगे रहे। भोग मे, विलास और वैभव मे आगे थे, त्याग मे भी पीछे न रह सकते थे। यह उनके स्वभाव के विपरीत था। नागपुर से लौटते ही वकालत छोड दी और विदेशी वस्त्रो की आलमारियॉ की आलमारियाँ आग मे डाल दी। वह दृश्य अपूर्व था। जो-कुछ अपना न था, विदेशी था वह एक-एक करके जल रहा था। सूनी आँखो से लोग देखते। मोतीलालजी ने अपने जीवन को एकदम बदल दिया। सन् १९२१ ई० के जून या जुलाई मे रामगढ़ से उन्होने महात्माजी को एक पत्र लिखा था। यह बडा महत्त्वपूर्ण पत्र है। इसमे हम त्याग-पिपासु और साधक मोतीलालजी के दर्शन करते है। इसमे भी अतीत की थोडी कसक है, प्राचीन एकदम भूला नही है, वैभव मरकर भी स्मृति मे रगा हुआ है फिर भी यात्री की दिशा स्पष्ट है। वह लिखते है—

जीवन-परिवर्तन

"आप यह जानकर प्रसन्न होगे कि मै यहाँ किस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। पहले मेरे साथ पहाड़ पर दो रसोई-भण्डार आया करते थे—एक अग्रेजी, दूसरा हिन्दुस्तानी। खेमे मे छोटी हज़ारी खाकर रायफले, पिस्तोले और गोली-बारूद से अच्छी तरह सज्जित होकर जगल के लिए चल देता था, कभी-कभी शिकारियो की एक छोटी-सी फौज भी साथ ले जाता था, और सामने पड़नेवाले निर्दोष जनवरो को सध्या काल तक मारता था। इस बीच मे 'लच' और चाय जगल में ही घर की-सी सज-धज और सावधानी के साथ ही परोसी जाती थीं। चित्ता-

कर्षक व्यालू खेमे को हम लोगो को लौटने की प्रतीक्षा करती हुई मिलती थी और उसके साथ पूरा न्याय करके हम लोग 'न्यायी' की नीद सोते थे। जीवन के सम-पथ में कोई व्यतिक्रम नही होता था। हाँ एक वेवकूफ लड़की के ऊपर, जो जब-तब कुछ गरीब जानवरो के प्राणो की रक्षा कर देती थी, चिढ अवश्य होती थी और अब पीतल के कुकर ने (जिसे दिल्ली मे उस समय खरीदा था जब हम लोग तिब्बी कालेज की स्थापना के सम्बन्ध मे वहाँ एकत्र हुए थे) दो घरो का स्थान ले लिया है। नौकरो की फ़ौज के स्थान पर केवल एक नौकर है और वह भी विशेष कुशल नही है। गाड़ियो-भरी भोजन-सामग्री के स्थान पर तीन छोटे थैले हैं जिनमें दाल, चावल और मसाला है (इन थैलो को कमला ने खादी के स्थान पर विदेशी कपडो का बना दिया है और इसके लिए मैं उसे कभी क्षमा नही करूँगा।) अंग्रेज़ी ठाट-वाट का जलपान, 'लंच', व्यालू, ढेर के ढेर फल, सुवह-शाम की चाय और जब-तब मिल जानेवाले दो-एक अण्डे, इन सबके स्थान पर अब केवल एक ही बार दोपहर मे भोजन होता है, जिसमें दाल, चावल, साग और कभी-कभी खीर (एक साथ पका हुआ दूध और चावल) रहती है। शिकार का स्थान टहलने ने ले लिया है और रायफल एव वन्दूको का पुस्तको, पत्रिकाओ और समाचार-पत्रो ने। एडविन आर्नल्ड का 'पवित्र-गान' मुझे वहुत प्रिय है और मैं उसे तीसरी वार पढ रहा हूँ। जब ज़ोर का पानी वरसता है, जैसा कि इस समय वरस रहा है, तो वेवकूफी से भरे पत्र लिखने के अतिरिक्त और कुछ काम नही रहता। किन्तु वास्तव मे पूछिए तो मैंने जीवन में अब से ज्यादा आनन्द कभी नही पाया। केवल चावल चुक गया है और मैंने ब्राह्मण की तरह जगत् नारायण (जो यहाँ मेरे पास ही है) के मिनिस्ट्रियल भण्डार से भिक्षा की याचना की है।"

असहयोग-आन्दोलन ने जोर पकडा। सारा राजकीय वैभव त्यागकर मोतीलालजी युद्ध-क्षेत्र मे कूद पडे। उनके आने से आन्दोलन मे जान आ गई। सैकडो ने नौकरियाँ छोड दी, वकीलो के कमरे मुवक्किलो से खाली हो गये। बहुतो को तो घर लौटने को ताँगे का केराया भी मुश्किल हो गया। युक्तप्रात और बगाल मे आदोलन ने तूफानी रूप पकडा। इसी समय युवराज (प्रिंस ऑव् वेल्स) का आगमन हुआ। सरकार ने बडा इन्तजाम कर रखा था, धमकी, प्रलोभन एव खुशामद का बाजार गर्म था। साम, दाम, दण्ड, भेद सब आजमाये जा रहे थे। यह काँग्रेस और सरकार के बीच की रस्साकशी थी। जिस दिन—१९ नवम्बर को—युवराज ने बम्बई मे पदार्पण किया, उस दिन काग्रेस की आज्ञा से सारे भारत मे हडताल रही। जन-हृदय पर काग्रेस के अधिकार की यह अपूर्व घोषणा थी। सरकार घबडा गई। कई जगह १४४ धारा का प्रयोग करके सभाएँ बन्द कर दी गई; कई जगह काग्रेस को गैर-कानूनी करार दे दिया गया। फिर क्या था? योद्धा खम ठोकर मैदान में उतर आये। घमासान मच गया। आसाम, बगाल, युक्त प्रान्त और पजाब मे 'वालेण्टियर कोर'—स्वयसेवक दल—गैर-कानूनी करार दिये गये। प्रतिवाद स्वरूप काग्रेस कार्य-कारिणी ने निश्चय किया कि प्रत्येक काँग्रेस कमेटी अपना 'वालेण्टियर कोर'—स्वयं-सेवक दल—सगठित करे और काँग्रेसवादी इसमे नाम लिखावे। मोतीलालजी सबसे पहले सपरिवार वालटियर बने। फलत ६ दिसम्बर को जवाहरलाल, भतीजो तथा सहयोगियो के साथ गिरफ्तार कर लिये गये। फिर बीच मे गोलमेज कान्फ्रेंस की भी बात चली पर पण्डितजी ने महात्मा जी को पहले की शर्तों पर दृढ रहने को लिखा। यद्यपि स्वास्थ्य खराब हो गया था फिर भी छूटते ही महासभा के महामत्री का काम सम्हाला।

युद्ध में

१९२१ की अहमदाबाद कांग्रेस अपूर्व थी। स्वच्छ धवल खादी का पण्डाल कितना सादा और सुन्दर था। कदम-कदम पर कांग्रेस नगर की रचना मे महात्माजी के व्यक्तित्व की छाप थी। कुर्सियो का क्रम हटाकर जमीन पर बैठने की प्रथा चलाई गई। मानसिक दृष्टि से भी यह अधिवेशन

अहमदाबाद कांग्रेस और उसके बाद

देश की एकता और उत्साह का नमूना था। उसमे महात्माजी ने कांग्रेस मच से सरकार को जो जबर्दस्त चुनौती दी थी वह इतिहास मे स्मरणीय रहेगी। 'या तो हमे स्वराज दो अन्यथा हम तुम्हारे साथ असहयोग करेगे, तुम्हारा शासन-तत्र चलना असम्भव कर देगे।' इस अधिवेशन मे महात्माजी स्वराज्य-युद्ध के सर्वेसर्वा—डिक्टेटर—बनाये गये और किसी-न-किसी रूप मे आज तक है। महात्माजी ने गुजरात के बारडोली तालुके को सविनय कानून-भंग के लिए विशेष रूप से तैयार किया था। सत्याग्रह शुरू ही होनेवाला था कि युक्तप्रान्त के गोरखपुर ज़िले के चौरी-चोरा नामक स्थान पर दगा हो गया। इसमे पुलिस के बहुत-से आदमी मारे गये। महात्माजी के दिल पर इस हिंसात्मक घटना की ऐसी चोट लगी कि इसे उन्होने परमात्मा का सकेत समझकर कानून-भग की लडाई स्थगित कर दी। लडाई बन्द हो जाने से देश मे सन्नाटा छा गया। जैसे तेज जाती हुई गाडी को एकाएक रोक देने से स्वय उस गाडी को ज़बर्दस्त धक्का लगता है वैसे ही स्वराज्य-आन्दोलन को धक्का लगा। देश में सुस्ती छा गई; उत्साह मन्द पड़ गया। इस प्रतिक्रिया से सरकार ने फायदा उठाया। महात्माजी को गिरफ्तार करके मुकदमा चलाया गया। ससार के इतिहास मे यह एक ऐतिहासिक मुकदमा है। इसमे उन्हे ६ वर्ष की सजा हुई। ३० हज़ार स्त्री-पुरुष असहयोग-आन्दोलन मे जेल गये थे। १९२२ ई० मे जब नेता जेल से बाहर आये तो देखा कि स्थिति बहुत

बिगड गई है, बहिष्कार का मामूली काम चलना भी कठिन हो गया है। ७ जून को लखनऊ मे कार्यकारिणी की बैठक हुई। कांग्रेस ने मोतीलाल जी के सभापतित्व मे 'सत्याग्रह-जाँच-समिति' कायम की। इसका काम सम्पूर्ण परिस्थिति की जाँच करके समयानुकूल कोई कार्यक्रम बनाना था। पण्डितजी के साथ हकीम अजमलखाँ, मौलाना अबुलकलाम आजाद और श्री राजगोपालाचार्य उसके सदस्य थे।

स्वराज्य दल का जन्म

कमेटी ने सारे देश का दौरा किया, देश की परिस्थिति की भली-भाति जाच की। कमेटी की रिपोर्ट १९२२ की कांग्रेस के कुछ दिन पहले प्रकाशित हुई। रिपोर्ट मे यह था कि देश सामूहिक रूप से सविनय अवज्ञा के लिए तैयार नही है और कांग्रेस को सरकारी कार्यो मे अडगा डालने के विचार मे कौसिलो पर कब्जा करना चाहिए। इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही एक तहलका मच गया, कांग्रेस-वादियो मे बडा मत-भेद था। परिवर्तन- और अपरिवर्तन-वादी दो दल बन गये। सितम्बर मे देशबन्धु की अध्यक्षता में गया में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कमेटी की रिपोर्ट विषय-निर्धारिणी ने अस्वीकार कर दी। महासभा मे केवल एक सशोधित प्रस्ताव पेश हुआ पर महासभा ने कौंसिलो के पूर्ण बायकाट का ही निश्चय किया। इस पर देशबन्धु एव मोतीलालजी इत्यादि ने मिलकर कांग्रेस के अन्दर एक दल का सगठन किया जिसका सिद्धान्त कौंसिलो मे घुसकर उसे तोडना था। बीच मे दोनो दलों में कई बार समझौते के प्रयत्न हुए पर विफल रहे। अन्त में इस समस्या पर विचार करने के लिए १९२३ ई० में दिल्ली मे कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। यहाँ लाला लाजपतराय, मुहम्मदअली और डा० किचलू इत्यादि के जोर डालने से कौंसिल-प्रवेश की आज्ञा कांग्रेस ने दे दी।

देशबन्धु के अध्यवसाय एव मोतीलालजी के दिमाग ने देश मे कॉग्रेस-वादियो की एक जबर्दस्त पार्टी (स्वराज-दल) खड़ी कर दी। सन् १९२३

बडी कौंसिल के रंगमंच पर

ई० मे असेम्बली एव कौसिलो के चुनाव हुए। स्वराजदल ने प्राय. सभी स्थानो पर अपने उम्मीदवार खडे किये थे। मोतीलालजी बडी कौसिल और देशबन्धु बगाल-कौंसिल के लिए खडे हुए। दोनो चुने गये। मोतीलालजी तो विना विरोध चुन गये। पहली बार असेम्बली में एक सुगठित शक्तिमान दल के दर्शन हुए। अपनी प्रतिभा, अनुशासन, दृढता और राजनीतिज्ञता से उन्होने स्वराजदल को जो रूप दिया वह देश के इतिहास की एक श्रेष्ठ कहानी है। असल मे तो मोतीलालजी के जौहर बडी कौंसिल (असेम्बली) में ही खुले। सरकार भी उनका लोहा मानती थी। जब वह उठते तो सरकारी सदस्य इधर-उधर देखने लगते और भवन मे सन्नाटा छा जाता। उनकी मृत्यु के बाद, ९ फरवरी १९३१ को, सरकार की ओर से सर जार्ज रेनी ने उनका वर्णन करते हुए कहा था—

"उनका नेतृत्व प्रत्येक आदमी पर प्रभाव उत्पन्न करता था। वह एक प्रसिद्ध वकील और वक्ता थे और प्रथम कोटि के नेता थे। ऐसी दशा मे यह स्वाभाविक ही था कि वह जहाँ जाते, अगली श्रेणी मे रहते। उनकी तीव्र प्रतिभा, विवाद मे चतुरता और युद्ध-कला मे निपुणता ऐसी थी कि सरकार के लिए वह एक खतरनाक विरोधी थे। × × ।"

इस समय सारे देश मे धार्मिक एव साम्प्रदायिक झगडो का तूफान मचा हुआ था। यह मोतीलालजी ही थे कि इस आँधी मे निश्चल रहे, स्वराजदल की नीति में साम्प्रदायिकता की आँधी न आने दी। कुछ लोग अलग हो गये। सन् १९२६ के चुनाव मे मालवीयजी, लाला लाजपतराय तथा अन्य नेताओ ने राष्ट्रीय दल के नाम से एक दल बनाया किन्तु इस

वार भी अन्य दलो की अपेक्षा स्वराजदल ही सख्या एव शक्ति दोनो दृष्टियो से असेम्बली मे प्रधान रहा। फिर अवसर पडने पर अन्य दलो को मिलाकर भी सरकार को हराने मे मोतीलालजी न चूकते थे।

सन् १९२७ ई० मे लखनाराज के मुकदमे के सम्बन्ध मे, इग्लैण्ड गये। वही से निमन्त्रित होकर सोवियट शासन के दशवे वार्षिकोत्सव में शामिल होने के लिए रूस गये। ८ नवम्बर १९२७ ई० को, जब वह यूरोप मे ही थे, साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा हुई। इसके सारे सदस्य अग्रेज़ थे, एक भी भारतीय न था। इस अपमान ने भारतीय राजनीतिक वातावरण मे जादू का असर किया। वरसो की बिखरी हुई शक्तियाँ फिर एक झण्डे के नीचे मिलकर खडी हुई। दिसम्बर मे मद्रास कांग्रेस ने साइमन कमीशन के वहिष्कार का प्रस्ताव पास किया और एक-दूसरे प्रस्ताव-द्वारा कार्य-कारिणी को आज्ञा दी कि वह विभिन्न दलो के प्रतिनिधियो से परामर्श करके एक स्वराजी शासन-विधान तैयार करे और मार्च तक सर्वदल सम्मेलन की बैठक दिल्ली मे बुलाकर रिपोर्ट को उसके सामने उपस्थित करे।

साइमन-कमीशन का बायकाट

देश मे साइमन-कमीशन का ज़बर्दस्त बायकाट हुआ। प्राय सभी दल वाले इस मामले मे एक थे। मोतीलालजी ने अपनी सारी शक्ति बायकाट के पक्ष मे लगा दी थी। देश मे फिर राष्ट्रीय एकता का एक अपूर्व दृश्य दिखाई दिया।

इसके पहले देश को कुछ लोगो ने साम्प्रदायिकता के कीचड में ऐसा उलझा रखा था कि ज्यो-ज्यो वह निकलने का प्रयत्न करता त्यो-त्यो और उलझता जाता। सर्वदल-सम्मेलन की पहली बैठक १२ फरवरी से २८ फरवरी तक दिल्ली मे हुई। मुस्लिम लीग की ओर से अडगा डाला जाने

लगा। उसने ५ शर्तें पेश की और किसी भी समझौते के पूर्व उन शर्तों का मानना अनिवार्य करार दे दिया। सफलता की आशा न देख, मुस्लिम मागो के आधार पर दो उप-समितियाँ सिन्ध-विच्छेद और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के प्रश्नो पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई। मई मे सम्मेलन की दूसरी बैठक बम्बई मे हुई। इस बीच हिन्दू महासभा भी मुस्लिम मागो के विरोध मे कई प्रस्ताव पास कर चुकी थी, परिस्थिति और उलझ गई थी। उपसमितियो की रिपोर्ट भी तैयार न थी। इसलिए सम्मेलन ने भिन्न-भिन्न दलो के प्रतिनिधियो की एक कमेटी बना दी और उसे यह काम सौपा गया कि वह हर तरह की समस्याओ, विशेषत शासन-विधान से सम्बन्ध रखनेवाली साम्प्रदायिक समस्याओ, पर विचार करे। इसी कमिटी ने मोतीलालजी की अध्यक्षता मे महीनो तक कठिन परिश्रम करके जो रिपोर्ट तैयार की वह 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से विख्यात है। यह रिपोर्ट मोतीलालजी की राजनीतिक दूरदर्शिता एवं रचनात्मक प्रतिभा का उज्ज्वल नमूना है। इसमे भारत के लिए औपनिवेशिक ढग के शासन की योजना बडे विस्तार से बनाई गई थी। भारतीय शासन-विधान की गूढ समस्याओ को हल करने का यह पहला सफल प्रयत्न था। यह लार्ड बर्केनहेड की चुनौती का उत्तर था। रिपोर्ट अगस्त मे लखनऊ के सर्वदल-सम्मेलन के सामने पेश हुई और मुसलमानों तथा पूर्ण स्वतन्त्रतावादियो के विरोध के बीच भी स्वीकृत हुई। रिपोर्ट को अन्तिम रूप देने के लिए कलकत्ता मे कॉंग्रेस के अवसर पर सर्वदल-सम्मेलन का अधिवेशन करना निश्चित हुआ।

नेहरू रिपोर्ट और सर्वदल-सम्मेलन

पण्डित जी की असाधारण राजनीतिक प्रतिभा पर रीझकर देश ने दुबारा उन्हे राष्ट्रपति निर्वाचित किया। कलकत्ता मे उनका जैसा स्वागत

हुआ वैसा किसी सम्राट् को भी नसीव न होगा। कुछ ही दिन पूर्व ब्रिटिश शासन के प्रतिनिधि मण्डल—साइमन कमीशन—का जैसा वहिष्कार हुआ था, मोतीलालजी का वैसा ही स्वागत हुआ। वह भी कैसा दृश्य था। राजकीय पुरुष का वह राजकीय स्वागत था। २००० वालण्टियर एक ढग की वर्दी पहने हुए, ५० घुडसवार और २०० साइकल सवार राष्ट्रपति की गाड़ी के आगे-आगे थे। प्रधान सेनापति (जेनरल आफिसर कमाण्डिग) सुभाष वोस की शान निराली थी। वह विलकुल फौजी अफसर मालूम पडते थे। राष्ट्रपति की गाडी में ३६ घोडे जुते थे; यह इस वात की सूचना थी कि राष्ट्र दूसरे किसी राजा को नही जानता, काग्रेस का अध्यक्ष ही उसका राजा है। स्थान-स्थान पर फाटक वने हुने थे, वैण्ड वज रहा था। फूलो की वर्षा से सडके दिखाई न देती थी। एक अपूर्व दृश्य था।

कलकत्ता काग्रेस

कलकत्ता में सर्वदल-सम्मेलन का अन्त हो गया। काग्रेस ने नेहरू-रिपोर्ट स्वीकार करते हुए सरकार को एक वर्ष का समय दिया कि इस वीच या तो वह रिपोर्ट मे निर्दिष्ट शासन-विधान को स्वीकार करे अन्यथा ३१ दिसम्वर १९२९ को आधी रात के वाद काग्रेस अपना ध्येय पूर्ण स्वतत्रता घोपित कर देगी।

सन् १९२९ ई०

सन् १९२९ ई० मे घोर आन्दोलन हुआ। स्वतन्त्रता-वादी अगले वर्ष के लिए तैयारी करने लगे। नेहरू-रिपोर्ट राष्ट्रीय माँग (National Demand) के रूप मे देश की सैकडो सभाओ एव सम्मेलनो से दोहराई गई। इसी समय साइमन कमीशन ने दूसरी वार भारत-भूमि पर पाँव रक्खा। इस वार भी उसका घोर वहिष्कार हुआ। भारत का कोना-कोना जाग उठा। मोतीलालजी टूटते हुए शरीर और वुढापे को भूल गये। राष्ट्रीय उत्साह ने उन्हे जवान

बना दिया था; उन्होने रात-दिन एक कर दिये।

इधर यह हो रहा था, उधर भारतीय स्थिति पर बातचीत करके के के लिए तात्कालिक वायसराय लार्ड इरविन विलायत गये। वहाँ से वह अक्तूबर मे भारत लौटे। पहली नवम्बर को उन्होने असेम्बली में एक घोपणा की जिसका साराँश था कि "ब्रिटिश सरकार भारत को क्रमशः **औपनिवेशिक मर्यादा का शासनाधिकार देने का वादा करती है। इसके लिए देशी राज्यो की समस्या का हल करना भी जरूरी है जिससे समस्त भारत की एकता स्थापित रह सके। इसलिए कमीशन तथा भारतीय केंद्रीय समिति की रिपोर्टें मिलने और प्रकाशित हो जानें के बाद तथा सम्राट्-सरकार के भारत-सरकार की सलाह से, उपस्थित सम्पूर्ण सामग्री के प्रकाश में भारतीय समस्या पर विचार कर लेने के अनन्तर, ब्रिटिश भारत के विभिन्न दलो तथा देशी राज्य के प्रतिनिधियो को, परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग या एकत्र, सलाह-मशविरे के लिए निमन्त्रित किया जायगा। आशा की जाती है कि इस विचार-विनिमय के फलस्वरूप जो बाते पार्लमेण्ट के सामने उपस्थित होगी उनके सम्बन्ध में आमतौर पर स्वीकृति के भाव प्रकट किये जायँगे।"**

घोषणा से लोगो को बडा असतोष हुआ। काँग्रेस के पहले महात्मा जी और मोतीलालजी वायसराय से मिले कि अब भी कोई रास्ता निकल आवे पर वायसराय ने किसी प्रकार का वादा करने से इन्कार कर किया।

फलस्वरूप लाहौर-काग्रेस मे देश की उद्‌बुद्ध युवक शक्ति का प्रथम दर्शन हुआ। ३१ दिसम्बर १९२९ की आधी रात तक सरकार के उत्तर

लाहौर काग्रेस

की प्रतीक्षा की गई परन्तु उधर से क्या होना जाना था। विवश होकर काग्रेस को पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य की घोषणा करनी पडी। बूढे सेनापति का हृदय खिल गया। लडना और

विजय करना, उनकी प्रकृति मे दाखिल हो गया था। उस दिन वह बच्चे हो गये थे। सिर पर सरहदी कुल्ला और नीचे लुगी बाँधकर मोतीलाल जी स्वयसेवको के बीच नाच रहे थे। इस दृश्य को देखकर दर्शको की आँखो मे प्रसन्नता के आँसू आ गये।

लाहौर-काँग्रेस मे पिता ने पुत्र को देश का मुकुट पहनाया। काँग्रेस ने यह प्रस्ताव भी पास किया कि काँग्रेस के नाम पर चुने गये सब लोग कौसिलो एव असेम्बली से स्तीफा दे दे। इस प्रश्न पर बडा विवाद खडा हुआ। कई काग्रेस-वादी कौसिल-बहिष्कार के पक्ष मे न थे। परन्तु मोतीलालजी का दृढ मत था कि पूर्ण स्वतत्रता का युद्ध किसी सरकार की बनाई कौसिलो मे नही लडा जा सकता। स्वराज-दल के अधिकाश सदस्यो ने इस्तीफा दे दिया। जो कांग्रेस-वादी न थे पर काँग्रेस के नाम पर चुने गये थे उनमे से भी अधिकाश ने इस्तीफा दे दिया। कुछ ऐसे विश्वासघाती भी निकले जिन्होने आदेश की परवा न की।

सत्याग्रह-संग्राम

नेता सत्याग्रह-सग्राम की तैयारी मे जुट गये। २६ जनवरी १९३० ई० को सारे भारत मे स्वतत्रता-दिवस मनाया गया, सभाओ मे स्वतत्रता की घोषणा दोहराई गई। काग्रेस-कार्यकारिणी ने सत्याग्रह-सचालन का सारा अधिकार महात्माजी को दे दिया था। १२ मार्च को महात्मा जी नमक-कानून तोडने के लिए, अपने चुने हुए सहयोगियो के साथ, साबरमती से दाँडी के लिए रवाना हुए। ६ अप्रैल को सारे भारत मे नमक-कानून भग किया गया। १४ अप्रैल को राष्ट्रपति जवाहरलाल गिरफ्तार हुए, वल्लभभाई तो पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। जवाहरलाल के बाद फिर राष्ट्र की बागडोर मोतीलालजी के हाथ में आई। उन्होने प्रयाग मे विराट् सभा के बीच नमक बनाया। फिर तो आनन्द—भवन के सामने

सडक पर दिन में चार-चार बार नमक बनाते । सारे शहर मे यह नमक बिकने लगा ।

नमक-कानून-भग तो देश की भावुकता को जगाने के लिए था । इस-लिए थोडे दिनो बाद पण्डितजी ने जड़ को पकडा और विलायती कपडे तथा विदेशी वस्तु-बहिष्कार का जबर्दस्त आन्दोलन शुरू किया । विला-यती कपडे की बडी-बडी आढते बन्द हो गई, दुकानो मे माल बन्द करके काग्रेस की मुहर लग गई । मिल-मालिको से समझौता मोतीलालजी की इस दिशा मे सबसे बडी विजय थी । इस समझौते के अनुसार मिल-मालिको ने स्वदेशी सूत व्यवहार करने, एव प्राय देशी पूँजी एव देशी प्रबन्ध से मिल चलाने की प्रतिज्ञा की । जिन मिल-मालिको ने प्रतिज्ञा की उन्हे काग्रेस की ओर से स्वदेशी का प्रमाणपत्र दिया गया । शेष का बहिष्कार हुआ । आज तक अधिकाश मिले उस समझौते का पालन कर रही है ।

सत्याग्रहियो के साथ पुलिस एव फौज के दुर्व्यवहार की रिपोर्ट जगह-जगह से आ रही थी । धरासणा और शोलापुर के अत्याचार सामने थे । अत काग्रेस-कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पास करके हिन्दुस्तानी पुलिस और फौज से भारतीय होने के नाते देश के प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन करने की अपील की । सरकार इसे कैसे सह सकती थी ? काग्रेस-कार्यकारिणी गैर-कानूनी घोषित कर दी गई । प्रथम स्थानापन्न राष्ट्रपति मोतीलालजी गिरफ्तार कर लिए गये । उन्हे ६ महीने की सजा हुई ।

आन्दोलन ने तूफानी रूप धारण किया । किसी को यह आशा न थी । सरकार को तो थी ही नही, स्वय महात्माजी को पता न था कि देश इतना तैयार है । बानवे हज़ार से अधिक आदमी जेल गये । इधर दमन हो रहा था, उधर गोलमेज़-कान्फ्रेन्स की तैयारियाँ हो रही थी । इसके

दो सदस्य—सर तेज बहादुर सप्रू और श्री जयकर—कांग्रेस एव सरकार के बीच सधि कराने के इरादे से वायसराय से मिले और फिर अनुमति लेकर महात्माजी एव मोतीलालजी से भेंट की। फिर विशेष सलाह-मशविरे के लिए मोतीलालजी एव जवाहरलालजी महात्माजी के पास यरवदा जेल ले जाये गये। वहाँ मुख्य-मुख्य नेताओ ने गम्भीरता-पूर्वक विचार किया पर सरकार के निश्चित वादे के अभाव के कारण कुछ फल न निकला।

रिहाई और देहावसान

जेल मे मोतीलाल जी का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। उनका दमे का रोग फिर उभड आया। यरवदा जेल से लौटकर, नैनी जेल पहुँचते ही, उन्हे ज़ोरो का बुखार आया। दमा यहाँ तक बढा कि फेफडो मे सूजन पैदा होगई और थूक के साथ खून आने लगा। कलकत्ता के प्रसिद्ध डाक्टर सर नीलरत्न सरकार ने जेल में उनकी परीक्षा की। अन्य डाक्टरो ने भी देखा और सम्मति दी कि रोग बहुत बढ गया है। इसपर सरकार ने ८ सितम्बर को जेल से पण्डितजी को छोड दिया।

छूटकर भी मोतीलालजी विश्राम न पा सके। बम्बई के विदेशी-वस्त्र विक्रेताओ से समझौता किया। कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर में प्रसिद्ध वैद्य कविराज वाचस्पति का इलाज कराया, उससे कुछ लाभ हुआ पर इन्ही दिनो बगाल के कॉंग्रेस-वादियो मे जो मतभेद हो गया था, उसे दूर करने मे उन्हे बडा परिश्रम करना पड़ा। फलत दशा खराब होती गई। मसूरी मे भी जाकर रहे पर विशेष लाभ न हुआ। इधर कुटुम्ब के अधिकाश लोग जेल मे थे, इसका भी उनपर असर हुआ था।

उधर गोलमेज़-सम्मेलन समाप्त हो चुका था। सर सप्रू और जयकर

इत्यादि ने प्रधान मन्त्री—श्री रैमसे मैकडानल्ड—से मिलकर भारत मे अनुकूल वातावरण पैदा करने के लिए नीति-परिवर्तन का अनुरोध किया। सरकार थक गई थी और जानती थी कि कांग्रेस के सहयोग बिना कुछ भी सभव नही है। अत उसने कहना मान लिया। २६ जनवरी,१९३१ को वायसराय ने विशेषाधिकार से विना शर्त कांग्रेस कार्यकारिणी के सब सदस्यो को छोड दिया। महात्माजी यरवदा से सीधे बम्बई और वहाँ से प्रयाग आये। अन्य नेता भी प्रयाग पहुँचने लगे। फरवरी के आरम्भ मे पण्डितजी के प्राय सभी सहयोगी और मित्र उनकी रुग्ण शय्या के समीप आ पहुँचे।

गाँधीजी का विचार बम्बई मे कार्यकारिणी की बैठक करने का था। यह सुनकर पण्डित जी ने सबको रुलाते हुए कहा था—"भारत के भाग्य का निर्णय स्वराज्य-भवन मे करो। मेरे सामने करो और मेरी मातृ-भूमि के अन्तिम सम्मान-पूर्ण समझौते मे मुझे भी भाग लेने दो।" युद्ध मे उन्हे मजा आता था और अन्तिम समय मे इच्छाशक्ति के बल पर मृत्यु से भी हफ्तो लडे। अन्त मे कार्यकारिणी की बैठक स्वराज-भवन मे ही बुलाई गई। यद्यपि डाक्टरो ने पूर्ण विश्राम की सलाह दी थी किन्तु उनका दिल मानता न था और कार्यकारिणी को प्रत्येक विषय मे वह अपनी सम्मति देते रहते थे। जब कुछ सदस्य उनसे मिलने गये तो उन्होने कहा था—"**मै रोग से लडूँगा; मै मृत्यु से लडूँगा और सब के ऊपर दासता-रूपी राक्षस से लडूँगा।**"

कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटती रहती है जिनसे भावी पर विश्वास करने को जी चाहता है। मोतीलाल जी के सम्बन्ध मे भी यही हुआ। लखनऊ मे उनका देहावसान होना लिखा था। वैसा ही क्रम उपस्थित हुआ। शरीर की परीक्षा के लिए एक्स-रे की आवश्यकता थी। प्रयाग

मे उसका कोई प्रबन्ध न था। इसलिए ४ फरवरी को मोटर से उन्हे लखनऊ ले जाया गया। घर के लोग तथा महात्मा जी साथ-साथ थे। लम्बी यात्रा के कारण शरीर की सूजन बढ गई और साथ ही हृदय की निर्बलता भी। महात्मा जी ने उनसे कहा—"यदि आप स्वस्थ हो जायँ तो मैं स्वराज ले लूँगा।" उन्होने हँसते हुए उत्तर दिया—"स्वराज तो मिल ही गया है। जब ६० हज़ार पुरुष, स्त्री और बच्चो ने इतना अद्‌भुत त्याग किया है और जनता ने शान्ति से गोलियाँ एव लाठियाँ सह ली है तो स्वराज के अतिरिक्त और नतीजा ही क्या हो सकता है?" दूसरे दिन डाक्टरो ने परीक्षा की और राय दी कि इस निर्बलता की अवस्था मे एक्स-रे परीक्षा नही हो सकती।

दोपहर तक दशा कुछ अच्छी रही। शाम से फिर बिगडने लगी। चेहरा पीला पडने लगा, दृष्टि-शक्ति क्षीण होने लगी। आधी रात के समय कुछ नीद आई पर बाद मे बेचैनी बढने लगी। जवाहरलाल, डा० विधानचन्द्र राय, डा० जीवराज मेहता, श्री आर० एस० पण्डित इत्यादि शय्या के पास बैठे थे। उस समय भी पण्डित जी इतने सावधान थे कि जागनेवालो को बार-बार सोने के लिए कहते थे। प्रात काल ६ बजे के लगभग उन्होने पानी माँगा। कण्ठ सूख गया था पर वह पानी अन्दर न जा सका। प्रात काल ६ बजकर ४० मिनट पर भारत के भाग्याकाश का प्रकाशमान चन्द्रमा अस्त हो गया।

× × × ×

अन्त्येष्टि-क्रिया

जिस समय पण्डित जी मृत्यु से लड रहे थे उस समय भी पण्डित जी को राष्ट्र एव उसके सेवको का ध्यान था। गढवाली पलटन के जिन सिपाहियो को देश-सेवको के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के कारण १५-१५ साल कडी कैद की

सज़ा मिली थी उनके परिवार की सहायता करने के लिए उन्होंने महात्मा जी से विशेष अनुरोध किया।

११ बजे के लगभग उनका शव राष्ट्रीय पताका-अकित कफन से ढककर फूलमालाओ से लदी एक मोटर मे रक्खा गया। जवाहरलाल एव मोहनलाल सक्सेना ने अरथी को सम्भाला; श्री पण्डित ने ड्राइवर का काम किया। उसके पीछे दूसरी मोटर मे महात्मा जी, माता स्वरूपरानी और मीरा बहन बैठी थी।

मोटर बादशाह बाग, कैसर बाग, अमीनाबाद आदि से गुज़रती हुई प्रयाग को रवाना हुई। रास्ते मे तथा मकानो पर जनता के सिर-ही-सिर दिखाई देते थे। फूल-मालाओ की वर्षा हो रही थी।

तीसरे पहर अरथी आनन्द-भवन पहुँची। वहाँ सुबह से ही जन-समूह रास्ता देख रहा था। लगभग ६० हज़ार की भीड़ थी। यहाँ आनें पर कुछ समय के लिए दर्शनार्थ पण्डित जी का मुख खोल दिया गया और अन्त्येष्टि की कुछ जरूरी रस्मे पूरी की गईं। फिर अरथी का जुलूस आनन्द-भवन से त्रिवेणी-सगम के लिए रवाना हुआ। पहले कटरा से जान्स्टनगज एव बहादुरगज होकर जुलूस जाने को था पर भीड बढ जाने से सीधे किले की सडक से ६॥ बजे शाम को त्रिवेणी पहुँचा। वहाँ भी अपार भीड़ थी। अरथी के पहुँचते ही 'इन्किलाब जिन्दाबाद' के नारे लगने लगे। पण्डित जी के कितने ही फोटो उतारे गये। शास्त्रीय विधियाँ पूरी हो चुकने पर शव चिता पर रक्खा गया। महात्मा जी ने भी चिता मे चन्दन की लकडी के कुछ टुकड़े डाले।

हाय! वह दृश्य कैसा हृदय-वेधक था। राष्ट्र का मस्तिष्क अपनी कला दिखाकर अनन्त के गर्भ मे समाता जा रहा था और उसे जानने-वाले, उसे प्यार करनेवाले, अपने से अपने अपनी असमर्थता और बेबसी

पर कलेजा मसोसकर रह जाते थे। जवाहरलाल तो न जाने किस दुनिया मे पहुँच गये थे, आँखो मे एक बूँद आँसू नही। चिता धू-धू करके जल रही है, लपटो की आँच से शरीर जल रहा है पर मानो इसकी उन्हे खबर नही। यह दुख की पराकाष्ठा थी। दूसरो ने देखा और वहाँ से हटाया।

उनकी मृत्यु से देश-भर में हाहाकार मच गया। सर्वत्र हड़ताल हुई। सरकार तक को उनका अभाव अनुभव हुआ। देश ही क्यो विश्व के कोने-कोने मे शोक मनाया गया। शायद ही किसी भारतीय नेता की मृत्यु पर इतना विश्वव्यापी शोक मनाया गया हो। भारत के अतिरिक्त लका, जापान, मोमबासा, मारिशश, जर्मनी, फ्रास, इग्लैण्ड, बेलजियन कागो, दक्षिण-अफ्रीका, मध्य-अफ्रीका, मलाया, टगानिका, ईराक, अमेरिका, श्याम, अदन, केनिया, नेटाल इत्यादि दूर-दूर देशो में भी शोक मनाया गया। सभाएँ हुई और शोक-सूचक प्रस्ताव पास हुए। मृत्यु के सम्बन्ध में वायसराय, राजे-महाराजे तथा देश-भक्तो के हजारो तार एव पत्र जवाहरलाल के पास आये थे। सचमुच इतना अभाव किसी नेता का अनुभव न हुआ था। मुझे खुद अपनी याद है कि मैंने सुना तो कलेजा बैठ गया, ऐसा मालूम हुआ मानो अपनी कोई अत्यन्त मूल्यवान चीज खो गई हो।

उनकी चिता को दिखाकर महात्मा जी ने ठीक ही कहा था—"यह चिता नहीं राष्ट्र-यज्ञ का हवन-कुण्ड है।" और इस हवन-कुण्ड मे इससे ऊँची आहुति गरीब देश क्या दे सकता था ?

—पांच—

उनकी विशेषताएँ

यो तो उनमे अनेक गुण थे पर उनकी देशभक्ति उनके जीवन मे सब से अधिक प्रकाशित है। देश का प्रश्न आने पर वह व्यक्तिगत मतभेद को भूल जाते थे। बस शत्रु को चित करने—पटकान देने की चिन्ता उन्हे रहती थी। इस सम्बन्ध मे एक घटना की याद आती है। १९२५ ई० में व्यक्तिगत तथा राजनीतिक कारणो से स्व० लाला लाजपतराय स्वराज्य-दल से अलग होगये थे। उनके इस सम्बन्ध-विच्छेद को लेकर उनमे और मोतीलालजी मे अवाछनीय और कभी-कभी अत्यत तीव्र एव कटु विवाद उठ खड़ा होता था। मित्रो के बहुत यत्न करने पर भी तीन वर्ष तक दोनो नेता कभी एक-दूसरे से न बोले। पर मौका आया जब देश-दशा को ध्यान मे रखकर यह ऐतिहासिक कलह शान्त होगया।

देशभक्ति

शिमले मे असेम्बली की बैठक हो रही थी। 'पब्लिक सेफ्टी बिल' पेश होनेवाला था। लालाजी अपने एक मित्र के साथ, जो असेम्बली—बडी कौसिल—के सदस्य थे, आये। रास्ते मे लालाजी ने उनसे कहा कि "इस समय स्वराजियो को और हमारे दल को मिल जाना चाहिए। ···जहाँतक मूल कार्यक्रम से सम्बन्ध है, हममें और स्वराज्य-दल मे कोई फरक नही है। यदि हम मिलकर काम करेगे तो बहुत अधिक शक्तिमान रहेगे।" यह कहकर उन्होने लम्बी साँस ली।

"पर इसमें बाधा क्या है?"—मित्र ने पूछा। लालाजी बोले—"मै और मोतीलाल जी। मै कभी-कभी अनुभव करता हूँ कि क्या यह हमारे

लिए अयोग्य नही है कि हम अपने व्यक्तिगत मतभेदो को, देश-हित के लिए समानरूप से प्रयत्नशील दलो के बीच मे लावे ?"

इस प्रकार बात-चीत करते दोनो ने असेम्बली मे प्रवेश किया। पर यह क्या ? सामने बरामदे मे ही मोतीलाल जी खडे थे। वहाँ और कोई न था। लालाजी आँख बचाकर निकल जाना चाहते थे। उन्होने समझा कि सयोग से ही ऐसा हुआ होगा। पर बात ऐसी न थी। मोतीलालजी राष्ट्रीयदल (नैशनलिस्ट पार्टी) के इस नेता की खोज मे जान-बूझकर वहाँ खडे थे।

"लालाजी, मुझे तुरन्त आपकी जरूरत है। मुझे तअज्जुब है कि हम लोग बात कर सकेगे या नही ···· !"

इसके पहले कि पण्डित जी वाक्य पूरा करते, लालाजी 'क्लोक रूम' मे घुस गये। पण्डितजी कुतूहल-वश वही खडे रहे। घबडाये नही। उनके ढग से मालूम होता था कि वह पहले से ही इसके लिए तैयार थे, लालाजी की इस घबराहट एव सकोच को वह विनोदपूर्ण आँखो से देख रहे थे, उसका मजा ले रहे थे। कुछ समय बाद लालाजी बाहर निकले। दोनो की आँखें मिली—जैसे दो बिछुडे हुए प्रेमी मिले हो। लालाजी मुस्कराये। दोनो के मुख से बोली न निकली—दोनो मौन थे। लालाजी ने अपनी बाहे पण्डितजी के गले मे डाल दी। यह शब्दो की भाषा से कही अधिक स्पष्ट था। फिर दोनो मित्र हो गये।

इसके बाद दोनो नेता एक मत्रणा-गृह (कमिटी रूम) मे १५ मिनट तक बातचीत करते रहे और जब वहाँ से हाथ में हाथ दिये निकले और सदस्यो की 'लाबी' मे प्रवेश किया तो लोग आश्चर्य से आँखे फाडकर देखने लगे और सरकारी सदस्य कर्तव्य-विमूढ़ से होगये। उनको कभी यह आशा न थी।

यह व्यक्तिगत मत-भेद पर देश-भक्ति की विजय का एक नमूना है। इस तरह के अनेक उदाहरण दिये जा सकते है। वास्तव मे उनका देश-प्रेम अद्भुत था। इसके लिए उन्होने भोग-विलास, वैभव एव राजसिक सुख सब-कुछ छोड दिया, इस वेदी पर उन्होने अपना ऐश्वर्य, अपना प्रिय कुटुम्ब, अपना प्यारा लाल जवाहर चढा दिया, यहाँ तक कि स्वय अपनी बलि देकर माता के मस्तक को ऊँचा उठाया।

× × × ×

वह लडकपन से तेजस्वी और निर्भीक थे। वास्तव मे वह शासक-कोटि के पुरुष थे। उनके जीवन पर इन सद्गुणो की छाप है और जवाहरलाल के अन्दर इन सद्गुणो का जो अद्भुत विकास दिखाई देता है, वह उनके पिता की ही देन है। उनकी तेजस्विता उनका एक अग बन गई थी, उनसे अलग न हो सकती थी। मृत्यु के पूर्व भी काग्रेस कार्य-कारिणी पर प्रभाव डालकर उन्होने सरकारी घोषणा के सम्बन्ध मे असन्तोष-प्रदर्शक प्रस्ताव पास कराया था। वह झुकना न जानते थे और, बहुत-से लोगो की भाँति मेरा भी ऐसा ख़याल है कि, यदि वह जीवित होते तो दिल्ली का समझौता न हो सकता। वह उन आदमियो मे थे जो जबतक शत्रु के मुँह से कहला नही लेते कि मै हार गया तबतक चैन नही लेते।

तेजस्विता एवं निर्भीकता

उनमे राजपूती शान थी, वह प्रकृति से ही निर्भीक थे। कोई ऐसा काम नही, जिसमे झुकनेवाले साबित हुए हो। असेम्बली-बमकाण्ड के समय इसका परिचय मिला। पहले बम का गिरना था कि भवन खाली होगया; लम्बी-लम्बी स्पीचे देनेवालो ने रास्ता नापा, इधर-उधर के दरवाजो से निकल गये। पर मोतीलाल जी न केवल अपनी जगह पर ज्यो-के-त्यो बैठे रहे वर जरा देर बाद ही वह सरकारी बेंचो की तरफ

यह सोचकर बढे कि देखे क्या हुआ और कोई घायल हुआ हो तो उसे सहायता दे। वह अपनी एव स्वराष्ट्र-सदस्य (होम मेम्बर) की सीट के बीच मे पहुँचे थे कि दूसरा बम गिरा, जिसके बाद रिवाल्वर की दो गोलिया चलने की आवाज सुनाई पडी किन्तु इस दूसरे बम से भी वह डरे नही, न पीछे लौटे। यह उनकी निर्भीकता थी।

संघटन-शक्ति एव कार्य-शक्ति

वह अद्भुत लगन के आदमी थे। कार्य करने की उनमे अद्भुत शक्ति थी। १९२३ और २६ के निर्वाचन-काल मे मैंने उन्हे सुबह से रात को १०-१० बजे तक लगातार काम करते देखा था। इतना जबर्दस्त दिमागी परिश्रम करना उन्ही का काम था। इसपर मजा यह कि परेशान एव चिन्तित होना वह जानते न थे।

स्वराज्य-दल, भारत के आधुनिक इतिहास मे उनकी, एक बडी सृष्टि है। इसके पहले भारत मे ऐसा सघटित राजनीतिक दल दूसरा न था। राजनीतिक दलो के युग के वह विधाता थे। सघठन की उनमें जबर्दस्त शक्ति थी। एक ही साल के अन्दर उन्होने राजनीतिक भारत का नक्शा पलट दिया।

× × × ×

अनुशासन एव युद्ध-नीति

अनुशासन एव युद्ध-नीति के तो वह आचार्य थे। अपने दल मे जरा भी शिथिलता वह बर्दाश्त न कर सकते थे। वह सडे-गले अग को काट-कर फेक देने की नीति के पक्षपाती थे। स्वराज्य-दल मे उनकी आज्ञा पर विवाद न हो सकता था। वह शासक की कोटि के थे। राजनीतिक दॉव-पेच को जानते थे इसलिए विरोधी को सर उठाने का मौका न देते थे। जिस समय

उसे आक्रमण की सबसे कम सभावना होती उस समय आक्रमण करते और उसे आश्चर्य से अभिभूत—पराजित कर देते थे। वह अद्भुत योद्धा थे और युद्ध मे—लडने मे, ज़ोर आजमाने मे उन्हे मजा आता था। शत्रु को चित्त देख वह आत्म-विश्वास से मुस्कराते और उसकी बेचैनी का आनन्द लेते थे। 'पब्लिक सेफ्टी बिल' के समय उन्होने जो ढग इख्तियार किया वही उनकी युद्ध-नीति का उदाहरण है। सब राष्ट्रीय दलो को तो मिला ही रखा था फिर भी उन्होने जड पर ही आघात किया। विरोध करने की जगह उन्होने 'प्वाइण्ट ऑव् आर्डर'—प्रस्ताव के असगत होने का सवाल— उठाया। सरकार विरोध के लिए प्रस्तुत थी पर उसे पता न था कि ऐसा सवाल उठाया जायगा, और न सदस्यो को पता था। मोतीलाल जी ने १९१९ के भारत-शासन कानून (गवर्नमेण्ट ऑव् इडिया ऐक्ट) से उद्धरण देकर दिखाया कि अग्रेजो के अधिकार, स्वाधीनता एव सुविधा को नष्ट करने वाला ऐसा कानून बनाने का असेम्बली को कोई अधिकार नही। उन्होने अग्रेजो के स्वतन्त्रता के अधिकार के नाम पर आवाज उठाई। मोतीलालजी अग्रेजी अधिकारो के अस्त्र का उपयोग करेगे, विरोधी, सरकारी सदस्य इसका स्वप्न भी न देख सकते थे। यह उनका अपना खास तरीका था, आत्म-रक्षा आक्रमण के रूप मे सामने आती थी जिससे युद्ध का नकशा ही बदल जाता था। वह ऐसे अस्त्र का प्रयोग करते थे जिसकी विरोधी कल्पना ही न कर सकता था। इसलिए जब वह खडे होते तो विरोधी उनके मुख की ओर भय, आश्चर्य एव घबराहट की दृष्टि से देखते थे। प्रतिद्वन्द्वी उनके आक्रमण से घबडा जाता था और इससे पहले कि होश-हवास दुरुस्त करे पण्डितजी के अस्त्रो से अपने को बिधा हुआ—जमीन पर गिरा हुआ पाता था।

× × × ×

उनमे हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव न था। साम्प्रदायिक्ता उनको छू तक नही था। उनकी प्रकृति का पोषण ही ऐसे वातावरण मे हुआ था। वहुत-से लोग तो उन्हे मुसलमानो का हामी कहते थे। उनके अनेक मुसलमान मित्र थे और राष्ट्रीय नेताओ मे मुसलमान उन पर सबसे ज्यादा विश्वास करते थे। हिन्दू महासभा के आन्दोलन के समय एक सज्जन ने पूछा—"पण्डितजी, आप महासभा के सदस्य क्यो नही है?" उन्होने उत्तर दिया—"**महज इसलिए कि मै मुस्लिम लीग का सदस्य नही हूँ!**" वह पूर्ण राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रवाद भी वह जो मानव-प्रेम मे बाधक न हो। हिन्दू होने के कारण उन्होने कभी हिन्दुओ का पक्षपात नही किया; वह प्रकृति से हिन्दू-मुसलमान मे भेद करने मे असमर्थ थे। यही नही, जैसा कि ('इण्डियन पेबुल्स ऑन् द इग्लिश शी-सोर' के लेखक) सैयद अफ़ज़ल हुसैन ने लिखा था—"उनके जीवन मे कई ऐसे अवसर आये है जब वह हिन्दुओ की अपेक्षा मुसलमानो के प्रति अधिक उदार रहे है।"

साम्प्रदायिकता से रहित हृदय

मोतीलाल की दूरदर्शिता अप्रतिम थी। वह महीनो पहले से, आगे होनेवाली घटनाओ को देख सकते थे। सैयद अफजल हुसैन ने एक घटना का जिक्र किया है जिससे उनकी दूरदर्शिता और अद्भुत राजनीतिक प्रतिभा का पता चलता है। वह लिखते है—

दूरदर्शिता

"निर्वाचन के समय युक्तप्रातीय कौंसिल के लिए जौनपुर के नवाब मुहम्मद यूसुफ (जो बाद मे मिनिस्टर हुए) के विरुद्ध स्वराज्य-दल की तरफ से उन्होने मौलवी मुहम्मद हुसेन को खड़ा किया था। यह चुनाव इलाहाबाद-जौनपुर मुस्लिम ग्राम्य निर्वाचन-क्षेत्र से था। पण्डित जी का नाम-भर मौलवी साहब को वोट दिलाने और श्री मुहम्मद यूसुफ

को हराने के लिए काफी था। बडा कठिन मुकाबला था। मै नवाब यूसुफ के लिए काम कर रहा था। कोई शिया-सुन्नी का सवाल, चुनाव मे जीतने के खयाल से, खड़ा नही किया जा सकता था। मै गहरे पानी मे था पर संयोग-वश ऐसा हुआ कि जरूरी काम से पण्डितजी को बस्ती[1] चला जाना पड़ा। इसके पहले उन्होने मौलवी साहब के लिए कुछ काम नही किया था। फल यह हुआ कि नवाब यूसुफ चुने गये। जब मै पण्डितजी से मिलने गया तो, इस चुनाव मे उनका विरोध करने के कारण, मारे शर्म के दबा जा रहा था परन्तु उनके व्यवहार मे कोई परिवर्तन न दिखाई दिया। उसी तरह मेरी पीठ पर हाथ फेरकर बोले—"तुम्हारे यूसुफ भाग्यवान है। वह केवल सदस्य ही नही हुए है, इस बार मिनिस्टर भी होगे।" मैने अपने मित्र नवाब यूसुफ से पण्डितजी की यह भविष्यवाणी कह सुनाई थी। मै जानता था कि वह व्यर्थ नही बोलते, जो कुछ कहते है, समझकर कहते है। वह सारी स्थिति का अद्भुत अध्ययन और ज्ञान रखते है। इसीलिए वह महीनो बाद घटित होनेवाली घटनाओ को देख सकते थे।"

साहित्यिक अभिरुचि और गुण-ग्राहकता

इसे बहुत कम लोग जानते है कि पण्डितजी फारसी और उर्दू साहित्य के अच्छे पण्डित थे। फारसी साहित्य का तो उनके जीवन पर बडा प्रभाव पड़ा था। उर्दू कविता मे वह 'आतिश' और 'गालिब' को श्रेष्ठ समझते थे और 'अनीस' उनके प्रिय कवि—'फेवरिट'—थे। इसी प्रकार फारसी मे हाफिज़ और नजीरी का उनका अच्छा अध्ययन था। इनके बारे मे उनकी बहुत ऊँची सम्मति थी। ये दोनो उनके प्रिय कवियो मे से थे। अग्रेज़ी साहित्य मे उनकी वैसी गति तो न

१ युक्तप्रांत का एक शहर और जिला।

थी पर उसकी बारीकियो को वह खूब समझते थे। खुद उनकी भाषा बडी चुस्त, मँजी हुई, सरल और प्रभावकारी होती थी। वकालत ने शान देकर छुरी को तेज कर दिया था।

गुण-ग्राहकता की वृत्ति भी पण्डितजी में खूब थी। यद्यपि विरोधी के साथ वह बडा ही निष्ठुर व्यवहार करते थे। किन्तु गुणो की कद्र करना नही भूलते थे। योग्यता की कद्र करते थे और उसके लिए रुपये पानी की तरह बहाते थे। जब 'इण्डिपेण्डेण्ट' निकालने वाले थे तब उन्होने एक प्रसिद्ध पत्रकार को पत्र एव तार-द्वारा उसका सम्पादन-भार ग्रहण करने को कहा। लिखा—"आफिस मे आकर डेस्क की गुलामी करने की आवश्यकता नही—इसकी भी जरूरत नही कि आप कुछ न कुछ रोज लिखे ही। मुख्यत नीति इत्यादि पर ध्यान रखना होगा। अपना वेतन, अपने-आप, आप जितना चाहे चुन ले!" इतनी उदार-हृदयता से सिवा उनके दूसरा कौन लिख सकता है? वह आदमी को उठाना जानते थे, खूब उठाते थे। हाँ, यह अवश्य है कि कृतघ्न को वह क्षमा न कर सकते थे। उसे मटियामेट करके छोडते थे।

व्यग के तो वह बादशाह थे। उनके व्यग सीधे चोट करते थे—बडे मार्मिक होते थे। क्या काग्रेस, क्या मित्र-मण्डली, क्या असेम्बली सब पर उनके इस व्यंग-विनोद की छाप थी।

एक बार की बात है कि पण्डितजी विलायत जा रहे थे। उसी जहाज पर हैदराबाद के एक नवाब भी थे। वह अक्सर पण्डित जी से छेडछाड़ किया करते थे। पहले तो उन्होने ध्यान न दिया पर जब छेड़-छाड़ बढने लगी तो उन्होने उनका मुँह बद करने का उपाय सोचा। एक दिन नवाब ने पूछा—"आप गो-मास खाते है?" पण्डित जी गभीर मुद्रा से बोले—"गो-मास तो नही, पर गो-भक्षको का मास यदि अच्छी तरह भुना

हुआ, मसाला लगाके मिले तो उसके खाने मे न हिचकूँगा।"

उस दिन से नवाब की आदत छूट गई।

× × ×

एक मुकदमे मे मोतीलालजी किसी बात पर कोई धारणा बना रहे थे—कोई निष्कर्ष निकालना चाहते थे। गवाह बडा अभिमानी था। उसने गुस्से से कहा—"आप गलती पर है। क्या आप मुझे बिलकुल बेवकूफ समझते है ?"

पण्डितजी ने जवाब दिया—"नही, नही।" फिर जरा रुककर सूखी हँसी हँसते हुए कहा—"लेकिन निश्चय ही, मै गलती पर हो सकता हूँ!" (यानी आप बेवकूफ है!)

× × ×

एक मुकदमे मे पण्डितजी वकील थे। मुकदमे की अन्तिम अवस्था मे वह जूरी को सम्बोधन—एड्रेस—कर रहे थे। बीच मे बोले—"इस सम्बन्ध मे मै जूरी को भ्रम मे डालना नही चाहता।" जज ने बीच मे ही कहा—"जूरी की चिन्ता न कीजिए, वे लोग स्वय अपनी देख-भाल कर सकते है।"

पण्डितजीने कहा—"हा, यह हो सकता है पर मै चाहता हूँ कि वे मेरे मुवक्किल की भी देख-भाल करे।"

इस तरह वह बात मे बात पैदा कर देते थे। उनकी मजाकपसन्द तबियत ने उनकी युद्ध-कला मे एक लुत्फ पैदा कर दिया था।

—छः—

विश्लेषण

आत्म-विश्वास मोतीलालजी की विशेषता थी। भावुकता से पैदा होनेवाला आत्म-विश्वास नही, गभीर विवेचक का, कूट राजनीतिज्ञ का गूढ रहस्यमय आत्म-विश्वास। इसके साथ आत्म-विश्वास या अपनी विशेषता का वह भाव भी, जो उनमे था राजा का—उच्च वैभव मे पले सरदार का अपने साथियो के प्रति होता है। वह प्रत्येक इच राजा थे—शासन करना जानते थे। और उनके व्यक्तित्व के सामने प्राय झुकना ही पड़ता था। सैंकडो वर्ष पूर्व डेकार्ट्स ने कहा था—"मै सन्देह—शका—करता हूँ इसलिए वर्तमान हूँ।" मोतीलालजी का व्यक्तित्व कहता था—"**चूँकि मै हूँ, इसलिए अपने अन्दर विश्वास रखता हूँ।**" कोई सिद्धान्त नही, कोई सूत्र—'फार्मूला—नही। सिद्धान्त या मत के बन्धन मे वह कभी न पडे। वह ससार को उसी विनोदपूर्ण दृष्टि से देखते थे जैसे आचार्य अपने शिष्यो की रस्साकशी या कुश्ती की जोड देखता है, उनमे रस लेता है पर उनसे बँधता नही, आगे बढता जाता है। उन्हे कोई बधन स्वीकार नही। जिस असहयोग को एक दिन अपनाया और खूब अपनाया, उससे जब वह बन्धन बन गया तो अलग हो गये। वह किसी खास प्रणाली के न थे—बँधकर न रह सकते थे। वह पालतू दुधार चौपाये नही थे, जगल मे मुक्त निर्भय विचरण करनेवाले शेर थे। इस-लिए बधन मे बँधना जानते थे, उलटे उसपर हावी होकर रहते थे और उपयोग करलेने पर, उसके बेकार होजाने पर, चूसे हुए आम की गुठली

अद्भुत आत्म-विश्वास

की तरह, उसे फेंक देते थे। मार्ग से उन्हे मोह न था। वह एक वीर खिलाडी थे—खेलते और हँसते। वह जीवन को उसकी सम्पूर्ण ताज़गी के साथ ग्रहण करते थे। उनके नियम स्वय उनके बनाये थे और जीवन के साथ उनका जो घनिष्ठ सपर्क था, जो गहरा अनुभव था उसीपर कसे होते थे। **उनके जीवन में कोई अतीत नही है—कोई बीता, गुजरा हुआ कल वहाँ नही दिखाई देता। सब वर्तमान काल है—आज-ही आज है।** वह केवल अपनी प्रकृति के कानून को माननेवाले—उस पर निर्भर करने वाले पुरुष थे। और अपने को भी अपने निष्ठुर नियमो पर कसते रहते थे। उन्हे दूसरो को विजय करने मे आनन्द मिलता था—इसलिए अपने पर विजय पाने मे भी उल्लास और आनन्द अनुभव करते थे।

सभी वस्तुओ के बारे मे उनका एक अपना निर्णय था। चीज सामने आई नही कि उन्होने उसका मूल्य अपनी दुनिया मे आँका नही। जब वह ऐसा न कर सकते तो इसका यही अर्थ था कि उस वस्तु की उनके जीवन मे स्थिति नही। उनके लिए जैसे वह चीज है ही नही। वहा हिचकिचाहट नही, सन्देह नही। उनके लिए निर्णय मस्तिष्क का अभ्यास, मन की एक आदत थी। हम सदा उन्हे अपने पर ही आश्रय रखते देखते है—उनकी बुद्धि मानो उनका कवच और अस्त्र है। अपने अन्दर इस जबर्दस्त विश्वास से ही उन्हे स्फूर्ति मिलती है।

'हिम्मते मरदाँ मददे ख़ुदा'—साहसी पुरुष की ईश्वर सहायता करता है। दुनिया उस व्यक्ति मे विश्वास रखती है जो अपने मे विश्वास रखता है। सफलता का यह पहला सिद्धान्त है और यह मोतीलालजी के जीवन मे शुरू से अन्त तक स्पष्ट, और स्पष्ट से स्पष्टतर, हो गया है। सफलता उनकी पकड से—गिरफ्त से, छूट ही न सकती थी। वह चाहते तो भी ऐसा न होता।

पैदायशी नेता

उनकी प्रकृति ही असफलता के विरुद्ध थी। आचरण ('कैरेक्टर') ही भाग्य है और मोतीलालजी का आचरण उनकी शक्तिमान बुद्धि की उपज था, जिसमे भावना और भावुकता को स्थान नही। स्वभावत वह निष्ठुर और शुष्क था। उच्च विचार, उच्च भावनाएँ उनके पास अपने-आप, बिना प्रयत्न किये, नही आ जाती थी। उनके विचार बुद्धि और तर्क के हथौडो से जीवन के साथ उनके सम्पर्क की कसौटी पर गढे होते थे।

"प्राय लोग कहते सुने जाते है कि—"अजी उन्हे ऊँचा उठने की अनेक सुविधाएँ मिल गई, इसलिए उठ गये। अमुक-अमुक बाते न होती तो वह इतना ऊँचा न उठ सकते।' यह गलत धारणा है। वे बाते—सुविधाएँ भी उन्हीकी उपज थी। उनमे जो गुण थे उनके कारण, वह जहाँ भी होते, वही ऊँचा उठते। ऊँचा उठे बिना वह रही न सकते थे—सर्वसाधारण के समानान्तर, उनकी कोटि मे, रहना उनकी प्रकृति मे ही न था। वह परिस्थिति के मालिक —शासक के रूप मे पैदा हुए थे, उसके गुलाम नही। उन्होने राजनीति का—समाज का नकशा बदल दिया और नरमवाद (माडरेटिज्म) के हिलते हुए जिब्राल्टर को उखाडकर फेक दिया। उन्होने कभी रियायत न मागी, न अपने विरोधी के साथ रियायत की।[१]

१ "It has become a fashion in certain quarters to say that but for such and such a factor he would never have risen to the political eminence he has attained It is a mistaken view Those factors were largely the outcome of his own peculiar powers Das, despite his rare gifts, could not overshadow him The qualities which made him successful in the paths he has chosen would have made him successful anywhere. He was born the master of circumstances not its victim While his compeers, light half-believers of their casual creeds, hesitate and falter life away,

नम्रता की उनमे वड़ी कमी थी पर इसके न रहने से ही वह वह हुए, जो थे। भावुकता की वाते उन्हे 'अपील' नही करती थी। उसका स्वाद और आनन्द लेने की शक्ति ही उनमे न थी। शायद ही किसी दूसरे नेता ने अपने विरोधियो को इतनी निर्दयता एवं उपेक्षा के साथ अपने रास्ते से अलग हटाया होगा। महात्मा जी के हृदय की गहरी अनुभूति उनमें न थी, जो वड़ी नम्रता के साथ शत्रु के सामने भी व्यक्त होती है और अपनी मधुरता से उसका विरोध शिथिल और मन्द कर देती है। वह सात्विक साधना का—सात्विक साधक का पथ है। मोतीलाल राजसिक साधक थे। उनकी ज़वान एक तीव्र अस्त्र थी। उनके व्यंग ऐतिहासिक-से होगये है। उनके अन्दर जो विष है उसीसे वे अमर हुए हैं। मोतीलाल जी सदा गहरी चोट करते और सीधे हृदय मे घुसते थे। उनके आक्रमण का ढग अद्भुत था, वह वड़ी वेरहमी से—निष्ठुरता से वार करते थे। आक्रमण करने में उन्हे मध्ययुगीन राजपूत-सा आनन्द आता था। एक घटना याद आती है। घटना दुखद है, उनकी मृत्यु के वाद उसकी स्मृति और भी दु.खद होगई है पर उससे उनके व्यग तथा अस्त्र की भाँति उसके प्रयोग की विधि का पता चलता है।

चोट करनेवाले व्यंग

कानपुर काग्रेस की वात है। मालवीयजी किसी प्रस्ताव पर वोलने खड़े हुए। विरुद्ध वोल रहे थे। अपने व्याख्यान मे उन्होने असहयोग-

---

he marches from strength to strength and fills the country with the rumour of his name He has changed the face of society. × × × He has swept away the shaken Gibralter of Moderatism He has never asked for quarter and never given it."

—PILLARS OF THE NATION, DELHI 1928.

काल के पहले के किये हुए अच्छे कामो का जोरदार वर्णन करना शुरू किया। काग्रेस का इतिहास सुना गये। मोतीलालजी ऐसा कोई मौका चूकते न थे। उन्होने व्यग किया—"इस तरह तो आप महाभारत और रामायण की कथा से भी आरम्भ कर सकते थे।" मालवीयजी व्यग की कला मे कच्चे है, व्यग मे ही जवाव न दे सके। चिढ गये। शोरगुल के बीच वह उसकी सफाई देने खडे हुए। राष्ट्रनेत्री श्रीमती सरोजनी नायडू ने उन्हे रोका पर उधर ध्यान न देकर, 'रूलिंग' की परवा न करके वह पन्द्रह मिनट तक बोलते ही रहे—"हाँ, मै नित्य रामायण और महाभारत पढता हूँ। इससे मुझे बडा लाभ हुआ है। मै भाई मोतीलाल जी को भी सलाह दूँगा कि वे भी ऐसा करे। इससे उनको भी लाभ होगा।" यदि मालवीयजी मे विनोद वृत्ति (सेस ऑव ह्यूमर) होती तो मोतीलालजी का व्यग हँसी मे उड गया होता। मोतीलाल जी जवाब देने को उठे। जवाहरलाल जी ने वहुत रोका पर हाथ छुडाकर मच पर आ गये,—विजय पर विजय पाने के लिए। वोले—"मैने तो समता-सूचक एक उदाहरण-भर दिया था। इसमे क्या अपराध हुआ ? मेरे लिए मालवीयजी भाई—जैसे है। हम लोग सहपाठी रहे है,—लडकपन मे साथ खेले है। फरक इतना ही है कि मै इनसे छः महीना बडा हूँ इसलिए वुद्धि मे उतने अन्तर का तो हकदार मै हूँ ही। यह स्वाभाविक है कि जो वात मुझे आज सूझती है वह उन्हे छ' महीने वाद सूझे !"

यह उनकी अजेय निष्ठुर व्यग-कला का एक नमूना है। इसके भीतर अपनी इच्छा, अपने महत्व का अहकार है। दूसरो की उपेक्षा का भाव भी है। यही उनकी शक्ति का स्रोत था पर यही उनकी दुर्वलता—अपूर्णता की कुजी छिपी है। उनमे हृदय की वह उदार सहानुभूति नही जिससे आदमी मानवी दुर्वलताओ को

उनकी कमी

समझता है और अपने प्रेम से उसे महत्त्वपूर्ण बना देता है। बुद्धि से ही जीवन की सारी समस्या हल नही हो सकती। यदि ऐसा होता तो वह ससार के कुछ चुने हुए सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञो मे एक होते। पर बुद्धि जड वस्तुओ एव प्रश्नो का निबटारा—निर्णय कर सकती है। मानव-हृदय अत्यन्त भावनामय वस्तु है। उसे केवल बुद्धि से ही नही चलाया जा सकता। सिवाय घरेलू जीवन के सम्बन्ध के भावुकता उनमे कही दिखाई नही देती थी। सार्वजनिक जीवन मे वह विशुद्ध बुद्धिवादी थे। इसीलिए महात्माजी का भारतीय हृदय पर जो अपूर्व अधिकार है, उसे वह न प्राप्त कर सके—यद्यपि बुद्धि की तीव्रता मे वह महात्मा जी से कम न थे, अधिक भले ही रहे हो। जनता से वह प्रेम चाहते भी न थे, आदर चाहते थे। अधिकार और आदर उनकी चीज थी। लोग उनके सामने झुक जाते थे—जैसे अदब से मास्टर के सामने लडके झुक जाते है।

एक बात यह कि वह शुद्ध व्यक्तिवादी और शुद्ध राष्ट्रवादी थे। इन्द्रजी ने लिखा है—"मोतीलालजी जाति के हिन्दू, शिक्षण से मुसलमान और मन-वाणी एव कर्म से हिन्दुस्तानी थे।" कुछ का कहना है कि वह हृदय से हिन्दू की अपेक्षा मुसलमान ही अधिक थे। पर असल बात यह है कि वह न हिन्दू थे, न मुसलमान। एक प्रसिद्ध लेखक के

साम्प्रदायिक पक्ष-पात-हीन व्यक्ति-वादी के रूप में

शब्दो मे 'वह प्रकृति से ही हिंदू-मुसलमान मे भेद करने मे असमर्थ थे। इसीलिए जाति के विषय मे उदासीन थे।' ईसाइयो की बढती उनके सामने कोई समस्या नही उपस्थित करती थी, मुसलमानो की उपस्थिति कोई पहेली सामने नही रखती थी। मलकानो की शुद्धि से वह आनन्द-विभोर नही हुए—'यह तो समुद्र मे एक बूँद के समान थी।' मोपलो के अत्याचार से घबडाये नही। उनका देश-प्रेम विशुद्ध था क्योकि

वह विश्व-प्रेम का एक अग था। जब बडे-बडे नेता जातिगत झगड़ो मे वह गये, वह सबके बीच एक चट्टान की भाँति अटल एव अविचल रहे। उनकी अपनी दुनिया मे जातियाँ नही है—ये सुविधानुसार कार्य-विभाग है। वही थे जो राष्ट्र की पताका के अभिवादन के समय कह सकते थे—"मै न हिन्दू हूँ, न मुसलमान।"

उनमे जातिवाद के प्रति कभी जरा भी झुकाव पैदा न हुआ। लाला लाजपतराय—जैसे नेता, जिन्होने उस समय राष्ट्रीयता की आवाज बुलन्द की थी जब बहुत थोड़े लोग उनके साथ खडे हो सकते थे, जाति-गत झगडो के प्रवाह में वह गये, न केवल बह गये वरन् न बहनेवालो को, इस प्रश्न पर नीचा दिखाने के प्रत्येक अवसर का भी उपयोग किया। तब भी मोतीलालजी अपने स्थान पर अटल रहे। वे दिन कितने दुखद थे और उनकी स्मृतियाँ कितनी दुखद है जब हम लाला लाजपतराय को प० मोतीलाल से यह पूछते हुए देखते है—"क्या आप वेदो मे विश्वास रखते है?" देश-प्रेम के बीच वेद को खीच लाकर राजनीति को कीचड मय बनाने का यह कैसा भद्दा यत्न था। पर मोतीलाल को पराजित करना खेल न था। उन्होने, अपने ढग से, उत्तर दिया—"वेदो के मूल मे जो सिद्धान्त है उनमे मैं विश्वास रखता हूँ।" इस उत्तर मे उनका सारा दृष्टि-कोण है और इस उत्तर ने लालाजी के तर्क को उखाडकर फेक दिया।

इसी प्रकार एक बार एक प्रसिद्ध मौलाना ने पण्डितजी से कहा कि "आप 'रँगीला रसूल' तथा पैगम्बर मुहम्मद पर इस प्रकार के अन्य आक्रमणो की निन्दा करते हुए एक वक्तव्य निकालिए।" मोतीलालजी ने उत्तर दिया—"पैगम्बर यदि वस्तुत. पैगम्बर है तो उन्हे हमारी—आपकी या मेरी—सहायता की आवश्यकता नही है।"

× × × ×

मिस्टर (पर कथित चुनाव के समय 'पण्डित') चिन्तामणि के एक उत्साही समर्थक ने एक बार मोतीलालजी से पूछा कि 'ब्राह्मण होते हुए भी आप मास और अण्डे क्यो खाते है ?"

मुँहतोड़ जवाब

निर्वाचन का समय था और ये बाते पण्डितजी को हिन्दू-जनता की निगाह मे गिराने के खयाल से उठाई जा रही थी, अन्यथा ये छिपी न थी। मोतीलालजी बोले—"हॉ, मै दोनो चीजे खाता हूँ। मेरे पिता भी दोनो चीजे खाते थे। मेरे दादा इनकी तरह-तरह की लजीज चीजे तैयार कराते थे, मेरे परदादा इनमे खूब-स्वाद लेते थे। विगत सात पीढियो से हम मास और अण्डे खाते रहे किन्तु जहाँतक मुझे पता है आपके नवोत्पन्न 'पिण्डत' ने, जिसका समर्थन करने आप यहाँ पधारे है, उन्हे गवर्नमेण्ट हाउस की मेजो पर ही चखना शुरू किया है।"

उनके मुहतोड जवाबो का यह एक नमूना है। इसमे पाखण्ड नही; तीव्र शस्त्र-प्रहार है।

सार्वजनिक मामलो मे वह बडे ही कडे अनुशासन के पक्षपाती थे। निश्चय ही, उनके अनुशासन की पद्धति बडी निष्ठुर थी। महात्माजी के अनुशासन के साथ उनके हृदय की विशालता लगी रहती है। वह शत्रु के साथ मित्र की तरह व्यवहार करते है पर मोतीलालजी के पास, अनुशासन के मामले मे, अपने से मत-भेद रखनेवाले के लिए, चाहे वह कितना ही बडा हो, केवल उपेक्षा थी। अपनी युद्ध-नीति मे वह कुछ सुनते न थे—कुछ हस्तक्षेप न सहन कर सकते थे। जो रास्ते मे आया, उसकी योग्यता—बडप्पन कुछ न देखकर उसे दूध की मक्खी तरह निकाल बाहर किया। विरोधी श्री निवास ऐयगर को राजनीति से उखाड फेकनेवाले वही थे,—गो ऐसा

कड़ा अनुशासन

करके उन्होने भारत का कम नुकसान नही किया, एक मूल्यवान सेवक खो दिया। पर इससे क्या ? उनकी दृष्टि से रास्ता साफ हो गया। विट्ठल भाई-जैसे चाणक्य को उन्होने असेम्बली के अध्यक्ष पद पर बिठाकर अपने नेतृत्व का मार्ग साफ किया। जिन रगा ऐयर को बच्चे की तरह मानते थे, उन्हे अलग करके छोडा। अपने क्षेत्र मे वह एक ही रह सकते थे।

पर इसमे मोतीलालजी का दोष नही; यह उनकी पद्धति का दोष है। वह जानते थे कि मेरी उपेक्षा से विरोधियो की सख्या बढती है पर इसकी वह परवा न करते थे, न कर सकते थे। वह काठ के समान दृढ थे, झुक न सकते थे। यह उनकी राजसिक अहम्मन्यता थी। पर यह अहम्मन्यता व्यर्थ न थी; उनके लिए इसका कुछ अर्थ था, कुछ उद्देश्य था। वह एक शक्तिमान एव युद्ध-कला-निपुण पुरुष के हाथ मे एक अस्त्र की भाति थे, विरोधी पर, शत्रु पर प्रहार करने मे उन्हे मजा आता था। मुँहतोड जवाब देने का,—शत्रु को पराजित देखने का प्रलोभन उनके लिए असह्य था। शायद ही किसी दूसरे भारतीय राजनीतिज्ञ ने उनसे कडुवे और तीखे व्यग किये हो। उनके व्यग कहावत हो गये है। वल्लभभाई मे जरूर, एक सीमा तक, यह बात है पर उनमे—उनके व्यगो मे उतनी सफाई और गहराई नही है।

दोष किस जगह है?

मोतीलालजी की सचाई—'सिसियारिटी'—विशुद्ध बौद्धिक सचाई थी। वह प्रत्येक कार्य को बुद्धि की कसौटी पर सकते थे। अनुभव के साथ उनका मत भी बदलता था। उनकी वेधक—पैनी दृष्टि किसी बात की गहराई—मूल तक पहुँचती थी। उम्र का उसपर कोई असर नही—रीति-रिवाजो का कोई रग नही। कई बार उन्होंने अपने मत मे परिवर्तन

स्वराज-दल में उनका प्रतिबिम्ब

किया पर मनोदिशा—मनोरचना नही बदली; वह ज्यो की त्यो रही। स्वराज्यवाद (स्वराजिज्म) उनके लिए लक्ष्य (क्रीड) नही, मनोरचना का एक विशेष प्रकार मात्र था। वह सम्प्रदाय नही, राजनीति के क्षेत्र मे राजनीति-कुशल योद्धा के आत्म-सम्मान का प्रदर्शन था। यह विरोध की एक 'फिलासफी' थी। अपने उत्तम रूप मे वह स्पष्ट युद्ध की तैयारी थी और साधारण रूप मे शिथिल एव दुर्बल हृदय राजनीतिज्ञो के गड्ढे मे गिरने से रोक थी। यह उन्हे उस स्थान पर जाने से रोकता था जहाँ से वे लाभ तो कुछ पहुँचा नही सकते थे पर हानि अवश्य पहुँचा सकते थे। स्वराजदल से रहित असेम्बली को देखिए—कैसी बेजान, कोरी बहस तथा जातिगत चालबाजियो का अखाड़ा है। मोतीलालजी ने उसे एक जीवन दे दिया था। यह जीवन उनका अपना जीवन था। जब वह उठते थे तो चारो ओर शान्ति छा जाती थी—जैसे मास्टर के आते ही दर्जे के विद्यार्थी शान्ति हो जाते है।

इसके दो कारण थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व और उनकी शान्ति प्रकृति। मौन का, चुप रहने का प्रभाव वह जानते थे। नीरवता शक्ति का चिन्ह है। वह बहुत कम बोलते; इसलिए जब बोलते, तो उनके भाषण की सक्षिप्तता सब को अपनी ओर खीच लेती। व्यर्थ बातो की चर्चा छोड़ देने और केवल जरूरी बात को प्रभावशाली ढंग मे कहने के वह आचार्य। प्रत्येक शब्द नपा-तुला होता था, अपनी जगह पर 'फिट', होता। जो बात कहना चाहते थे, शब्द उसी की ओर दौड़ते थे। सबका सारा ध्यान एक बात की ओर खीचने की कला मे कोई उनका मुकाबला न कर सकता था। वहाँ कही भाव-प्रवणता नही, काव्य नही, भावुकता को उभाड़नेवाली 'अपील' नही, एक ऐसे महान् मेधावी पुरुष की अजेय तर्कना मात्र है, जो प्राप्त साधनो का बड़ी शान्ति, बेतकल्लुफी और

आत्म-विश्वास के साथ उपयोग करता है। उनमे देशबन्धु का नैतिक प्रवाह नही था, न बडी-बडी सभाओ को उच्च भावना से भर देने की शक्ति उनमे थी, किन्तु इतने पर भी अपने समय मे वह सम्पूर्ण देश मे, राजनीतिक क्षेत्र में, सबसे महान् एव शक्तिशाली बुद्धि के पुरुष थे।

दूसरे उनमे विश्वास रखते थे, क्योंकि उनका अपने अन्दर विश्वास था,—क्योकि वह पूर्णत निर्भीक और सच्चे थे। उनमे बिना किसी हिचकिचाहट के 'नही' कहने की शक्ति थी। यदि वह यह कह देते कि "देखूँगा, पर प्रतिज्ञा नही करता" तो समझो कि वह स्वीकृति दे रहे है—काम हो जायगा। उनकी 'हाँ' दूसरो के कसम खाने—प्रतिज्ञा करने के समान थी। उनके दृढ जबडो को देखकर ही कहा जा सकता था कि यह आदमी झुकनेवाला नही है,—कभी झुका नही। वह तूफान मे चट्टान की भाँति दृढ एव स्थिर थे।

यदि जीते रहते तो वह भारत के मुस्तफा कमाल होते—गाँधी तो हो ही नही सकते थे। यह सबकी राय थी कि कांग्रेसवादियो में स्वतन्त्र देश के प्रधानमन्त्री होने के वह सबसे अधिक योग्य थे।

—सात—

कुछ संस्मरण

पण्डितजी को पहली बार मैंने १९२० या २१ मे बनारस मे देखा। हिन्दू-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो ने असहयोग मे कालेज छोडने के लिए एक समिति बनाई थी। उस समिति का काम था कि नेताओ को बुलाकर विद्यार्थियो मे उनका व्याख्यान करावे तथा विद्यार्थियो से कालेज छोडने के लिए प्रतिज्ञा-पत्र भरावे। उन दिनो कालेज मे बडी चहल-पहल रहती

थी। देश के अनेक नेता वहाँ आकर व्याख्यान दे चुके थे। मोतीलालजी भी आये थे। उनका व्यक्तित्व, उनके व्यग की शैली सबसे अलग थी। कुछ ही दिन बाद महात्माजी के साथ, दौरे के सिलसिले मे, वह फिर बनारस आये। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भी साथ थे। सभव है और भी छोटे-मोटे नेता रहे हो; पर मुझे उनकी याद नही है।

हम लोगो ने एक पुस्तकालय एव वाचनालय खोल रक्खा था। कुछ अपनी, कुछ अन्य मित्रो की पुस्तके एकत्र की। कुछ हिन्दी के प्रकाशको एव लेखको से मुफ्त, पोस्टेज-खर्च देकर, या आधे दाम पर ली। कुछ गरीबी मे कभी-कभी, अनियमित रूप से जलपान इत्यादि के लिए मिले पैसो मे से काट-कपटकर खरीदी। अखबार भी कई मिल गये थे। यह मेरा जीवन मे सबसे पहला सार्वजनिक काम था। कई लोगो ने 'विज़िटर बुक' मे उसकी व्यवस्था पर अच्छी राय दी थी। उस समय उस छोटी चीज के लिए भी बडा आग्रह था—वडी ममता थी। मैंने सोचा यदि महात्माजी एक वार पधारकर देख ले और कुछ लिख दे तो यह चल निकलेगा। यह भी बौने का आकाश छूना था। आज सोचता हूँ तो अपनी हिमाकत पर हँसी आती है। न हमारे पास बैठने के लिए कुर्सियाँ थी, न मेज। एक पुरानी कुर्सी और एक हिलती मेज गुदडी से खरीदी थी। जहाँ पुस्तकालय था वहाँ कोई सवारी मुश्किल से ही आ सकती थी। किन्तु किशोरावस्था मे इतने तर्क-वितर्क कहाँ सूझते है। मै अपने एक मित्र को लेकर मिलने गया। सिगरा पर—थियोसफिकल सोसाइटी के पास ही ये लोग टिके हुए थे। भीतर पहुँचे तो वहाँ बीसो आदमी महात्माजी को घेरे हुए थे। बाहर बरामदे मे मौ० अबुल कलाम 'गीता-रहस्य' पढ रहे थे। और मोतीलालजी, कुछ दूर पर पलग पर लेटे हुए इन सब दृश्यो को विनोद-पूर्ण निगाह से देख रहे थे, जैसे कोई अनुभवी

दर्शक नाटक देख रहा हो। मैं महात्माजी के कमरे मे जाकर बैठ गया। उन दिनो इतना सकोची था कि बोली बहुत कम निकलती थी। तरह-तरह के लोग जमा थे। कोई राष्ट्रीय पाठशाला दिखाने ले जा रहा था, कोई बनारसी कारीगरी से उन्हे परिचित कराना चाहता था। धनी लोग अपने घर पधारने का निमत्रण दे रहे थे और इसीमे अपनी कृतार्थता मानते थे। महात्माजी के पास समय कम था, अत वह कई जरूरी कार्य-क्रमो को छोड रहे थे, लोगो को जवाब दे रहे थे। मेरा खयाल है कि उनके सेक्रेटरी इस कार्य में उनसे कही अधिक चतुर और निष्ठुर थे। यह सब दृश्य देखकर मेरे मसूबो पर पाला पड गया। मैंने देखा कि कहना व्यर्थ है। कुछ देर बैठकर, थोडी बातचीत करके, बाहर आ गया। बाहर मोतीलालजी के समीप गया। उनका व्यक्तित्व आकर्षित करता था। वहाँ बैठ गया। इतने में मोतीलालजी ने नौकर से हजामत का सामान लाने की आज्ञा की। सब सामान के साथ एक बहुत सुन्दर और कीमती चीनी के प्याले मे वह पानी लाया। पानी शायद साफ न था। यह उनके लिए असह्य था। गुस्से से उठाकर प्याले को फेक दिया। वह चूर-चूर होगया। शान्त एव अच्छे 'मूड' में होने पर मैंने पण्डितजी से कहा कि प्याला तो व्यर्थ ही फूटा। वह हँसकर बोले—"अरे बेटा, तुम लोग अब मुझे इतना भी न करने दोगे?" उनके इस वाक्य मे कुछ ही दिनो पहले का जो वैभव बोल रहा था उसने मेरे सामने उनकी एक राजकीय मूर्ति खडी कर दी। जब-जब मुझे उनकी याद आती है, यह घटना भी साथ ही स्मृति-पट पर प्रकाशित हो उठती है।

उसके बाद तो उन्हे कई बार देखा। स्वरूप कुमारी (अब श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित) के ब्याह के समय मैंने इस शुष्क—ठोस आदमी मे पहली बार पिता का वह प्रेमपूर्ण हृदय देखा जो उसके जीवन की एक

विशेषता थी। कन्यादान के समय उनकी आँखें डबडबा आई थी। सचमुच वह अपनी सतान से बहुत प्रेम करते थे। जवाहरलाल और, लडकियो मे, कृष्णा को बहुत मानते थे। पीछे जवाहरलाल को इन्दु को बहुत मानने लगे थे। अपनी उच्चकोटि की गृहस्थी को वह अपने प्रेम से बाँधे हुए थे। सार्वजनिक जीवन मे उनकी यह भाव-प्रवणता कही दिखाई न पडती थी, पर घरेलू जीवन मे उनका हृदय प्रेम से पूर्ण था। जवाहरलाल तो उनके कलेजे के टुकडे थे। उनको कष्ट झेलते देखते तो पुरानी स्मृतियाँ आजाती। उन्हे तीसरे दरजे मे सफ़र करते देख कई बार गाँधीजी तक उलाहना पहुँचाया। गाँधीजी की तथा उनकी प्रवृत्तियो मे विषमता होते हुए भी गाँधीजी का नेहरू-कुटुम्ब से घरौआ होगया था और अबतक वैसा ही बना है।

× × × ×

पण्डितजी अपनी बात के बडे कट्टर थे। इस बात मे वह महात्माजी से भी बढे-चढ़े थे। **उनकी स्वीकारोक्ति ब्राह्मण की स्वीकारोक्ति नही, क्षत्रिय प्रतिज्ञा होती थी।** इस सम्बन्ध मे एक घटना का जिक्र किया जा सकता है। १९२७ मे मुकदमे के सिलसिले मे लदन गये थे। उस समय अनेक प्रभावशाली अग्रेजो ने बीच मे पडकर यह चेष्टा की कि पण्डितजी और सर जान साइमन की एक व्यक्तिगत मुलाकात होजाय। पर पण्डितजी ने **'साइमन कमीशन के अध्यक्ष'** से मिलने के इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। कई भारतीय मित्र भी नाराज़ होगये, पर वह जानते थे कि इस तरह की मुलाकात का भी विरोधी राजनैतिक उपयोग कर सकते है। महात्माजी होते तो अवश्य मिलते। वह किसी विरोधी से मिलने का सबसे पहले ध्यान रखते है; पर मोतीलालजी इसे अपनी शान के खिलाफ समझते थे। इसका यह मतलब नही कि वह

विरोधी की योग्यता की कद्र नही करते थे। अपने एक प्रसिद्ध मुकदमे मे, जो प्रिवी कौंसिल मे गया हुआ था, उन्होने सर जान साइमन को बैरिस्टर रखने के लिए लदन के एक सालिसिटर को तार दिया था।

× × × ×

यद्यपि वह राजसिक वैभव उन्होने त्याग दिया था, उनकी रईसाना तबीयत असहयोग-काल मे भी वैसी ही थी। खादी के अन्दर भी उनका वही शाहाना दिल छिपा हुआ था। १९२७ ई० की, लदन की, घटना है। पण्डितजी वही थे। कुछ उत्साही लोगो ने एक सभा की, उसमे उनका व्याख्यान होनेवाला था। इस सभा मे पार्लमेण्ट के कितने ही सदस्य और अनेक प्रभावशाली अग्रेज उपस्थित थे। पण्डितजी की तबीयत अच्छी न थी। ठड मे दमे की शिकायत बढ गई थी, किन्तु खराब मौसिम और खराब स्वास्थ्य के होते हुए भी यह एम ताँगे (Cab) में बैठकर सभा-स्थल (एसेक्सहाल) मे गये। नियमानुसार, गाडीवान को किराया सयोजक देने लगे पर, वह राजी न हुए। "नही, नही—मै देता हूँ—" कहकर एक पौड का नोट गाडीवान के हाथ मे दे दिया और उसको किराया काटकर रुपया लौटाने या धन्यवाद का मौका दिये बिना ही वह हाल मे घुस गये। गाड़ीवान उनकी दरियादिली पर आश्चर्य करता रह गया।

× × × ×

उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि छोटा-बडा कोई भी प्रभावित हुए बिना नही रह सकता था। लन्दन के होटल सेसिल मे एक भारतीय भोज का प्रबन्ध किया गया। मोतीलालजी और महाराज गायकवाड दोनो माननीय अतिथि थे। दोनो के नाम कार्ड मे एक साथ ही दिये गये थे। उनका स्वागत-सत्कार किया गया। पण्डितजी ने एक सक्षिप्त भाषण मे धन्यवाद

दिया। उनके बाद महाराज गायकवाड बोले—"महान् स्वराजी नेता के साथ अपना नाम दिये जाने को मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।" यह उनके व्यक्तित्व तथा प्रभाव का नमूना है।

× × ×

उनके व्यक्तित्व के प्रभाव के विषय मे एक सज्जन ने लिखा था—

यदि किसी ऐसे आदमी से, जो पहली बार दर्शको की गैलरी मे आया हो, यह प्रश्न पूछा जाता कि 'भारतीय व्यवस्थापक-सभा का सब से शक्तिमान्, सबसे भयकारी और राजनीति-कुशल सदस्य कौन है' तो बिजली की शीघ्रता से उसके मुँह से शब्द निकलते—"प० मोतीलाल नेहरू।" और कोई इसे गलत कहने, या काटने की हिम्मत न कर सकता। जब अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के साथ वह असेम्बली-हाल मे प्रवेश करते, तो ऐसा जान पडता कि किसी विजयिनी सत्ता के आ जाने से सब सदस्य दब से गये है। उस समय सरकारी अधिकारी और सदस्य एक-दूसरे की ओर ताकने लगते और अपनी फाइलो एव कागजो को गौर से देखने लगते। गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यो की दृष्टि भारतीय राजनीति के इस पुतले की ओर खिच जाती। वह मनुष्यो एव परिस्थितियो पर काबू रखनेवाले पैदायशी 'अरिस्टोक्रैट' थे। उत्तर भारतीय ढग से कीमती सिल्क के धवल वस्त्रो से सज्जित, चमकदार काश्मीरी शाल बाहो के नीचे से लिपटा हुआ, देश-प्रेम के प्रकाश से चमकती आँखे, दृढ़ता की सूचना देनेवाली ठुड्डी, कभी न झुकनेवाले स्वभाव के सूचक भलीभाँति मिले हुए ओठ, इन सबको बस में रखनेवाला चौड़ा ललाट और सबके ऊपर राजनीतिक प्रतिभा, क्षमता एवं कुशलता का भण्डार तथा बहुरंगी अनुभवों का अस्त्रागार, सारे शरीर पर शासन करनेवाला, उनका मस्तक। पण्डितजी—असेम्बली के नेता—ऐसे थे! × × ×

भारतीय राजनीति के क्षेत्र में उनका स्थान अप्रतिम है। वह भारतीय राजनीति के 'पिरामिड' के सर्वोच्च शिखर थे। उन्ही के बारे मे यह कहा जा सकता है कि 'वह आँधी पर सवार होकर उसका इच्छानुसार सचालन करते थे।'

× × ×

उनकी अन्तिम बीमारी के समय कार्यकारिणी की बैठक हुई थी। उसमें सभी जमा हुए थे, पर मोतीलालजी के बिना सब सूना लगता था। एक लेखक (Alcibiades) ने 'सिव-आबज़र्वर' मे उस समय का वडा ही अच्छा वर्णन किया था—

"× × भीतर जाने पर मैने देखा कि बडे-बडे कॉंग्रेसी नेता ड्राइग-रूम के बाहर वाले वरामदे मे खडे हैं। श्रीमती नायडू वहुत दुबली होगई हैं, फिर भी सदा की तरह प्रसन्न है, वहुत धीरे-धीरे मौलाना अबुलकलाम से बात कर रही हैं। पेरिन कैप्टेन डा० जीवराज मेहता से चर्चा कर रही है। जवाहरलाल, थके और चिन्ता-ग्रस्त, कभी-कभी मोतीलाल के कमरे से बाहर निकलकर आते है और अपनी वहन को दो-एक सूचना दे फिर चले जाते हैं। सेनगुप्त अमल-धवल खद्दर एव 'पिंस नेज़' चश्मे से सुसज्जित, मुस्कराते हुए श्रीमती नायडू के पास आते है, पर क्षण-भर में ही, शायद वीमारी के सम्बन्ध मे अन्तिम सूचना पाकर, उनकी मुद्रा गम्भीर हो जाती है। नेहरू-परिवार की महिलाये शान्तिपूर्वक कार्यवश इधर-उधर आ-जा रही हैं। महात्माजी अपने ऊपर के कमरे मे हैं।

"एक वजा। सव लोग स्वराज-भवन की ओर चले, जो आनन्द-भवन से लगा हुआ है। अन्दर-ही-अन्दर रास्ता जाता है। यहाँ सव इकट्ठे हुए। राजगोपालाचार्य—जो पादरी या कार्डिनल आचार्य के नाम से ज्यादा मशहूर हैं—से वाते करते हुए मुद्रा मे गम्भीर पर अट्टहास

करने को सदा प्रस्तुत सरदार वल्लभभाई, सब से बड़ी सरगर्मी से हाथ मिलानेवाले देसाई, शार्दूल से गले मिलते हुए जयरामदास, पजाब की चिन्ता के गट्ठर से दबे जा रहे डा० सत्यपाल, काग्रेस सेक्रेटरियट (मत्रि-कार्यालय) बहुत कार्य-व्यस्त है, सबको यह अनुभव करानेवाले डा० महमूद, ऊँचाई मे सबके शरीर को मात करनेवाले शेरवानी, हँसते मुखडे से प्रत्येक का स्वागत करनेवाले तथा किसी जटिल प्रश्न पर राजेन्द्र बाबू से तर्क करते हुए आसफअली, दम-घोटक आलिगन का स्वाद चखानेवाले शिवप्रसाद गुप्त तथा प्रसन्नमुख के० यम० मुशी सभी वहाँ जमा है।

"पर सबके ऊपर विषाद की एक छाया है। आनन्द-भवन के एक कमरे मे राजनीति और समाज का एक अद्भुत व्यक्ति—एक शाहाना आदमी, जिसके रुख पर बहुत-कुछ इधर-उधर हो जाता है—चारपाई पर पडा है।

" 'सैकडो युद्धो' के योद्धा और हजारो मचो के वक्ता, उन विशेष राजनीतिवेत्ता की आवाज़, जो सदा हास्य या व्यग से भरी रहती थी, आज सुनाई नही देती थी। उसके बिना सूना और विषादमय हो रहा है।"

× × ×

महात्माजी एक सन्त और महापुरुष है, मोतीलालजी राष्ट्र-निर्माता, असाधारण व्यक्ति और असाधारण राजनीतिज्ञ थे। उन्होने हमारा पथ बहुत सुगम कर दिया और राजनीति की एक रूप-रेखा बना दी। उनकी समाधि से आवाज़ आती है—

दुआएँ दें मेरे बाद आनेवाले मेरी वहशत को,
बहुत कॉटे निकल आये मेरे हमराह मजिल से।

जीवन-तालिका

१८६१ ६ मई, दिल्ली में जन्म।
बारह वर्ष की उम्र तक घर पर तथा इस्लामी मकतब में शिक्षा मिली।

१८७३ गवर्नमेण्ट हाई स्कूल कानपुर में प्रवेश।

१८७९ प्रथम श्रेणी में इन्ट्रेंस परीक्षा पास। प्रयाग के म्योर सेण्ट्रल कालेज में प्रवेश। बी० ए० तक पढा, पर बीमारी के कारण परीक्षा में न बैठे।

१८८२-८३ सिर्फ तीन महीने में हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा सर्व-प्रथम पास की।

१८८३ कानपुर में वकालत शुरू की।

१८८६ प्रयाग आये और हाईकोर्ट में वकालत शुरू की।

१८८८ राष्ट्रीय महासभा के चौथे अधिवेशन (प्रयाग) में सम्मिलित हुए। तब से प्राय सम्मिलित होते रहे।

१८९२ राष्ट्रीय महासभा के (प्रयाग) अधिवेशन की स्वागत-समिति के एक पदाधिकारी थे।

१८९६ एडवोकेट चुने गये।

१९०३ जवाहरलाल के साथ बम्बई अधिवेशन में सम्मिलित हुए।

१९०४ सपरिवार इंग्लैण्ड-यात्रा।

१९०६ इंग्लैण्ड से लौटकर कलकत्ता काँग्रेस में शामिल हुए। इनके एव मालवीयजी के ज्यादा जोर देने से नरमदल की हार होते-होते बची।

१९०७ युक्तप्रान्तीय कान्फ्रेन्स के प्रथम अधिवेशन (प्रयाग) के अध्यक्ष।

१९०९ 'लीडर' निकाला। मार्ले-मिण्टो सुधार जारी होने पर कौसिल के सदस्य हुए।

१९०९-१९ इन वर्षों मे बराबर भारतीय कॉंग्रेस कमेटी के प्रमुख सदस्यो मे रहे। पटेल-बिल-कमेटी तथा सामाजिक सम्मेलन के अध्यक्ष।

१९१३ प्रान्तीय कान्फ्रेन्स (लखनऊ) के सभापति।

१९१४-१७ प्रयाग म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य रहे। इडियन डिफेस फोर्स का सघठन किया। सरकार की सहायता की।

१९१७ प्रान्तीय सम्मेलन के विशेप अधिवेशन के सभापति।

१९१८ ५ फरवरी, वसतपचमी के दिन 'इण्डिपेण्डेण्ट' पत्र का जन्म।

१९१८ १३ अगस्त, कौसिल मे मत्रि-मण्डल की पाश्चात्य प्रजातत्र-प्रणाली जारी करने का प्रस्ताव किया। दिल्ली कॉंग्रेस के सभापति चुने गये, पर अस्वस्थ होने के कारण अस्वीकार कर दिया। पजाब हत्याकाण्ड की जॉच के लिए नियुक्त कॉंग्रेस-उपसमिति के अध्यक्ष।

१९१९ दिसम्बर, अमृतसर कॉंग्रेस के अध्यक्ष हुए।

१९२० दिसम्बर, कलकत्ता (विशेष) कॉंग्रेस मे असहयोग-कार्यक्रम का विरोध।

दिसम्बर, नागपुर कॉंग्रेस मे असहयोग का समर्थन।

१९२१ २५ नवम्बर, कॉंग्रेस स्वय-सेवक-दल गैर-कानूनी घोषित किया गया।

६ दिसम्बर, गैर-कानूनी सस्था का सदस्य होने के कारण गिरफ्तारी।

१९२२ ६ दिसम्बर, असहयोग आन्दोलन स्थगित।

६ जून, लखनऊ में कॉंग्रेस कार्यकारिणी की बैठक। आपकी अध्यक्षता में सत्याग्रह जॉंच-समिति की नियुक्ति।

दिसम्बर, सत्याग्रह-जॉंच-समिति की रिपोर्ट निकली। इसमें बताया गया कि देश की स्थिति सत्याग्रह के अनुकूल नहीं है।

दिसम्बर, देशबंधु के सहयोग से स्वराज-दल की स्थापना।

१९२३ दिसम्बर, बड़ी कौंसिल के लिए निर्विरोध निर्वाचित। असेंबली में स्वराज-दल का नेतृत्व . उसका संगठन।

१९२७ दिसम्बर, लखनाराज के मुकदमे के संबंध में इंग्लैण्ड गये। रूस-सरकार के निमंत्रण पर रूस गये।

८ नवम्बर, साइमन-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा।

दिसम्बर, मद्रास-कॉंग्रेस में साइमन-कमीशन के बहिष्कार का निश्चय। शासन-विधान का एक मसविदा तैयार करने तथा सर्वदल-सम्मेलन की बैठक दिल्ली में बुलाकर उसमें रिपोर्ट पेश करने का कार्यकारिणी को आदेश।

१९२८ १२ फरवरी से २८ फरवरी तक सर्वदल-सम्मेलन की पहली बैठक दिल्ली में हुई।

मई में दूसरी बैठक बम्बई में हुई। वहॉं मोतीलालजी की अध्यक्षता में एक कमेटी ,बनाई गई। इस कमेटी की रिपोर्ट 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से विख्यात है।

अगस्त, लखनऊ में सर्वदल-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और नेहरू-रिपोर्ट, मुसलमानों तथा स्वतंत्रतावादियों के विरोध के बीच भी, स्वीकृत हुई।

दिसम्बर, कलकत्ता-कॉंग्रेस की अध्यक्षता। अभूतपूर्व स्वागत।

१९३० १४ अप्रैल, राष्ट्रपति जवाहरलाल की गिरफ्तारी के बाद स्थानापन्न राष्ट्रपति हुए।
काँग्रेस कार्यकारिणी गैरकानूनी घोषित की गई। आपकी गिरफ्तारी। छ महीने की सज़ा। जेल में ही सन्धि की वातचीत।
८ दिसम्बर, स्वास्थ्य बहुत खराब हो जाने के कारण रिहाई। मसूरी गये। स्वास्थ्य खराब ही होता गया।

१९३१ २६ जनवरी, वायसराय की घोषणा के अनुसार कॉंग्रेस कार्यकारिणी के सब सदस्य छोड दिये गये।
४ फरवरी, एक्स-रे परीक्षा के लिए लखनऊ ले जाया गया।
६ फरवरी, प्रात काल ६ बजकर ४० मिनट पर देहावसान।

चित्तरंजन दास

[देशबंधु]

जन्म

५ नवम्बर १८७० ई०

मृत्यु

१६ जून १९२५ ई०

"Man truely reveals himself through his gift, and the best gift that Chitta Ranjan has left for his countrymen is not any particular political or social programme, but the creative force of a great aspiration that has taken a deathless form in the sacrifice which his life represented."

—Rabindra nath Tagore

× × × ×

"वस्तुत व्यक्ति अपनी देन के द्वारा ही अपने को प्रकट करता है, और चित्तरजन अपने देशवासियो के लिए जो सर्वोत्तम देन छोड़ गये है वह कोई विशेष राजनीतिक या सामाजिक कार्यक्रम नही है वरन् एक महान् आकाक्षा की सृजनकारी—उत्पादक—शक्ति है जो उनके जीवन-द्वारा निरूपित त्याग मे अमर होगई है।"

—रवीन्द्रनाथ।

O God! whose heavenward face beaming
With passionate lovliness, is a light
For all ages! O Thou whose angel heart
Has wept many a bitter tear over
The wrongs of much-oppressed humanity

—*C. R. Das.*

हे देव ! तुम्हारा स्वर्गोन्नत मुख, जो भावमय सौन्दर्य से दीप्त है, सभी युगो के लिए प्रकाश देने वाला है। हे देव ! तुम्हारे सुन्दर हृदय ने दलित मानवता के अन्यायो पर कितने ही आँसू वहाये है।

—चित्तरंजनदास

—एक—

उन्हें देखा था—

कैसे आश्चर्य की बात है कि यह अंग्रेजी कविता, जो ऊपर दी गई है और जो स्वय देशवन्धु ने अग्रेज-कवि शेली के प्रति लिखी थी (पर उनके जीवन-काल मे प्रकाशित न हो सकी), उन्हींके जीवन की ओर इशारा कर रही है ! देशवन्धु भारतीय रगमच पर कई रूपो में आये। अपनी प्रतिभा मे जिधर गये, आँधी की तरह गये और आसमान पर छा गये, पर इन सब रूपो और प्रकारो के भीतर उनका अत्यन्त मानवी जो एक रूप था वह अन्त तक जगमगाता रहा और आज जव हमें उसकी याद आती है तो छाती फूलती हुई-सी और आँखें भरती—उमडती हुई-सी मालूम पडती है। मैंने उन्हे कई वार देखा। पहली वार असहयोग-

काल के आरम्भिक दिनो मे—काशी मे, शायद 'क्लार्क' या 'होटेल दपेरी'[१] मे ठहरे थे । उनका चेहरा लोगो को चुम्बक की नाई आकर्षित करता था । ऐसा मालूम होता था कि इस व्यक्ति मे ऐसा भी कुछ है जो इसके द्वारा होनेवाले राजनीतिक कार्यो से ऊपर है—, इसीलिए विरोधी और समर्थक दोनो उसकी ओर खिचते है । कैसा व्यक्तित्व है इसका ! जैसे सब आग-ही-आग है ! मुर्दे को छुआ और उसमे जान आई ! भाषण दिया और जनता मे नशा चढा । बडे-बडे जन-समूहो के साथ इस तरह खेलनेवाला, जैसे हवा डालियो को हिलाती, पत्तो से खेलती और फूलो मे एक सिहर पैदाकर, एक जान डालकर चली जाती है ! जो-कुछ बुरा-भला बगाल मे है, वह सब उसका है । बगाल का ऐसा पूर्ण प्रतिनिधि, ऐसा जो उसकी बुराई-भलाई सबको ज्यो-का-त्यो लेकर विकसित हुआ हो, विगत ५० वर्षो मे तो कोई हुआ नही ! वह चैतन्य, वह भावुकता, वह तेजस्विता, वह तूफानी स्वभाव, वह उदारता, वह प्राकृतिक देन, वह अस्थिरता,—सुजलाँ सुफलाँ वगभूमि मानो इस व्यक्ति मे हाड-माँस का रूप धारणकर अवतीर्ण हुई हो !

आधुनिक भारतीय राजनीति मे—मेरा मतलब १९२० के बाद के भारतीय जागरण-काल की राजनीति से है—जो चार व्यक्ति (गाधी, दास, मोतीलाल, जवाहरलाल) युग-निर्माता हुए है और जिन्होने हमारे सामने मानव-सेवक और देश-सेवक के चार निश्चित 'टाइप'—नमूने, प्रकार रक्खे, उनमे कई दृष्टियो से गाधीजी के बाद ही देशबन्धु का नाम आता है । पाँच-छ. वर्षो मे उन्होने बगाल,को इतना बढाया जितना वह पचासो वर्षो मे नही बढा था ! श्री पी० सी० राय ने ठीक ही कहा है— "देशबन्धु बीसवी शताब्दी के (प्रथम चतुर्थाश मे) सबसे बडे बगाली थे।"

१ काशी के दो प्रसिद्ध होटलों के नाम ।

पर इसके पहले कि इस राष्ट्र-निर्माता के जीवन की समीक्षा करके हम उससे कुछ निष्कर्ष निकाले या उसके व्यक्तित्व को खोलकर पाठक के सामने रक्खे, यह आवश्यक मालूम पडता है कि उसकी नीव मे जो कँकरियाँ डाली गई थी और जिनपर जीवन की सारी इमारत खडी है, उनकी थोडी चर्चा करले और उसके जीवन-मन्दिर की एक परिक्रमा भी करले। इससे समझने मे अच्छा रहेगा।

"Deshbandhu's life was a song and a passion—a Vaishnavite rhapsody of suffering and sacrifice. × × A poet he imagined richly. A patriot he dared immensley A warrior he lived and died heroically A leader he swept all obstacles before him" —LIBERTY

—दो—

जीवन-कथा

जन्म और संस्कार

चित्तरजन का जन्म ५ नवम्बर १८७० ई० को, मध्य कलकत्ता के पटलडाँगा स्ट्रीट में हुआ था। चित्तरजन के पिता श्री भुवनमोहनदास सालिसिटर थे और चित्तरजन के जन्म के कई वर्ष पहले कलकत्ता मे वस गये थे। असल मे ये लोग विक्रमपुर (ढाका) के तेलीरबाग गाँव के एक प्रसिद्ध वैद्य कुटुम्ब के थे और वहाँ से कलकत्ता आये थे। वह विक्रमपुर एक समय वगाल की वौद्धिक सस्कृति का केन्द्र था और आरम्भिक मध्यकाल मे सेन राजाओ की राजवानी भी रह चुका था।

पीछे जव इसकी आवादी वहुत वढ गई और जीविका का प्रश्न

कठिन होगया तो यहाँ लोगो के मन मे, स्वभावत, खेती के अलावा कोई दूसरा धन्धा करने का भाव पैदा हुआ। एक प्रकार की मानसिक अशान्ति फैल गई और इसी मानसिक अशान्ति के सस्कार लेकर चित्त-रजन पैदा हुए थे,—वह अशान्ति, वह प्यास जिसे दवाने के लिए एक दिन भारत के एक वायसराय—लार्डकर्जन—को वगाल के टुकडे कर देने का निश्चय करना पडा था।

एक वात और। विक्रमपुर से दास-कुटुम्व के कुछ लोग (चित्तरजन के दादा—पिता के चाचा आदि) जाकर वारीसाल वस गये थे। भौगो-लिक स्थिति और विशेष सस्कारो ने वारीसाल के निवासियो को सामान्य वगाली से भिन्न कर रक्खा था। यहाँ के लोगो मे एक प्रकार की दृढता, लगन एव कष्ट-सहिष्णुता पाई जाती है। अपने पूर्वजो के द्वारा यह सस्कार चित्तरजन मे भी आया, जैसा कि वडा होने पर हम उनके जीवन मे देखते है।

चित्तरंजन के पिता और चचा

ऊपर मै कह चुका हूँ कि चित्तरंजन के पिता (श्री भुवनमोहनदास) सालिमिटर थे, पर इसके साथ ही वह पत्रकार भी थे। अपने समय मे वह ब्रह्मसमाज के एक विशिष्ट पुरुप माने जाते थे। वह्म-समाज के मुखपत्र 'व्रह्मो पव्लिक ओपीनियन' के भी वही सम्पादक थे। धीरे-धीरे इसमे उन्होने राजनीति का भी समावेश किया। एक वार तो उनपर राज-विद्रोह का मुकदमा चलते-चलते रह गया। उनकी इस राजनीतिक प्रवृत्ति से वहुत-से व्रह्म-समाजी वन्धु डरकर अलग हो गये। तव भुवनमोहन ने कुछ ही दिनो वाद 'वगाल पव्लिक ओपीनियन' नामक पत्र निकाला। इस कार्य में उन्होने अपने को फकीर वना लिया। इन सव वातो का चित्तरजन पर जो असर पडा उसे हम उनके राजनीतिक जीवन मे स्पष्ट देखते है।

पर चित्तरजन के पिता जहाँ राजनीतिक विचारो मे इतने आगे बढे हुए थे वहाँ सामाजिक एव धार्मिक विषयो मे वह समाज का नेतृत्व न कर सके। उनके बडे भाई दुर्गामोहनदास ने इस विषय मे समाज का नेतृत्व किया। ब्रह्मसमाजी सिद्धान्तो मे उनका प्रबल विश्वास था और वह न केवल ज़बान से वरन् कार्य से एक प्रबल समाज-सुधारक थे, उनकी बडी लडकी की शादी कूचविहार के युवराज से ठीक हो चुकी थी; पर चूँकि लडकी १४ वर्ष से छोटी थी और ब्रह्मसमाज के नियम १४ वर्ष से पहले लडकी का विवाह करने के विरुद्ध थे, इसलिए उन्होने उपयुक्त अवस्था के पहले विवाह करने से इन्कार कर दिया। ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता केशवचन्द्रसेन इसी प्रश्न पर प्रलोभन मे पड गये और अपनी लडकी १४ वर्ष से कम अवस्था होते हुए भी राजकुमार को व्याह दी। तभी से दुर्गामोहन एव उनके अन्य साथियो ने 'साधारण ब्रह्म-समाज' नाम से दूसरे समाज की स्थापना की। दुर्गामोहनदास इस समाज के प्राण थे। यद्यपि फौजदारी के वह अच्छे वकील थे फिर भी समय निकालकर वह सदा समाज की सेवा करते रहे। उन्होने अपनी युवती-विमाता के विधवा होने पर उनका विवाह (विधवा-विवाह) भी कर दिया। इससे बगाल मे बडा तहलका मचा, पर दुर्गामोहन बडे दृढ स्वभाव के समाज-सुधारक थे। यह तूफान सहकर भी वह अपने पथ पर चलते रहे।

वह बगाल का उत्क्रान्ति काल था। ऐसे समय चित्तरजन पिता की देश-भक्ति, गम्भीरता एव हिचकिचाहट और चचा की विद्रोहवृत्ति तथा असन्तोष लेकर पनपने लगे।

पर चित्तरजन पर उनकी माता निस्तारिणीदेवी का प्रभाव भी कुछ कम न पडा था। निस्तारिणीदेवी यद्यपि राममोहनराय की अनुयायिनी थी, पर सामाजिक एव घरेलू विषयो मे उनके विचार हिन्दुओ से

अधिक मिलते-जुलते थे। वह पुराने ढग की एक उदार, दयाशीलता एवं कर्तव्यपरायण हिन्दू माता का नमूना थी। उनके इन गुणो का चित्तरजन के मानसिक निर्माण मे वडा गहरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए हम चित्तरजन के जीवन मे ब्राह्म और हिन्दू का अपूर्व मिश्रण पाते है। यही नही, चित्तरजन के माता-पिता, अन्य ब्रह्मसमाजियो की भाँति अपने गोत्र एव कुटुम्ब के उन लोगो से घृणा नही करते थे जो पुराने सनातनी विचारो पर चलना ठीक समझते थे। ब्रह्मसमाजी यूरोप की नकल करने के इतने आतुर हो रहे थे कि उन्होने इस देश की प्रत्येक प्रथा का वहिष्कार किया था। चित्तरजन के माता-पिता इस कोटि के न थे। उन्होने अपना प्रेममय सम्बन्ध एव सम्पर्क अन्य लोगो से कायम रक्खा। इसीलिए चित्तरजन मे बगाली प्रकृति की सम समष्टिगत मिलती है।

और माता ?

चित्तरजन के पिता समाज के लिए कविताएँ एव गान भी वनाया करते थे। चित्तरजन ने यह वृत्ति भी पिता से पाई जो पीछे बगाल के साहित्यिक कलाकारो के ससर्ग से विकसित हुई। चित्तरजन मे जो भावुकता हम वडा होने पर पाते है, वह उनमे माता-पिता से नही आई थी। वह ब्रह्म-समाज के अनेक स्त्री-पुरुषो के सम्पर्क एव ससर्ग का परिणाम थी।

मै पहले कह चुका हूँ कि यह बगाल का उत्क्रान्ति का ज़माना था। सामाजिक क्षेत्र की तरह राजनीतिक क्षेत्र मे भी परिवर्तन हो रहे थे। लार्ड रिपन के वायसराय होने के बाद बगालियो मे एक प्रकार का उत्साह फैल गया। लोग जगने लगे। इस कारण कलकत्ता मे लोगो के प्रयत्न से कई शिक्षा-सस्थाएँ खुली; कई समाचारपत्र निकले। जनता मे जीवन आने लगा। इन सब बातो का तथा इलबर्ट-विल से पैदा हुए जातीय

विद्वेष—गोरे-काले के भेद—का भी चित्तरजन पर प्रभाव पडा, क्योकि इस समय चित्तरजन लगभग १२ वर्ष के थे।

इस प्रकार पिता, चचा, माता, बगाल की तात्कालिक, सामाजिक एव राजनीतिक स्थिति ने मिलकर चित्तरजन का निर्माण किया। बहुत-से लोग समझते है कि पीछे चित्तरजन एकाएक राजनीति के क्षेत्र में आये। ऐसा नही, लडकपन से ही उनपर जो सस्कार पडे थे उनमे उनका विकसित होकर पीछे इस रूप मे प्रकट होना अनिवार्य था।

बालपन और शिक्षा

सन् १८७८ ई० मे चित्तरजन भवानीपुर (कलकत्ता) के 'लन्दन मिशनरी सोसायटी इन्स्टीट्यूशन' मे भरती हुए। शुरू से ही चित्तरजन की बुद्धि तो तीव्र थी, पर वह अन्य लडको की तरह रट्टू एव किताब के कीडे न थे,—हँसोड, प्रसन्न और उत्साही थे। १८८५ ई० मे इसी स्कूल से उन्होने एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की।

प्रारम्भिक शिक्षा

एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास करने के बाद वह प्रेसीडेंसी कालेज म भरती हुए। वहाँ 'बगाली' के भूतपूर्व सम्पादक श्री पृथ्वीशचन्द्रराय के साथ उन्होने 'अण्डरग्रेजुएट असोसिएशन' का संगठन किया जिसका उद्देश्य बंगला भाषा को भी एण्ट्रेन्स के ऐच्छिक विषयो मे स्थान दिलाना था। उस समय इन्हे सफलता न मिली। बाद मे तो सर आशुतोष ने एफ० ए० तक बगला को शिक्षा का माध्यम बना दिया।

कालेज में

पीछे चलकर बगाल के युवक छात्रो की 'स्टूडेण्ट्स असोसिएशन' नामक सस्था का सगठन किया गया। चित्तरजन इसके मुख्य कार्यकर्ताओ मे थे। यह उस समय की बात है जब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इण्डियन सिविल

सर्विस से अलग कर दिये गये थे। वह छात्रो की इस सस्था के प्रथम अध्यक्ष चुने गये और इसके द्वारा उन्होने उनमे देश-प्रेम के भावो को भरना शुरू किया। चित्तरजन ने जन-सेवा एव देश-सेवा का पहला प्रत्यक्ष पाठ सुरेन्द्रनाथ के चरणो मे बैठकर ही पढा, पर अन्तिम दिनो मे शिष्य और गुरु का भेद-भाव बढता गया।

सन् १८९० ई० मे चित्तरंजन ने बी० ए० पास किया। उसके बाद ही उनके पिता ने उन्हे भारतीय सिविल सर्विस की परीक्षा मे बैठने के लिए इग्लैण्ड भेजा। १८९२ ई० मे वह परीक्षा में बैठे पर सफलता न मिली। कुछ लोगो का कहना है कि सफलता न मिलने का कारण उनके राजनीतिक विचार थे। परीक्षा देने के पूर्व, उन्होने पार्लमेण्ट मे दी हुई जेम्स मैक्लीन की इस बात का सभा मे विरोध किया कि 'अग्रेजो ने भारत को तलवार से जीता और तलवार के जोर से ही वे उसे काबू मे रख सकते है।' इसके साथ ही उन्होने दादाभाई नौरोजी की पार्लमेण्ट की सदस्यता का जोरो से समर्थन किया था। उस समय काले-गोरे का वर्ण-भेद इग्लैण्ड मे व्यापक था। यहाँतक कि रानी विक्टोरिया के प्रधान मंत्री लार्ड सेलिसबरी ने दादा-भाई के लिए 'काला आदमी' शब्द का प्रयोग किया था। सयोग-वश दादाभाई लार्ड सेलिसबरी की अपेक्षा कही ज्यादा गोरे थे। अत इसे व्यक्तिगत अपमान न समझकर जातीय विद्वेष का उदाहरण समझा गया और चित्तरजन के समर्थन तथा अन्य कई कारणो का मतदाताओ पर ऐसा प्रभाव पडा कि दादाभाई पार्लमेण्ट के सदस्य चुन लिये गये। जो हो, इस बातका पता लगाना मुश्किल है कि अपने राजनीतिक विचारो के कारण चित्तरजन को सफलता नही मिली या किसी और कारण से।

इंग्लैण्ड में—

सिविल सर्विस की परीक्षा मे सफल न होने पर चित्तरजन ने उसी

वर्ष बैरिस्टरी की परीक्षा पास की। सन् १८९३ ई० मे भारत लौटे और उसी वर्ष कलकत्ता हाईकोर्ट मे भरती हो गये। उस समय चार्ल्स पाल, जान उड्रफ, मनमोहन घोष-जैसे मेधावी वकील वहाँ मौजूद थे। उनके सामने दूसरे नये उम्मेदवारो की कहाँ चलती ? चित्तरजन का भी वही हाल हुआ। बैठे-ठाले दिन बीतने लगे। इधर सफलता न मिलने के कारण वह साहित्य की ओर आकृष्ट हुए। १९८५ ई० मे उनकी पहली कविता-पुस्तक—'मालञ्च'—प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के कारण सारा ब्रह्म-समाज उनके विरुद्ध-सा हो गया। इसलिए कुछ दिनो के लिए उन्होने कविता लिखना भी छोड दिया।

बैरिस्टर चित्तरंजन

३ दिसम्बर १८९७ ई० को ब्रह्मसमाजी विधि से विजनी स्टेट (आसाम) के दीवान (स्व०) वरदानाथ हालदार की कन्या बसन्तीदेवी के साथ उनका विवाह हुआ। ब्रह्मसमाज के पुरोहितो ने शादी मे भाग नही लिया, क्योकि उनके विचार से चित्तरजन नास्तिक और परम्परा-विरुद्ध (Bohemian) विचारो के होगये थे।

विवाह

सन् १९०६ ई० तक योही दिन बीतते गये। किसी भी क्षेत्र मे उन्होने कोई विशेष सफलता न प्राप्त की। उनके पिता पर कर्ज होगया था। उन्होने एव उनके पिता ने एक मित्र की ४००००) चालीस हजार की जमानत—'सीक्योरिटी'—ली थी, पर वह मित्र रुपया न दे सके। इधर इन लोगो के पास भी रुपया न था। इसलिए पिता को जून १९०६ ई० मे दिवालियेपन की दर्ख्वास्त देनी पड़ी।

इस समय बगाल के जीवन में एक तूफान आने की पूर्व सूचना मिल रही थी। उग्र राष्ट्रवाद के पुरोहित अरविन्द ने अग्रेज़ी में 'वन्देमातरम्'

और बगाल में 'सन्ध्या' एव 'युगान्तर,' नामक पत्र निकालकर युवको में जीवन डालना शुरू किया था। इन प्रयत्नो मे भी चित्तरंजन का हाथ था, यद्यपि वह उस समय सामने नही आये थे।

'वन्देमातरम्'

सयोग की बात कि इसी समय ऐसी घटना हुई जिससे उनका भाग्य चमक गया। चित्तरजन के छोटे भाई वसन्तरंजन को उनके धनी चचा कालीमोहनदास ने गोद लिया था। वसन्तरजन एका-एक बीमार पडे; बचने की कोई आशा न रही। मरने के पहले वह अपनी सारी सम्पत्ति अपनी माँ के नाम लिख गये। माँ से वह सम्पत्ति चित्तरजन को मिली। इसमे से कुछ हिस्सा उनके दूसरे छोटे भाई प्रफुल्लरजन का भी था जिसे पीछे उन्होने खरीद लिया। रसारोड (भवानीपुर) का १४८ नम्बर का बडा मकान (जिसमे अन्त तक वह रहे) जिसे मृत्यु के समय भारतीय महिलाओ की चिकित्सा-सम्बन्धी-शिक्षा के लिए देश को दे गये, इसी प्रकार उन्हे मिला था, पर भाग्य चमकने पर भी वह किसी को न भूले।

भाग्य चमका !

× × × ×

१९०५ मे बगाल मे एक नया युग आरम्भ हुआ। तात्कालिक वायसराय लार्ड कर्ज़न ने, भारतमत्री की राय लेकर, बगाल को दो हिस्सो मे विभाजित कर दिया। उस समय बंगाल प्रान्त मे बिहार, उड़ीसा, बगाल, आसाम सब सम्मिलित थे। लार्ड कर्ज़न का कहना था कि शासन की सुविधा के लिए ऐसा किया जा रहा है। जनता की समझ में यह बात नही आई। यह खयाल फैल गया कि सरकार ने बगाल और उसमे उठते हुए राष्ट्रवाद को दबाने के लिए यह तरीका इख्तियार किया है। इस घटना का वह

उस तूफ़ानी युग में—

परिणाम हुआ जो वर्षो के प्रचार, सेवा और उपदेश से होना सम्भव न था। पहले पूर्व और पश्चिम बगाल के लोगो मे एक-दूसरे के लिए उपेक्षा के भाव थे, पर सरकार द्वारा बग-भंग होते ही सारा भेद-भाव उड गया। ७ अगस्त १९०५ को सरकार ने घोषणा की। सारे बगाल मे जैसे तूफान उठ खडा हुआ। छोडे-बडे, जमीदार-किसान सभी इस विरोध-प्रदर्शन में शामिल हुए। कासिम बाजार के महाराज सर मणीन्द्रचन्द्र नन्दी की अध्यक्षता मे, कलकत्ता के नागरिको की पहली विराट सभा हुई। उसमें प्रतीकार की भावना से सब प्रकार की विदेशी चीजो के बहिष्कार का निश्चय हुआ। कोई ऐसा स्थान न था जहाँ जनता का विरोध सामूहिक रूप में न प्रकट किया गया हो। सारे बगाल मे, बाजार के चौराहो पर, गाडी-के-गाडी विदेशी कपडे एकत्र करके जलाये जा रहे थे। सैकडों विद्यार्थियो ने अपने-आप, सरकारी स्कूलो का बहिष्कार किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रचलित और लोकप्रिय नाम 'गुलामखाना' पड गया। राष्ट्रीय शिक्षा की योजना बनाई गई, जो आगे अगस्त १९०७ ई० में भली भान्ति, दृढ नीव पर, 'बंगाल की राष्ट्रीय शिक्षा-सभा' ('नेशनल कौंसिल ऑव् एजूकेशन ऑव् बगाल) के नाम से स्थापित हुई।

उस समय के नेताओ ने जनना के इस उत्साह और भाव-प्रवाह का सदुपयोग किया। आन्दोलन को सगठित रूप मे चलाने का भार सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने हाथ मे लिया।[१] सभाओ मे नियमित रूप से घोषणाएँ की गई और प्रतिज्ञा-पत्र भरवाये गये। राष्ट्रीय घोषणा का यह रूप था —

१ सन् १८७६ ई० में श्री सुरेन्द्रनाथ और श्री आनन्दमोहन बोस ने कलकत्ता में 'इण्डियन असोसिएशन' नाम की एक संस्था स्थापित की थी। वग-भंग आन्दोलन का अधिकांश कार्य्य इसी संस्था द्वारा होता था। १८७६ से १९२० तक इस संस्था ने बंगाल की बडी सेवा की।

'चूँकि बगाली जाति के सार्वदेशिक विरोध पर भी सरकार ने बग-भग का निश्चय किया है, हम प्रतिज्ञा और घोषणा करते है कि हम एक जाति की हैसियत से, हमारे अन्दर जो भी शक्ति होगी, उसके द्वारा अपने प्रान्त के इस प्रकार टुकडे किये जाने के बुरे प्रभाव को दूर करने की कोशिश करेगे और अपनी जाति की एकता कायम रक्खेगे। प्रभु हमारी सहायता करे।"

इसी प्रकार स्वदेशी की प्रतिज्ञा यह थी —

"सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को साक्षी करके, और भावी सन्तति के सामने खडे होकर, हम आज यह पवित्र प्रतिज्ञा करते है। यथासभव, हम अपने देश की बनी चीज़ो का उपयोग करेगे और विदेशी वस्तुओ के उपयोग से दूर रहेगे। हे प्रभु! हमारी सहायता कर।"

सभाओ मे, तथा यो भी, दोनो प्रान्तो के लेफ्टीनेट गवर्नरो (छोटे लाटो) का मजाक उडाया जाता था और जगह-जगह सरकारी आज्ञाएँ एव सूचनाएँ तोडी जा रही थी। ब्रिटेन का, अँग्रेज जाति का, जो भी प्रभाव लोगो के दिल पर था वह देखते-देखते 'छू-मन्तर' होगया। जो बँगाली कल तक गोरो और पुलिस-मैनो को देखकर डरते थे, वही आज उनके सामने इस प्रकार तनकर खडे हुए कि आश्चर्य होता था,—मानो पुरानी, मरी हड्डियो से किसी ने नई जाति की सृष्टि कर दी हो। कई जिलो मे लिवरपुल के नमक तथा मैन्चेस्टर के कपड़ो का आना कतई बन्द होगया। कुछ ही महीनो मे अवस्था ऐसी हो गई कि जिन बगालियो पर पहरेवाले पुलिस-मैनो और यूरोपियनो का रोब गालिब था, वे सीधे-सादे बगाली को देखकर डरने लगे।

साहित्य समाज का दर्पण है। उसमे उसका मुंह चमकता है, और हृदय भी। तात्कालिक बगला-साहित्य मे उस युग के भावो का

प्रतिविम्व स्पष्ट दिखाई देता है। लेखको एव कवियो ने जनता मे राष्ट्रीय भावो का प्रचार करने मे वडा काम किया। वकिमचन्द्र के 'आनन्दमठ' । उपन्यास) का खूव प्रचार हुआ। उसका 'वदेमातरम्' गीत तो ऐसा प्रचलित हुआ कि आजतक भारत के राष्ट्रगीत के रूप में गाया जाता है। द्विजेन्द्रलालराय के नाटको, रवीन्द्रनाथ, द्विजेन्द्र, सरलादेवी चौधरानी तथा रजनीकान्त सेन के राष्ट्रीय गानो ने भी वडा काम किया। नये दृष्टि-कोण से इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये जिनमे मुसलमान-नरेशो के विरुद्ध होनेवाले आरोपो का खण्डन किया गया। श्री अक्षयकुमार मैत्रेय का 'सिराजुद्दौला' इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस आन्दोलन से साहित्य को और साहित्य से इस आन्दोलन को वडा वल मिला। रायवहादुर दीनेशचन्द्र और वगीय साहित्य-परिषद् ने पुराने ग्राम्य-गीतो का उद्धार किया। वँगलाभाषा-द्वारा शिक्षा दी जाय, इसपर चारो ओर जोर दिया जाने लगा। कितने ही पत्र-पत्रिकाएँ निकली।

साहित्य में भावो की परछाँई

साहित्य की भाँति ही चित्रकला मे भी अवनीन्द्रनाथ और गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने एक नये प्राच्य 'स्कूल' की स्थापना की। इस 'स्कूल' ने आगे चलकर सर्वश्री गागुली, नन्दलाल वोस, असित हलधर इत्यादि कितने ही अच्छे चित्रकार पैदा किये और आज तो ससार की चित्रकला मे इसका एक खास स्थान होगया है। इसी प्रकार विज्ञान के क्षेत्र मे जगदीशचन्द्र वसु (जो चित्तरजन के साले होते थे) ने अभूतपूर्व आविष्कार किये।

अन्य क्षेत्रो में—

मतलव यह १८५७ ई० से विदेशी शासन के कारण जो असन्तोष लोगो मे पैदा हो रहा था, और वर्ण-भेद तथा व्यापारिक नीति के कारण जो वढता गया था, वह सव इस आन्दोलन में, जिसे स्वदेशी-युग कहा

जाता है, दिखाई पडा। मजिस्ट्रेटो पर पुलिस का ऐसा प्रभाव था कि न्याय से लोगो का विश्वास उठने लगा था—यहाँ-तक कि न्याय-पद्धति की खुद उसी समय के कई जजो ने कडी टीका की है।[१] बात-बात पर उच्च सरकारी कर्मचारियो-द्वारा भारतीयो का अपमान किया गया। लार्ड मेकाले ने तो यहाँतक कह दिया कि **"जैसे मधुमक्खी में डंक होता है, भैंस के सींग होता है वैसे ही बंगाली में विश्वासघात की आदत होती है।"** इन सब बातो के कारण, लगातार एक-पर-एक कोई-न-कोई दु ख-पूर्ण घटना होती रहने से बगाल का हृदय क्षुब्ध हो रहा था।

असंतोष

इन नव जागरण को दबाने के लिए सरकार दमन, धर-पकड करती रही; पर प्रवाह नही रुका। इसी समय लार्ड कर्जन और लार्ड किचनर (भारतीय सेनापति) मे विरोध होने के कारण लार्ड कर्जन को इस्तीफा देना पडा। लार्ड मिण्टो नये वायसराय होकर आये। उन्होने इस जटिल स्थिति को सुधारने की कोशिश की, पर कुछ फल न हुआ। दमन से लोग इतने त्रस्त हो रहे थे कि कुछ क्रान्तिकारी युवको ने गुप्त समितियाँ बना ली। कई जगह बम-काण्ड हुए। शारीरिक शक्ति सुधारने के लिए अनुशीलन समितियाँ बनाई गईं। गीता-धर्म का प्रचार होने लगा। अरविन्द के बौद्धिक नेतृत्व से उग्र युवकदल को ऐसा उत्साह प्राप्त हुआ कि दो-तीन वर्ष के अन्दर उनमें एक सशस्त्र क्रान्तिकारी दल प्रकट होगया।

जब देश मे यह तूफान उठ रहा था तभी लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को देश-निकाला हुआ। पूना के नाटी-बधुओ का भी निर्वासन हो चुका था। बगाल के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार कितने ही युवक पकड़े गये।

१. जैसा कि श्री आबरी पार्सिवल पेनेल के फैसलों से प्रकट है।

उस समय चित्तरंजन दास की बैरिस्टरी चमकी। उन्होंने अनेक मामलो की पैरवी करके अपनी प्रतिभा का लोगो को अच्छा परिचय दिया।

वकालत में सफलता

इस समय उग्रवादी दल के अनेक समाचार-पत्र साफ-साफ सरकार का विरोध करने लगे थे। सरकार ने इन पत्रो को दबाने का निश्चय किया। पहला वार अंग्रेजी दैनिक 'वन्देमातरम्' पर हुआ। इसे चित्तरंजन, सुबोध मल्लिक तथा उनके एक और मित्र ने मिलकर निकाला था। इसका सम्पादन एक कमेटी करती थी जिनमे श्री अरविन्द घोष मुख्य थे।

अरविन्द और 'वन्देमातरम्'

अरविन्द बाबू बहुत छोटी अवस्था मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड भेजे गये थे। वहाँ लंदन के सेण्ट पाल स्कूल मे शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह कैम्ब्रिज गये और वहाँ से समय पर, 'क्लासिकल ट्रिपोज' मे प्रथम श्रेणी मे पास हुए। यह सम्मान अभीतक केवल एक और भारतीय को मिला है। इसके बाद वह सिविल सर्विस परीक्षा मे बैठे, उसमे भी पास हुए; पर अश्वारोहण मे निपुण न होने के कारण जगह न मिली। बाद में बडौदा कालेज के वायस-प्रिंसिपल की हैसियत से स्वदेश लौटे। जब बंग-भंग आन्दोलन शुरू हुआ तो वह कलकत्ता चले गये और वहाँ जाने के कुछ ही दिन बाद 'वंदेमातरम्' के सम्पादकीय विभाग मे काम करने लगे। उस समय तक वह बँगला का एक शब्द भी न जानते थे, न बंगालियो के जीवन का उन्हे कुछ ज्ञान था। फिर भी भारतीय-संस्कृति के अनुसार ही उन्होंने अपना जीवन बनाया था। 'सादा जीवन, ऊँचे विचार' उनका लक्ष्य था। इस समय तक उनके हृदय में वेदान्त के पुनरुत्थान का भाव जागृत हो चुका था। यद्यपि उस समय वेदान्त के विषय मे उनका ज्ञान बहुत थोड़ा था, पर उनके हृदय मे 'वेदान्त' शब्द

और उसके आध्यात्मिक स्वर के प्रति एक ऐसा अद्‌भुत आकर्षण पैदा हुआ और उसे उन्होने राजनीतिक आकाक्षाओ के साथ कुछ इस प्रकार मिला दिया कि युवक-हृदय पर उसका बडा प्रभाव पडा। 'वन्देमातरम्' मे 'नया मार्ग' (The New Path—दि न्यू पाथ) के नाम से वह इस राष्ट्रीय वेदान्त-धर्म पर लिखने लगे। ऐसे ही समय सरकार ने उसपर मुकदमा चलाया, पर सरकार को सफलता न मिली। इस मुकदमे से अरविन्द बाबू और उनके वकील चित्तरजन का नाम जनता मे और भी फैल गया।

'सन्ध्या' और 'युगान्तर'

ऊपर कही इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि अग्रेजी 'बदे-मातरम्' के साथ, 'सन्ध्या' और 'युगान्तर' नाम के दो और पत्र बगला मे क्रमश श्री ब्रह्मबाधव उपाध्याय और श्री भूपेन्द्रनाथदत्त के सम्पादन मे निकल रहे थे। इन दोनो पर भी सम्पादक की हैसियत से राज-द्रोह का मुकदमा चलाया गया। ब्रह्मबाधव बाबू यद्यपि एक ईसाई घराने मे पैदा हुए थे और स्वय भी ईसाई धर्म उन्होने ग्रहण किया था, फिर भी इस समय वह नवीन हिन्दू-शक्ति के समर्थक और सरकार के प्रबल विरोधी थे। भूपेन्द्रनाथ दत्त स्व० स्वामी विवेकानन्द के भाई थे। उन्होने कतिपय प्रतिभाशाली युवक लेखको के सहयोग से क्रान्ति का भाव बगाल के युवको मे फैलाना शुरू कर दिया था। ब्रह्मबाधव बाबू और भूपेन बाबू दोनो की कलम मे बडी ताकत थी और दोनो बडी प्रभावशाली बगला लिखते थे। जब इनपर मुकदमा चला तो इनकी ओर से चित्तरजन पैरवी करने को नियुक्त हुए। ब्रह्मबाधव बाबू तो मुकदमा समाप्त होने के पहले ही चल बसे। भूपेन्द्र बाबू की पैरवी मे चित्तरजत ने जिस प्रतिभा का परिचय दिया उससे मजिस्ट्रेट और जनता दोनो को दग होना पडा।

यद्यपि इस मामले मे भूपेन बाबू को एक वर्ष की कडी कैद की सजा हुई, पर चित्तरजन की योग्यता का सिक्का लोगो पर बैठ गया।

इन दिनो विद्रोह के जिन भावो का प्रचार हो रहा था, उनका युवक-हृदय और मस्तिष्क पर प्रभाव पडने लगा था। ३० अप्रैल १९०८ ई० को खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नामक दो युवको ने मुजफ्फरपुर (बिहार) के जिला जज श्री किंग्सफर्ड की गाडी का अनुमान कर एक गाडी पर बम फेंका। श्री किंग्सफर्ड पिछले साल, कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट की हैसियत से, कई पत्र-सम्पादको को कडी सजा दे चुके थे और उन्होने सुशील नामक एक लडके को कोडे भी लगवाये थे। ये लोग उसीका बदला लिया चाहते थे, पर जिस गाडी को उन्होने श्री किंग्सफर्ड की समझा वह असल मे उस समय के लोक-प्रिय यूरोपियन श्री प्रिंगल केनेडी की थी और इस बम-काण्ड से उनकी पत्नी और पुत्री की हत्या हुई। इस घटना से बडा तहलका मचा। पुलिस ने शीघ्र ही इन्हे गिरफ्तार किया तथा खोज करने पर पुलिस को मानिकतल्ला (कलकत्ता) के ३२ मुरारीपुकर रोड मे एक बम फैक्टरी का भी पता चला। २ मई को इस सम्बन्ध में, अरविन्द के छोटे भाई, वारीन्द्रकुमार घोप, जो उस क्रान्तिकारी सगठन के मुख्य नेता बताये गये, तथा अन्य कुछ युवक गिरफ्तार किये गये। कुछ ही दिनो के अन्दर और भी कितने ही आदमी गिरफ्तार हुए—इनमे श्री अरविन्द घोप भी थे। मुजफ्फरपुर के बम-काण्ड और मानिकतल्ला बम फैक्टरी के सम्बन्ध मे ३६ युवक गिरफ्तार हुए। इस भण्डाफोड से जनता मे एक अजीब तहलका मचा, क्योकि अब तक जनता को ऐसी बातो का पता न था। इन युवको मे से कुछ ने कई बाते स्वीकार कर ली। अभियुक्तो पर सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने एव

बिस्फोट

उसके लिए षड्यन्त्र करने का चार्ज लगाया। १९ मई को अलीपुर के मजिस्ट्रेट श्री बीचक्राफ्ट के सामने मुकदमा आरम्भ हुआ। अक्तूबर १९०८ ई० मे मामला सेशनजज के सामने आया। अरविन्द की सम्मति से चित्तरजन ने उनकी पैरवी का काम अपने जिम्मे लिया। इस मुकदमे मे चित्तरजन ने अपनी प्रतिभा और जिरह करने की अपूर्व शक्ति का ऐसा परिचय दिया कि जज, जनता और वकील सब दग रह गये। यह एक अत्यन्त जटिल और बडा मुकदमा था। इसमे २०६ गवाह तलब किये गये, ४००० चीजे 'फाइल' की गईं। बम, पिस्तौल तथा अन्य प्रदर्शित वस्तुएँ—एक्ज़हिबिट्स—ही ५०० थे। अरविन्द के विरुद्ध उनके भाषणो, लेखो एव पत्रो के बल पर अभियोग लगाया गया कि वह षड्यन्त्र-कारियो के मन्तव्य को उत्तेजन देने के खयाल से भारत की पूर्ण स्वाधीनता के भावो का प्रचार करते रहे है। सुप्रसिद्ध श्री ई० नार्टन सरकार की तरफ से मुकदमा चला रहे थे। चित्तरजन ने बहस मे कहा कि "अरविन्द की रचनाओ का बिलकुल गलत ढग पर अर्थ लगाया गया है। वह एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति के पुरुष है, वेदान्तवाद के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्न कर रहे है। उनके राजनीतिक विचार भी इसी वेदान्तवाद पर आश्रित है। वह स्वतत्रता का उपदेश करते है। उनका कहना है कि 'मनुष्य की मुक्ति उसी के अन्दर से हो सकती है, क्योकि उसके अन्दर ही ईश्वरत्व प्राप्त करने की शक्ति मौजूद है। इसी प्रकार उनका विश्वास है कि राष्ट्र की भी एक आत्मा होती है—देश के अन्दर भी उसका अपना एक व्यक्तित्व होता है। उसे देश स्वय ही विकसित कर सकता है, कोई दूसरी बाहरी शक्ति उसे नही प्राप्त करा सकती, कोई विदेशी इसमे सहायक नही हो सकता। राष्ट्र

मानिकतल्ला केस में चित्तरंजन

अरबिन्द की शिक्षा

अपने-आप, अपनी स्फूर्ति और सहायता के बलपर ही विकसित होता है।' यही अरविन्द की शिक्षा का उद्देश्य है। उसमे हिंसा की नही, निष्क्रिय प्रतिरोध की शिक्षा है। उनके मत से बम नही, कष्ट-सहन और त्याग से देश का उद्धार होगा। वह गुप्त षड्यन्त्रो और हिंसा का विरोध करते और युवको को कष्ट-सहन करने का आदेश करते है। उन्होने अपने किसी भाषण मे, किसी रचना मे, हिंसा का आश्रय लेने को नही कहा। उनका कहना इतना ही है कि 'यदि तुम समझते हो कि सरकार के किसी कानून से तुम्हारे या राष्ट्रीय विकास मे बाधा पड़ती है तो उसे भग करो और उसका दण्ड प्राप्त करो, उसके लिए कष्ट सहो। तुम अपने अन्त करण के सामने, अपने ईश्वर के सामने, इसके लिए जवाब-देह हो।' अरविन्द की शिक्षा का सार यही है। क्या ऐसी शिक्षा सारे ससार मे नही दी जाती रही है ? क्या यह केवल इसी देश की, इसी आन्दोलन की, जिसे मि० नार्टन ने ऐसे बुरे शब्दो मे याद किया है विशेषता है ? क्या इग्लैण्ड की जनता ने बार-बार इसे नही किया है ?

अरविन्द ने देखा कि विश्वास खोकर ही हमने सब कुछ खोया है इसलिए जब-जब उन्होने स्वतन्त्रता का उपदेश किया तब-तब यह कहा कि अपने मे विश्वास रखो। जिसे अपने में विश्वास नही है वह कभी मुक्ति नही प्राप्त कर सकता। इसीलिए अरविन्द अपने देशवासियो से कहते है—'तुम कायर नही हो, तुम अयोग्य एव अशक्त मनुष्य नही हो, तुम्हारे अन्दर ईश्वरीय ज्योति है। अपने अन्दर विश्वास रखो और श्रद्धा के साथ अपना लक्ष्य प्राप्त करो।"

उपस्थित किये गये विरुद्ध प्रमाणो का ज़िक्र करके उन्होने कहा कि, "यदि आप पहले से अरविन्द को दोषी मान लेते है तो उनके पत्रो मे अवश्य आपको ऐसे वाक्य मिल जायँगे जिनसे उनका अपराध प्रमाणित

होगा; पर यदि आप पहले से ही ऐसी धारणा बनाकर न चले तो उनके दूसरे अर्थ भी लगाये जा सकते है।"

अरविन्द के विरुद्ध सबसे जबर्दस्त प्रमाण उनके छोटे भाई बारीन्द्र-कुमार की निम्नाकित चिट्ठी थी--

Dear Brother,

Now is the time, please try and make them meet for our Conference We must have sweets all over India ready made for imergencies I wait here for your answer

Your affectionate
Barindra Kumar Ghose

प्रिय बधु,

यही समय है, कृपया प्रयत्न कीजिए और उन सबको हमारे सम्मेलन मे एकत्र कीजिए। आवश्यकता के समय के लिए हमे सारे भारत मे मिठाइयाँ तैयार रखनी चाहिएँ। मै यहाँ आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

आपका स्नेह-पात्र
बारीन्द्र कुमार घोष

सरकारी वकील का कहना था कि इसमे 'स्वीट्स' (मिठाइयो) से मतलब बम से है जिसका समर्थन अन्य प्रमाणो से भी होता है। चित्तरजन

पत्र जाली तो नही है ?

ने बहस में कहा कि 'यह पत्र जाली है। बगाल में कोई छोटा भाई बडे भाई को लिखे पत्र मे अपना पूरा नाम नही देगा। इसके अलावा हमारी जातीय प्रथा के अनुसार बारीन्द्र ने अरविन्द को 'मेजदा' लिखा होता न कि 'प्रिय भाई' ('डियर ब्रदर') जैसा कि अग्रेजो का ढग है। इसके अलावा बारीन्द्र को अग्रेजी की बहुत अच्छी शिक्षा मिली है। ऐसा आदमी

emergencies शब्द को imergencies कभी न लिखता। जाल के इन आन्तरिक प्रमाणो के अलावा तलाशी के समय यह पत्र नही मिला था, पीछे से पुलिस-द्वारा घुसेडा गया।'

चित्तरजन ने अपने अन्तिम भाषण मे तात्कालिक पुलिस की कार्रवाइयो पर जजो की सम्मतियाँ उद्धृत करके दिखाया कि झूठे पत्र तैयार करना उसके बाये हाथ का खेल है। मुकदमे के अन्त मे जज और असेसरो को सम्बोधन करके उन्होने जो भाषण दिया था वह अद्भुत है। उसकी भाषा इतनी जोरदार, शब्द इतने शक्तिमान और कहने का ढग ऐसा निराला कि हृदय चित्तरजन की प्रतिभा पर उछलने लगता है।

उनके इस भाषण का मजिस्ट्रेट पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होने अरविन्द को निर्दोष कहकर छोड दिया और चित्तरजन की योग्यता की बडी प्रशसा की। उस समय से चित्तरजन की गिनती देश के सर्वश्रेष्ठ वकीलो मे होने लगी और उनके पास इतना काम आने लगा कि उन्हे प्राय बहुत-सा काम अस्वीकार कर देना पडता था। वकालत मे उनकी सफलता का एक कारण यह भी है कि वह जिस मुकदमे को लेते थे उस पर रात-दिन परिश्रम करते थे। प्राय सोचते-सोचते रात बीत जाती थी। उतना ही काम लेते थे जितना अच्छी तरह कर सकें। जिरह मे वह अद्वितीय थे। कैसे भी प्रबल विरोधी को जिरह मे वह टुकडे-टुकडे करके फेंक देते थे। ज्यादातर वह फौजदारी के ही मुकदमे लेते थे; पर जब दीवानी के मुकदमे हाथ मे लेते तो उसमें भी अपनी प्रतिभा चमका देते थे। १९१४ मे डुमराँव का मामला हाथ मे लिया और एक मामूली गरीब आदमी को अपनी प्रतिभा के बलपर डुमराँव की गद्दी पर बैठा दिया। तबसे दीवानी के मामलो मे भी उनकी योग्यता का सिक्का बैठ गया।

१९१३ मे जब उनकी प्रैक्टिस—वकालत—खूब चमक गई, उन्होंने हाईकोर्ट के सामने दर्ख्वास्त दी कि हमारे दिवालियेपन की घोषणा रद्द कर दी जाय। उन्होंने पिता का और अपना पावना कौड़ी-कौडी चुका दिया। कानूनन उन्हे एक पैसा देने की ज़रूरत न थी; पर ईमानदारी ने उन्हे ऐसा करने पर मजबूर किया। उनके इस नैतिक कार्य का असर हाईकोर्ट के जजो पर भी हुआ और जस्टिस फ्लेचर ने इसकी तारीफ भी की।

ईमानदारी

सन् १९२० ई० मे उनकी आय प्राय. ५००००) पचास हज़ार रुपये मासिक हो गई थी। उनमे दृढ इच्छा शक्ति थी; वह जज या अपने विरोधी के सामने एक इच नही झुकते थे और उनके तर्क की विजयिनी शैली के सामने विरोधी (hostile) जज भी कुछ कहते हिचकते थे और अन्त मे झुक जाते थे। शक्ति के सामने झुकने का उनमे कोई चिन्ह न था। वह जजो के सामने इस तरह बोलते थे जैसे कोई अपने साथियो से बोल रहा है। जो विषय जितना ही कठिन होता उसमे वह उतनी ही अधिक मात्रा मे अपनी योग्यता प्रकाशित करते।

महान् वकील

इस प्रकार जिन दिनो चित्तरजन की प्रतिभा वकालत के क्षेत्र मे दिन-दिन चमकती जा रही थी उन दिनो देश का राजनीतिक वातावरण अत्यन्त अस्थिर और अशान्त हो रहा था। १९०८ मे देश की जो स्थिति थी उसकी एक झलक हम ऊपर दिखा चुके है। १९०८ के बाद भी सरकार दमन करती ही गई। अखबारो को दबाने के लिए, विस्फोटक द्रव्यो के लिए तथा और कितनी ही बातो के लिए कानून बनाये गये। अनेक स्थानो पर सभाओ का करना गैर-कानूनी करार दिया गया। ११ दिसम्बर १९०८ ई० को

दमन की लाठी

'स्पेशल क्राइम्स ऐक्ट' पास हुआ जिसके अनुसार राजनीतिक कैदियो के 'समरी ट्रायल' हो सकते थे और सभाओ का भग किया जा सकता था। इस प्रकार के कानून तो बिना किसी रोक-टोक के बनाये जा रहे थे, पर जन-हितकर बिलो का विरोध होता था। गोखले का 'प्रारम्भिक शिक्षा बिल' सरकारी सदस्यो के विरोध के कारण पास न हो सका। १८१८ ई० के बगाल रेगुलेशन की तीसरी धारा के अनुसार लोग निर्वासित किये गये। श्रीकृष्ण कुमार मित्र, श्री अश्विनीकुमार दत्त इत्यादि की यही दशा हुई। तात्कालिक भारत-मत्री लार्ड मार्ले ने अपने 'सस्मरण' (Recollections) के दूसरे भाग मे स्वय ही उस समय की दमन-नीति की निन्दा की है। उन्होने अपनी डायरी मे उस पत्र को उद्धृत किया है जो उन्होंने वायसराय को लिखा था। उसमे उन्होने लिखा है—

"यह रूसी ढग है कि झुण्ड-के-झुण्ड आदमियो को साइबेरिया भेज कर क्रान्तिकारियो के होश ठिकाने लगा दिये जायँ। यह नीति रूस में अच्छी तरह नही चली। उससे ट्रिपोफो के जीवन की रक्षा नही हुई, न वह रूस को ड्यूमा से ही बचा सकी।"

मतलब यह कि सब तरफ दमन का सहारा लिया गया। यहाँतक कि इग्लैण्ड का इतिहास पाठ्य-क्रम से निकाल दिया, क्योकि अधिकारियो ने समझा कि उसे पढकर विद्यार्थियो मे स्वाधीनता की नवीन प्रेरणा पैदा होती है; पर इन बातो से स्वाधीनता की भावना कैसे रोकी जा सकती थी? बाढ जो उठी तो आगे ही बढती गई। जनता मे राष्ट्र-पूजा का एक नया भाव उमड रहा था और यह उस दिन देखने में आया जिस दिन कन्हाईलाल दत्त और सत्येन्द्रनाथ बोस को फासी हुई। कलकत्ता के सेण्ट्रल जेल से जब इनके शव श्मशान की ओर ले जाये जा रहे थे तो कालीघाट की सडको पर दोनो ओर कम-से-कम ५०००० पचास हजार

आदमी उनकी चरण-धूलि लेने के लिए जमा थे। यह हिंसको की हिंसा का स्वागत नही था, उनकी शहादत के प्रति आदर-प्रदर्शन था। अधिकारी देखकर दंग रह गये और तब से यह निश्चय हुआ कि ऐसे लोगो का शव सस्कार जेल मे ही हो।

दुख की बात तो यह है कि यह सब दमन एक उदार राजनीतिज्ञ और श्रेष्ठ विचारक मार्ले के मन्त्रित्व काल में हो रहा था। मार्ले बड़े दृढ-निश्चयी और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे; पर उनके हाथ बँधे थे। फिर भी उन्हे यह समझते देर न लगी कि कुछ सुधार किये बिना काम न चलेगा। इसलिए उन्होने सुधार-सम्बन्धी एक बिल तैयार किया और फरवरी १९०९ मे उन्होने पार्लमेण्ट से भारतीय कौसिलो के सुधार की योजना पास करा ली।

१९१० ई० के अक्तूबर और नवम्बर मे क्रमश लार्ड मिण्टो (वायसराय) और लार्ड मार्ले (भारत-मन्त्री) ने इस्तीफा दे दिया। इनके स्थान पर क्रमश. लार्ड हार्डिञ्ज और लार्ड क्रयू की नियुक्ति हुई। नियुक्ति की बात चलने के समय से ही दोनो सज्जन गुप्त-रूप से यह निश्चय कर चुके थे कि बग-भग आन्दोलन तबतक नही दब सकता जबतक कि दोनो टुकड़े फिर से मिला न दिये जायँ। उधर सम्राट एडवर्ड सप्तम के देहावसान के बाद वर्तमान सम्राट जार्ज पंचम गद्दी पर बैठे। वह राज्याभिषेक के उत्सव के लिए भारत बुलाये गये। उनके द्वारा घोषणा कराके बंगाल के दोनो भागो को मिला दिया गया, बिहार-उड़ीसा एक स्वतन्त्र प्रान्त बनाया गया। इसी प्रकार आसाम भी एक अलग प्रान्त हुआ। राजधानी कलकत्ता से दिल्ली लाई गई।

वायसराय और भारत-मन्त्री का इस्तीफा

दिसम्बर १९१२ ई० मे, हाथी पर नवीन राजधानी मे प्रवेश करते

समय, लार्ड हार्डिञ्ज एव लेडी हार्डिञ्ज पर बम फेका गया। इससे दोनो घायल हुए, महावत मर गया। वायसराय तुरन्त अस्पताल पहुँचाये गये और उनके स्थान पर उत्सव का सारा काम उस समय के अर्थ-सदस्य सर गाई फ्लीटउड विल्सन ने किया।

बम-काण्ड

इधर यह सब चल रहा था, उधर यूरोप की राजनीतिक अवस्था बडी जटिल होती जा रही थी। अत मे युद्ध का शख-नाद हुआ। भीपण युद्ध छिड गया। उस समय भी यद्यपि क्रान्तिकारियो का एक दल ऐसा था जो हर सम्भव उपाय से सरकार का विरोध करता रहा, पर सब मिलाकर देश ने इस कठिनाई मे ब्रिटेन का साथ दिया। हजारो आदमी अपनी युवती स्त्रियो, बूढी माताओ एव नन्हे बच्चो को छोडकर सेना मे भरती हुए, युद्ध मे लडने गये और वही जूझ गये। भारतीय सैनिको की वीरता का लोहा सभी मान गये। तोपो की मार मे बढ-बढकर उन्होने शत्रुओ को परास्त किया। फ्रास की युवतियाँ उनकी वीरता की कहानियाँ अपने बच्चो से कहती है। इतने पर भी भारत की गरीबी का खयाल हमारे शासको ने न किया। वह इस जर्जर गाय को दुहते ही गये। १९१७ ई० में कौसिल से एक अरब पचास करोड रुपया भारत-द्वारा युद्ध फण्ड मे सहायता-स्वरूप देने का प्रस्ताव पास कराया गया।

युद्ध का शखनाद

मजा तो यह है कि जब भारत इस प्रकार आडे समय मे ब्रिटेन का साथ दे रहा था तब 'भारत-रक्षा कानून' ('डिफेस ऑव् इण्डिया ऐक्ट') के अन्तर्गत सैकडो युवक नजरबन्द कर लिये गए। सरकारी नीति के कारण असन्तोप बढता गया और क्रान्तिकारी दल ने उसका लाभ उठाया। डकैतियाँ होने लगी। कई अग्रेज अफसरो को मारने और विदेशो से अस्त्र-शस्त्र

इधर फूल उधर त्रिशूल

मँगवाकर विद्रोह करने का भी प्रयत्न किया गया; पर समय पर षड्यन्त्र की प्राय सभी योजनाये सरकार को मालूम हो गई। इनका विशद वर्णन रौलट कमेटी की रिपोर्ट मे मिलता है।

चित्तरंजन का राजनीति में प्रवेश

१९०५ ई० मे भारत मे जो नवीन चेतना आई और जो महायुद्ध के विकराल समय मे भी बराबर बढती गई वह चित्तरजन के हृदय पर बराबर असर डाल रही थी। भौतिकवाद के बढते हुए प्रवाह मे भारत ने धक्के-पर-धक्के खाकर फिर अपनी भूली हुई आध्यात्मिक चेतना को पाया। अरविन्द ने अध्यात्म को जिस प्रकार राजनीति से मिला दिया था उसका असर भी चित्तरजन पर पडा था। १९१७ मे कलकत्ता मे बगाल प्रान्तीय कानफ्रेन्स का अधिवेशन हुआ। चित्तरजन ही उसके सभापति थे। उन्होने एक अत्यन्त उत्साहप्रद और ओजस्वी भाषण दिया जिसमे उन्होने आधुनिक भौतिकवाद के बढते हुए प्रवाह के विरुद्ध ज़बर्दस्त अपील की और कहा कि उपनिषद् और बुद्ध के ज़माने से भारत ससार को प्रकाश देता रहा है और आज इस समय भी भारत को अपना सन्देश देना होगा। बगाल के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड रोनाल्डशे ने अपनी पुस्तक 'आर्यवर्त्त का हृदय' (Heart of Aryavarta) मे चित्तरजन के इस भाषण का सार इस प्रकार दिया है—

'आर्यवर्त्त का हृदय'

"आज देश की दशा प्राचीन बगाल की दशा के बिलकुल विपरीत है। यह दुर्दशा इसलिए है कि पूर्व और पश्चिम के आदर्शों के सघर्ष से उठी धूल मे हम अपने ईश्वरत्व को, अपनी दिव्यता को भूल गये है और नये-नये अद्भुत देवो की पूजा करने लगे है।... ...जब अग्रेज़ हमारे देश मे आये तब हमारा पतन हो रहा था; हमारी जीवन-शक्ति क्षीण हो गई थी और हम प्राचीन की

व्यगमय छाया के ममान रह गये थे। नवद्वीप का प्राचीन पाण्डित्य और ज्ञान केवल स्मरण की वस्तु रह गया था; जैसा कि दुर्बल के साथ सदा होता है, हमारे साथ भी हुआ। हमने अग्रेजो की नकल शुरू कर दी। अग्रेजी शासन-पद्धति, अग्रेजी वेश-भूषा, सस्कृति, सभ्यता के पीछे हम दीवाने हो गये, पर समय आगया है जब हमे माया की यह मोहनी दूर कर देनी होगी। बकिम मातृमूर्ति को मातृभूमि मे स्थापित कर गये है। उन्होने सवको पुकार कर कहा है—'देखो, यह हमारी माता है—सुजला, सुफला, मलयजशीतला, शस्यश्यामला माता। इसकी पूजा करो और अपने घरो मे इसे स्थापित करो।'··· राष्ट्र-निर्माण के इस कठिन समय मे हमे सबसे पहले भोग के युरोपीय आदर्श का त्याग करना होगा और त्याग का प्राचीन आदर्श अपनाना होगा। शिक्षा, सस्कृति, कृषि और व्यापार सबका पुनरुत्थान इसी प्रकाश में होगा। प्राचीन समाज-व्यवस्था के साथ इनके सम्बन्ध पर विचार करना पडेगा। इसके साथ ही हमें अपने सारे विचारो, कार्यो एव प्रयत्नो को धर्म की दृष्टि से देखना होगा, क्योकि विना इसे सतत सामने रक्खे हम सब वस्तुओ को गलत रूप मे देखेंगे। हमे उन्ही बातो को स्वीकार करना चाहिए जिनका हमारे अस्तित्व के साथ सामञ्जस्य हो और उन सब बातो को पूर्णत छोड देना चाहिए जो हमारी आत्मा के लिए बाहरी हो। जो-कुछ हमारे पास पहले था, शक्ति का वह स्थायी स्रोत अब भी हमारे पास है। बगाल की वे शक्तिमान नदियाँ, जो प्राचीन समय मे वहती थी, आज भी उसी शान से वह रही है। प्राचीन हिमालय आज भी, स्वर्ग की ओर सिर उठाये, गौरव-पूर्वक खडा है। बगाल की भूमि वही है—हमारी है। हमें केवल उसमे जीवन डालना है। आत्मा को फिर से जागृत करना है।· ··
जैसा कि हमारी जातीय सस्कृति और सभ्यता का ढंग था हमे जीवन को

सम्पूर्ण रूप मे देखना चाहिए, टुकडे-टुकडे करके नही। हमने यूरोप से विचार उधार ले लिये है, पर हम समझ भी नही पाये है कि हमने क्या उधार लिया है। हमारी असफलता का यही कारण है। जिसे हम राजनीति कहते है उससे सम्पूर्ण बगाल, सम्पूर्ण बगाली जाति का कोई जीवित सम्बन्ध नही रह गया है। क्या कोई हमे बतलायेगा कि हमारे राष्ट्रीय जीवन का अमुक भाग तो राजनीति से सम्बन्ध रखता है, अमुक भाग अर्थ-शास्त्र से और अमुक समाज-शास्त्र से ? क्या हमे जीवन के इस प्रकार टुकडे-टुकडे करने चाहिएँ ? हमे इस प्रकार के कल्पित जीवन-खण्डो के बीच क्या विघ्नकारी दीवारे खड़ी करनी चाहिएँ ? और क्या हमे अपना राजनीतिक कार्य एक कल्पित सकुचित दायरे मे रोक रखना चाहिए जिसे हमने कल्पित दीवारो से घेर रक्खा है ? क्या हमे अपने राजनीतिक मामलो पर सम्पूर्ण देशवासियो की दृष्टि से विचार न करना चाहिए ? और जबतक हम जीवन को इस प्रकार उसकी सम्पूर्णता मे न देखे तबतक हम सत्य को कैसे पा सकेगे ?"

राष्ट्रीय पुनरुत्थान की दस शर्त्तें

यह भापण चित्तरजन के प्रत्यक्ष राजनीतिक जीवन का गौरवमय प्रारम्भ था। इस भाषण मे चित्तरजन ने राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए दस बातो का उल्लेख किया था—

१ हमे इतिहास की शिक्षाओ पर ध्यान देना चाहिए।

२. यूरोपीय उद्योगवाद का मार्ग हमे त्याग देना चाहिए।

३. हमे गाँवो के ह्रास को और उसके फल-स्वरूप शहरो मे जनसख्या की वृद्धि को रोकना चाहिए।

४ इसके लिए हमे गाँवो को फिर से बसाना चाहिए।

५ लेकिन हमारे गाँव तब बस सकते है जब हम उन्हे स्वच्छ और

स्वास्थ्य-प्रद बनावे और कृषक को रोगमुक्त करके उन्नति का मौका दे।

६ कृषको को लाभदायक हस्तशिल्प की शिक्षा देनी चाहिए।

७ हमें बगाल की प्राचीन व्यापारिक और औद्योगिक उपज का अन्वेषण करना चाहिए।

८ हमें सारे देश मे छोटी-छोटी व्यापारिक सस्थाये खोलनी चाहिएँ जिनका उद्देश्य ऐसे गृह-उद्योगो को उत्तेजन देना हो जिनमे हमारे देशवासी स्वभावत कुशल है।

९ हमे अनिवार्य चीजो को छोड अन्य विदेशी चीजो का इस देश मे मँगाना बन्द कर देना चाहिए।

१० जिन गृह उद्योगो के बढने की आशा हो, उनके लिए सस्ती पूँजी मिल सके, इसका हमे प्रबन्ध करना चाहिए और इस दृष्टि से विभिन्न जिलो मे बैंक खोलने चाहिएँ।

उन्होने यह भी बताया—

"१ तुम्हारी शिक्षा सच्ची होनी चाहिए।

२ तुम्हारा ज्ञान शब्दो का नही, वस्तुओ का ज्ञान हो।

३ तुम्हारी शिक्षा तुम्हारी राष्ट्रीय आत्मा के अनुकूल हो और उसकी वृद्धि करनेवाली हो।

४ तुम्हारी शिक्षा का माध्यम बगाली हो।"

नवीन युग के आगम की सूचना

चित्तरजन का राजनीति मे प्रवेश यही से होता है। भारत मे एक नये आत्म-विश्वास का उदय होने लगा था। लोग समझने लगे थे कि राष्ट्र का अभ्युत्थान जीवन की भाति आन्तरिक विकास एव आत्म-विश्वास से ही हो सकता है। इसी समय पार्लमेण्ट ने ब्रिटेन की भारतीय नीति के

घूमकर नवीन राष्ट्रधर्म की शिक्षा लोगो को दी। चटगाँव के एक भाषण मे उन्होने माडरेटो पर ज़बर्दस्त आक्रमण किया और उनके नेता सुरेन्द्र-नाथ को 'रगा हुआ' ('इम्पोस्टर'—Imposter) तक कह दिया।

अबतक राजनीतिक क्षेत्र मे चित्तरजन केवल दर्शक थे। अब से वह उसमे वरावर भाग लेने लगे, प्रत्येक कॉग्रेस मे शरीक होने लगे और अपनी भाषण-शक्ति एव प्रभाव के कारण प्राय. सभी महत्त्वपूर्ण कमेटियो मे चुने जाने लगे। इस प्रकार देश में बढती हुई आत्म-विश्वास की नई लहर का उन्होने नेतृत्व किया। भारतीय राजनीति में अनेक भावो का उदय होने लगा और वह अपने मिश्रित भाव प्रवाह के कारण अध्ययन की एक चीज़ वन गई।

इस समय भारतीय राजनीति के क्षेत्र में दो भाव-धारायें बड़े प्रबल वेग से आईं। एक तो लोगो की यह भावना कि भारत को स्वभाग्य-

राजनीति की दो भाव-धारायें

निर्णय का अधिकार मिलना चाहिए। यह समग्र विश्व और विशेषत. एशिया मे फैलती हुई स्वतन्त्रता के प्रवाह का फल था। दूसरी भावना व्यावहारिक थी और उसका उद्देश्य शासन-सम्बन्धी दोषो को दूर करना था। ऐसे मनोवैज्ञानिक अवसर पर चित्तरजन ने अपना आत्म-विश्वास और अपनी नई फिलासफी लेकर राजनीति के तूफानी क्षेत्र मे प्रवेश किया।

× × × ×

साधारणत राज्य के दो कर्तव्य माने जाते है। एक जनता के जानो-माल की रक्षा करना, कानून का तथा अन्य ऐसे नियमो का पालन कराना

राज्य के दो कर्तव्य

जो समाज के सगठित विकास के लिए आवश्यक है। दूसरा है—जनता की प्रत्येक दिशा में उन्नति करना—उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक अवस्था का विकास

करना। थोडे मे प्रजा मे सब प्रकार से आन्तरिक सन्तोष और शान्ति की स्थापना एक प्रकार से देखे तो यह दूसरा कर्तव्य पहले से भी अधिक आवश्यक है, पर अग्रेज शासको ने कभी इस देश के लाभ को अपना लाभ न समझा। उनका अपना दूसरा देश था, पहले वह उसका लाभ देखते थे आजकल यही वात चली आ रही है। इसलिए स्वशासन मे जनता की जैसी उन्नति हो सकती है, नही हुई। अशिक्षा, गरीबी, रोग, वेकारी, कृषको की दुरवस्था ज्यो-की-त्यो बनी है, बल्कि पहली बात को छोड अन्य बातो मे तो वृद्धि होती जा रही है। इसलिए जब भारत मे काग्रेस की स्थापना हुई तब उसका उद्देश्य यही था कि जन-हितकर कार्यो की ओर सरकार का ध्यान दिलावे, पर ज्यो-ज्यो देश मे राष्ट्रीय भावना जागृत हुई त्यो-त्यो लोग यह समझने लगे कि विदेशी शासन मे यह असभव-सा है; क्योकि दोनो के स्वार्थ टकराते है। १९०६ ई० की कलकत्ता काग्रेस मे दादाभाई नौरोजी ने पहली वार 'स्वराज' शब्द का उपयोग किया। उनके 'स्वराज' का अभिप्राय यही था कि साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को स्वायत्तशासन का अधिकार मिलना चाहिए। तब से बहुत दिनो—१९२० ई०—तक आन्दोलन का ध्येय यही बना रहा। राजनीतिक जागरण के साथ लोगो मे एक यह भाव भी जागृत हुआ कि बुरा हो या भला अपना शासन-स्वराज—अच्छे विदेशी शासन से अच्छा है। उन अनेक राजनीति-शास्त्रियो की पुस्तको एव विचारो का भारतीय

विदेशी शासन से हानि

हृदय पर प्रभाव पड रहा था जिन्होने प्रतिपादित किया है कि 'स्वराज्य सुराज्य से बढकर है'[१] क्योकि जैसा श्री नेविसन ने कहा है "विदेशी शासन अच्छा हो या बुरा उसका सबसे बुरा फल यह होता कि राष्ट्र का व्यक्तित्व नष्ट

१. Self-government is better than good government

हो जाता है।" इस प्रकार भारत के राजनीतिक क्षेत्र मे धीरे-धीरे दो विचार धाराये आई—एक शासन मे सुधार करने को उत्सुक थी और इस दृष्टि से अच्छे आधार पर सुशासन की स्थापना के लिए शासन को भारतीय बनाना चाहती थी। १९१७ तक करीब-करीब यही विचार-धारा चलती रही। एक-दो आदमी दूसरी दृष्टि की ओर भी ध्यान आकर्षित करते रहे—अरविन्द इत्यादि का कुछ ऐसा ही विचार था—पर सामूहिक रूप से उसपर लोगो ने ध्यान नही दिया। १९१९ के बाद लोकमान्य (तिलक) एव देशबन्धु इत्यादि ने पहली भावना को बिलकुल छोड दिया और दूसरी विचार-धारा को बडे जोरो से देश के सामने रक्खा। इन लोगो का कहना यही था कि 'विदेशी शासन मे हमारा राष्ट्रीय—जातीय—व्यक्तित्व नष्ट हो गया है। हम अपने को भूल गये है, हम शासको की सस्कृति की धारा मे बहे जा रहे हे।' उन्होने शासन की भी आलोचना की पर यह कहा कि 'विदेशी शासन अच्छा भी हो तो हम उसे नही चाहते—हमें अपना ही शासन चाहिए। हम गलती करने का भी अधिकार चाहते है।' पहली भावधारा को लिबरलो—नरम दलवालो—ने और दूसरी को उग्रवादियो ने अपनाया। १९२० मे जब देश मे असहयोग-आन्दोलन चला तो दूसरी धारा बडे प्रबल तूफानी एव सामूहिक रूप में देश के सामने प्रकट हुई। यहाँ से भारत एक नये मार्ग पर आया।

नया रास्ता

इसीलिए हम देखते है कि तिलक, दास और गाँधी की स्वराज-सम्बन्धी कोई वैसी योजना नही है जैसी लिबरलो के पास है। प्रथम दल का आन्दोलन नैतिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक आधारो पर है और दूसरे दल का—लिबरलो का—उपयोगितावादी व्यावहारिक सिद्धान्तो पर। पहला दल मुख्यतः

दोनो दलो में भेद

भाव-परिवर्तन पर ज़ोर देता है, वह भारतीयो मे भारतीय सस्कृति-सभ्यता और आदर्श के अनुसार एक जातीय व्यक्तित्व, एक अपनी विचार-धारा पैदा करना चाहता है। इस उद्देश्य की पूर्त्ति मे विदेशी शासन एक बडी बाधा है, इसलिए वह उसे दूर करना चाहता है। इसीलिए जब-जब चित्तरजन से 'स्वराज' की परिभाषा करने को कहा गया तब-तब उन्होने कहा—'तुम लोग स्वराज से एक भौतिक योजना का अर्थ लेते हो। मेरे लिए तो स्वराज एक भाव है। उसे किसी शासन-योजना मे सीमित करना ठीक नही।' दिसम्बर सन् १९२२ ई० मे गया-कॉंग्रेस की अपनी वक्तृता मे भी उन्होने कहा—"ये प्रसग कई बार पूछा गया है कि स्वराज्य क्या है ? स्वराज की कोई परिभाषा नही की जा सकती; उसे किसी खास तरह के शासन-विधान के अर्थ मे प्रयुक्त करना ठीक नही। स्वराज और साम्राज्य मे बड़ा अन्तर है। स्वराज, राष्ट्रीय मनोधारा का प्राकृतिक उद्गार है। इस उद्गार मे राष्ट्र के जीवन का सारा इतिहास आ जाता है।·· ··· ··"

गाँधी-युग

१९२० ई० से चित्तरजन सारे देश के सामने राजनीति लेकर आये। कलकत्ता की सितम्बर १९२० ई० की विशेष कॉंग्रेस ने देश के सामने आत्म-विश्वास की प्रबल धारा बहा दी। गाधीजी ने अपनी असाधारण नैतिक प्रतिभा से देखा कि न व्यावहारिक दृष्टि से और न नैतिक दृष्टि से हिसात्मक उपायो द्वारा भारत का स्वराज प्राप्त करना ठीक होगा। यह तो उसकी सारी सस्कृति के ही विरुद्ध है। भारत की सदा अपनी एक विशेषता रही है; उसने सदा एक सदेश दिया है। पराधीनता की अवस्था मे भी वह विशेषता उसके पास से जानी न चाहिए। इसलिए

राजनीति के राज-पथ पर

गाधीजी ने भारत मे एक राष्ट्रीय सस्कृति और व्यक्तित्व को जन्म देने के लिए, ससार के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध, जनता की नैतिक शक्तियो को, विरोध करने के लिए, एकत्र किया। उन्होने आन्तरिक पवित्रता एव आत्म-शुद्धि पर जोर दिया। इस दृष्टि से यह आन्दोलन ससार के इतिहास मे अद्वितीय है।[१]

सितम्बर में काग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। नवम्बर-दिसम्बर मे नई कौसिलो का चुनाव होने वाला था। इसका बायकाट किया गया। वहुत ही कम वोटरो ने वोट दिये। अच्छे-अच्छे कितने ही आदमियो ने देश के लिए अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकाक्षाओ का वलिदान किया; कौसिलो में न गये। पहले चित्तरजन असहयोग कार्य्य-क्रम के विरुद्ध थे; पर पीछे महात्मा गाधी से उनका समझौता होगया और दिसम्बर (१९२०) में जव नागपुर मे काग्रेस हुई तो जनता को यह देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता हुई कि चित्तरजन असहयोग कार्य-क्रम के कट्टर समर्थको में है।

× × ×

सन् १९२१ ई० मे वेजवाडा मे भारतीय काग्रेस कमेटी ने असह-

१ "After a hiatus of nearly fifty centuries, Mr Gandhi has awakened us to the idea, once again, that man does not live by bread alone, and has, after all, such a thing as a soul, and that this soul holds in its inelucatable grip the fortune and destiny of Man"

—P C Ray.

"This determination to measure the strength of two different forces was an extraordinary step, unprecedented not only in the annals of India, but in the whole history of the human race"

—Life and times of C R Das Page 156.

योग का नवीन कार्य-क्रम बनाया। इसमे एक करोड़ स्वयसेवक बनाने,

असहयोग-कार्यक्रम

एक करोड रुपया 'तिलक स्वराज्य-कोष' के लिए एकत्र करने और २० लाख चरखे चलाने का निश्चय हुआ। जुलाई के अन्त मे बम्बई मे विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार का निश्चय हुआ।

चित्तरजन इस काम मे जुट गये। बंगाल में घूम-घूमकर उन्होंने स्वयसेवक बनाना एव चन्दा उगाहना शुरु किया। स्वयसेवको का ज़बर्दस्त सगठन होगया। इससे सरकार घबरा गई और यूरोपियन व्यापारियो के इशारे पर बगाल-सरकार ने स्वयसेवक सगठनो को गैर-कानूनी करार दे दिया। अब बंगाल मे, तथा और जगह भी, कानूनो को तोड़कर हज़ारो आदमी जेल जाने लगे। चित्तरजन की पत्नी और बहन (वासन्ती देवी और उर्मिला देवी) दोनो खद्दर बेचते हुए पकडी गई (और बाद मे छोड दी गई)। १९२१ के असहयोग-आन्दोलन मे सम्पूर्ण देश ने पहली बार राष्ट्रीय चेतना का अनुभव किया था; पर

चौरीचौरा

दुर्भाग्य-वश हर स्थान पर जनता को पूर्ण अहिंसक न रक्खा जा सका। फल-स्वरुप दो-तीन स्थानो पर पुलिस से जनता की मुठभेड हो गई। इनमे चौरीचौरा (गोरखपुर) का काण्ड सबसे भयानक था। उसमे कई पुलिसवाले मारे गये, भीड ने थाने मे आग लगा दी। जब यह समाचार गाधीजी के पास पहुँचा तो उन्होंने एवं उनकी सलाह पर काग्रेस ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन स्थगित कर दिया। इसके बाद काग्रेस का विधायक कार्यक्रम रह गया—कांग्रेस के सदस्य बनाना, चरखे एव खादी का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना, अछूतोद्धार, मद्यपान के विरुद्ध प्रचार, पचायतो का संगठन, 'तिलक स्वराज्य-कोष' के लिए चन्दा एकत्र करना।

फरवरी १९२२ मे चित्तरजन गिरफ्तार हुए, छ महीने की सजा हुई। मार्च १९२२ मे गाँधीजी गिरफ्तार हुए और उन्हे राजविद्रोह के जुर्म में ६ वर्ष की सजा हुई। गाँधीजी के जेल जाने के बाद देश को कोई ऐसा नेता नहीं मिला जो उनके प्रोग्राम—कार्यक्रम—के अनुसार जनता को चला सकता। १९२३ मे फिर कौंसिलो का चुनाव होनेवाला था। जेल मे रहते हुए चित्तरजन ने यह सोचा कि सरकार ने कौंसिलो का मोह-जाल पसार रक्खा है और भारतीय मन्त्रियो के नाम पर जो चाहती है करती है, इसलिए उसके गढ मे घुसकर ही उसे पटकान देनी चाहिए। छूटने के बाद उन्होने इस ओर ध्यान दिया। कांग्रेस-वादियो मे एक कौंसिलवादी दल पैदा हो गया; चित्तरजन इसके नेता थे।

गाधीजी जेल में

कौंसिल-प्रवेश की बात लेकर कांग्रेस मे बडा तूफान मचा। परिवर्तन और अ-परिवर्तनवादियो के दो दल बन गये। गया कांग्रेस में यह विरोध स्पष्ट दीख पडा। लोग अपने-अपने विचार के प्रतिनिधि भेजने लगे, पर गया मे अ-परिवर्तनवादियो की ही विजय रही। इससे चित्तरजन और मोतीलालजी हताश नही हुए। १ जनवरी १९२३ को चित्तरजन ने भारतीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से इस्तीफा दिया और स्वराज दल की नीव डाली तथा घोषणा की कि ६ महीने के अन्दर मै अल्पमत को बहुमत मे बदल दूगा। देशबन्धु के अन्दर जो अद्भुत कार्य-शक्ति थी उसके दर्शन उस समय हुए थे। सारे देश को भाषणो, घोषणाओ तथा कार्यक्रमो से उन्होने डुबा दिया; जैसे देश के सार्वजनिक जीवन में एक बाढ आ गई। कांग्रेस के दोनो दलो के बीच विरोध का ऐसा तूफान पैदा हुआ कि लोग अपने मार्ग से भटक गये। पारस्परिक मत-भेद, व्यग-

कौंसिल-बहिष्कार बनाम कौंसिल-प्रवेश

विरोध और हिन्दू-मुस्लिम दगो के कारण देश में एक दु खमय परिस्थिति पैदा हो गई, पर चित्तरजन जो कहते उसे कर दिखानेवालो मे थे। परस्पर का विरोध शायद इतना तीव्र न होता, पर अ-परिवर्तनवादियो मे श्री राजगोपालाचार्य जैसे व्यग के आचार्यो के रहने और उधर मोतीलालजी तथा चित्तरजन जैसे किसीके सामने न झुकनेवाले व्यक्तियो के कारण मामला तूल पकडता गया। चित्तरजन और मोतीलालजी दोनो शाही प्रकृति के आदमी थे; दोनो को लड़ने में, आक्रमण मे मजा आता था।

दुःखद स्थिति

जब मैं मत-भेद की तीव्रता और कटुता की यह बात कह रहा हूँ तब मेरा यह मतलब नही है कि यदि ज्यादा नम्र आदमी होते तो यह मत-भेद प्रदर्शित न होता। नही, स्वराज-दल का आविर्भाव तो बिलकुल स्वाभाविक था, वह तो होना ही था। हमारी राजनीति में वह एक प्राकृतिक—स्वाभाविक घटना है; पर उस समय विरोध का जो दु खमय प्रकार, विरोध की भाषा मे शब्दो का जो दु खद प्रयोग दिखाई पडा वह न दिखाई पडता; पर इस दु खद परिस्थिति के कारण ही कांग्रेस में एक मध्य दल की सृष्टि हुई जिसको दोनो दलो मे सच्चाई दीख पडी और जिसको दोनो के पारस्परिक झगडो के कारण वेदना थी। इस दल के लोगो, मुख्यत श्रीमती सरोजिनी, के प्रयत्न से मई १९२३ ई० मे बम्बई की भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सब प्रकार का प्रचार बद कर देने का एक प्रस्ताव पास हुआ, किन्तु इस प्रस्ताव से देश मे शान्ति होने की बात तो दूर रही, उलटे इस बात पर गहरा विवाद उठ खड़ा हुआ कि कांग्रेस के किसी प्रस्ताव को बदलने का भारतीय कांग्रेस कमेटी को कहांतक अधिकार है ? इससे अनुचित मत-भेद ही नही, कांग्रेस

समझौते का प्रयास

मे अनुचित दलबन्दी और अनुशासन की कमी तथा अव्यवस्था भी हो गई। ऐसा मालूम होता था कि सस्था का जीवन ही खतरे मे है। कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करना अनिवार्य हो उठा।

१९२३ के सितम्बर के तीसरे हफ्ते मे दिल्ली मे मौलाना अबुल-कलाम आजाद की अध्यक्षता मे यह अधिवेशन हुआ। इसमे मौलाना मुहम्मदअली के आग्रह से बम्बई वाले प्रस्ताव का कॉग्रेस ने समर्थन किया। इस प्रस्ताव में काग्रेस वालो को कौसिल मे जाने एव वोट देने की छूट दी गई। इस प्रस्ताव के पास होते ही चित्तरजन अपने काम मे लग गये और जब चुनाव हुआ तो बगाल, मध्यप्रान्त एव बडी कौसिलो के लिए स्वराजी बहुत अधिक सख्या मे चुने गये। यहाँ से भारतीय राजनीति में स्वराजदल का दृढ भित्ति पर जन्म हुआ। यह भारत मे पार्लमेण्टरी ढग पर सगठित प्रथम दल था और अपने क्षेत्र और समय मे इसने काम भी खूब किया।

काग्रेस से स्वीकृति

देशबन्धु स्वय बगाल कौसिल के लिए खडे हुए। चुने गये। स्वराज-दल के ४० सदस्य चुने गये। पहली ही बार और बहुत थोडे दिनो के प्रयत्न के देखते हुए यह एक बडी सफलता थी। सर सुरेन्द्रनाथ और एस० आर० दास जैसे लोग उसके मुकाबले मे हार गये। बगाल के गवर्नर लार्ड लिप्टन ने सबसे बडे दल के नेता की हैसियत से चित्तरंजन को मन्त्रिमण्डल का सगठन करने के लिए आमन्त्रित किया। पर १६ दिसम्बर १९२३ को चित्तरंजन ने गवर्नर को इस विषय मे अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इन्कारी का पत्र लिख दिया।

बंगाल-कौंसिल में

इसके बाद नौकरशाही पर उन्होने आक्रमण बोल दिया। १९२४ ई० में दो बार तथा १९२५ ई० मे एक बार मन्त्रियो की नियुक्ति एव वेतन

का सरकारी प्रस्ताव अस्वीकृत कराया। उस समय सरकार और देशबंधु दोनो के बीच जो राजनीतिक चाले होती थी उनमे सरकार ने सदा पटकान खाई। जून १९२४ ई० मे मंत्रियो के वेतन का प्रस्ताव अस्वीकृत हो चुका था जिसे गवर्नर ने अपने अधिकार से फिर कौंसिल मे विचारार्थ भेज दिया। लोकमत का यह अपमान चित्तरंजन से सहन न हुआ। उन्होने हाईकोर्ट मे इस विषय पर अपील की कि प्रेसीडेण्ट को यह प्रस्ताव कौंसिल मे रखने से रोक दिया जाय। इस बात मे चित्तरजन को सफलता मिली। फलस्वरूप भारत-सरकार को कौंसिल के नियमो मे परिवर्तन करना पड़ा तथा पुनर्विचार की सुविधा देनी पडी। जब अगस्त १९२४ ई० मे प्रस्ताव कौंसिल मे पेश हुआ तब सरकार-द्वारा लोकमत की अवहेलना होने के कारण सदस्यो मे इतना असन्तोष था कि वह अस्वीकृत हुआ और इस बार भी सरकार को गहरी हार खानी पडी। यही अभिनय मार्च १९२५ मे फिर हुआ।

१९२४ मे जब चुनाव का समय आया तो स्वराज-दल ने कलकत्ता कार्पोरेशन के लिए अपने उम्मीदवार खडे किये और इसमे उसे बडी सफलता मिली। ७५ निर्वाचित सदस्यो मे ५५ स्वराजदल के चुने गये। चित्तरजन मेयर (अध्यक्ष) निर्वाचित हुए।

कलकत्ता कार्पोरेशन पर अधिकार

पर इन सब सघर्षो मे पड़कर चित्तरजन अपनी वैष्णवता, अपनी आध्यात्मिकता भूलते जा रहे थे या यो कहना ज्यादा ठीक होगा कि उसे विकसित करने का समय उन्हे नही मिल रहा था। सत्य के सूर्य पर माया के बादल छा गये थे। १९१७ ई० मे चित्तरजन ने पश्चिमीय प्रणाली की औद्योगिकता के विरुद्ध ज़बर्दस्त आवाज़ उठाई थी और उसे 'हमारी सस्कृति का नाशक'

वक्र मार्ग पर

बताया था, पर समय-चक्र ने, पश्चिमी प्रणाली पर व्यवस्थित सरकार के निरन्तर सम्पर्क एव सघर्ष मे आते रहने के कारण, सैद्धान्तिक नही तो व्यावहारिक रूप मे ही, उन्हे समझौता करने को बाध्य किया। समय-चक्र ने ६ वर्ष के अन्दर ही पाश्चात्य उद्योगवाद के इस विरोध की प्रणाली में बहुत परवर्तन कर दिया। १९२३-२४ तक तो वह मजदूर-सघ (ट्रेड यूनियन) के नेता हो गये। १९२१ ई० मे वम्बई मे पहली ट्रेड यूनियन काँग्रेस हुई—१९२२ ई० मे झरिया मे दूसरी। यह पश्चिमी ढग पर, मजूरो के सगठन का पहला प्रयत्न था। १९२३ ई० में लाहौर में जो अधिवेशन हुआ उसके अध्यक्ष चित्तरजन ही थे। अपने भाषण मे उन्होने कारखानो एव उद्योग-धन्धो के सम्बन्ध मे कानून बनाने की योजना रक्खी। दूसरे ही साल भारतीय धारा-सभा से 'मजूर-मुआवजा कानून' (Workmen's Compensation Act) पास हुआ। इससे कारखाने के मजूरो के कष्टो मे तो कोई कमी नही हुई, पर खतरे—चोट-चपेट लग जाने,—की हालत मे मुआवजा मिलने की किंचित् व्यवस्था हुई। दूसरे साल फिर चित्तरजन कलकत्ता अधिवेशन के सभापति हुए। किन्तु प्रत्येक आन्दोलन मे फूट की जो अमर बेल फैलकर जीवन-सत्व के पौधो की जड खोखला कर देती है, वही यहाँ भी फैली। ट्रेड यूनियन काँगेस मे तबसे जो दलबन्दी हुई वह, समझौता एवं सहयोग के अनेक प्रयत्नो के बीच भी, आजतक ज्यो-की-त्यो लहलहा रही है।

× × ×

नौकरशाही के साथ चित्तरजन की मुठभेड़ और उसमें उनकी विजय पर विजय, तथा कलकत्ता कार्पोरेशन की विजय ने चित्तरजन और स्वराज-पार्टी को भारतीय राजनीति मे अत्यन्त शक्तिमान बना दिया। इसी समय एक और घटना होगई जिससे सरकार के प्रति बगाल की हिन्दू

जनता मे घोर असन्तोष फैला और स्वराजदल के प्रति लोगो की सहा-

हिन्दू महिलाओ पर आक्षेप

नुभूति बढ गई। बात यह है कि फरीदपुर (बगाल) जिले के मदारीपुर सब-डिवीज़न के अन्दर चारमनि-यार मे १९२४ ई० के प्रारम्भ मे दगा होगया। कहा जाता है कि इसमे महिलाओ के साथ पुलिस-द्वारा बडा बुरा व्यवहार किया गया और उनकी इज्ज़त पर भी आक्रमण किया गया। यह इल्ज़ाम लगाने के कारण कॉंग्रेस-स्वराजदल का एक कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिया गया और जब नवम्बर मे ढाका मे पुलिस दरबार हुआ तब गवर्नर लार्ड लिटन ने पुलिस की तरफ से सफाई देते हुए कहा कि इल्जाम झूठा है और कई स्त्रियो ने, पुलिस को लोगो की निगाह से गिराने के लिए, स्वय अपने साथ जोर-ज़बर्दस्ती किये जाने की बात गढ ली है।

यह बात बगाल के मर्मस्थल पर जाकर लगी। सारे बगाल मे तूफान आ गया। जो हिन्दू स्त्रियाँ अपने सतीत्व के लिए हँसते-हँसते चिता मे जल मरने को तैयार हो जाती है वे अपने सतीत्व पर झूठ-मूठ ही कलक का धब्बा लगाकर पुलिस पर झूठा इल्ज़ाम लगायँगी, इस कल्पना-मात्र

घोर असन्तोष

से हिन्दू-हृदय को कितनी चोट लग सकती है, यह लार्ड लिटन शायद न जानते थे। वह एक कल्पना-प्रधान उपन्यासकार के पोते थे इसलिये घटनापूर्ण कल्पना का सस्कार उनके अन्दर भी मौजूद था।

इस वक्तव्य के विरुद्ध बगाल मे स्थान-स्थान पर सभाये हुई। कल-कत्ता टाउनहाल के मैदान की सभा मे इतनी भीड हुई कि छ स्थानो से भाषण करने पड़े। इस बात को लेकर जो असन्तोष फैला उसका अन्दाज नही लगाया जा सकता। जनता मे इतना व्यापक असन्तोष देख सरकार घबराई। फल-स्वरूप लार्ड लिटन ने माफी मागी और सफाई दी। इस

घटना के कारण जो असन्तोष पैदा हुआ उसका उपयोग चित्तरजन ने स्वराजदल की वृद्धि और उसके अनुकूल वातावरण तैयार करने मे कर लिया।

इधर जनता मे जो असन्तोष बढ रहा था उनके कारण फिर से क्रान्तिकारियो की शक्ति बढने लगी। गाँधीजी के प्रभाव एव अहिंसात्मक आन्दोलन से वे दब से गये थे, पर इस समय असहयोग-आन्दोलन शिथिल होगया था, इसलिए फिर जगह-जगह हिंसात्मक काण्ड होने लगे। १९२४ की जनवरी मे गोपीमोहन साहा नामक एक किशोर युवक ने मि० डे की हत्या की और ऐसा जोशीला और भाव-मय बयान दिया कि जनता मे एक सनसनी फैल गई। क्रान्तिकारियो का ज़ोर बढते देखकर, मूल कारणो को दूर न करके, सरकार ने अपनी चिर-परिचित दमन की लाठी सम्भाली। अक्तूबर १९२४ ई० मे वायसराय की स्वीकृति से बगाल-सरकार ने आर्डिनेस जारी किया। इसके अनुसार ८० प्रभावशाली युवक (जिनमे अधिकाश स्वराज-दल के थे), किसी अदालत के सामने अपराधी प्रमाणित हुए बिना ही नज़रबन्द कर दिये गये। इनमे सुभाष बोस-जैसे[1] चित्तरजन के दाहिने हाथ भी थे। चित्तरजन को समझते देर न लगी कि इसमे स्वराजदल की बढती शक्ति को कुचलने का भाव भी काम कर रहा है। उन्होने ज़ोरो से इसका विरोध किया, पर सरकार की यह नीति जारी रही और १९२५ ई० के अन्त तक नज़रबन्दो की सख्या २०० तक पहुँच गई।

आर्डिनेस का चक्र

पर इस दमन के कारण, जैसा कि इतिहास मे सदा हुआ है, परिस्थिति सम्भली नही। दिन-दिन वातावरण क्षुब्ध होता गया। इधर

१ स्वास्थ्य की खराबी के कारण नये गवर्नर सर स्टेनली जैक्सन द्वारा १७ मई १९२७ को छोड़ दिये गये।—लेखक

आर्डिनेंस का छ महीने का समय समाप्त हो रहा था, इसलिए बगाल-सरकार के होम मेम्बर सर ह्यू स्टीफेसन ने ७ जनवरी १९२५ को 'बगाल क्रिमिनल-ला अमेण्डमेण्ट बिल' पेश किया। इस समय चित्तरजन एव स्वराज-दल का ऐसा प्रभाव था कि सरकार के बहुत प्रयत्न करने पर भी बिल कौसिल से पास न हो सका। पक्ष में ५७ पर विरोध मे ६६ मत आये, किन्तु इससे क्या? शासको ने शासितो के भावो की रक्षा करना कब सीखा है? गवर्नर लार्ड लिटन ने १८ जनवरी को अपने विशेषाधिकार से बिल को ५ वर्ष के लिए कानून के रूप मे पास कर दिया।

चारों ओर से दमन

इस प्रकार स्वराजदल पर चारो ओर से आक्रमण होने लगे। भारत और इग्लैण्ड मे—दोनो जगह अधिकारियो द्वारा उस पर इलजाम लगाया गया कि उसकी राजनीतिक हत्याओ से सहानुभूति है। इधर देशबन्धु ने देखा कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का ज़ोर बढता जाता है। तब उन्होने मार्च और अप्रैल १९२५ मे ऐसे आन्दोलन के विरुद्ध साहसपूर्वक दो निश्चित एव दृढ वक्तव्य निकाले। २९ मार्च १९२५ को उन्होने जो वक्तव्य निकाला उसमे अग्रेजो एव एग्लो-इण्डियनो के मन से इस भ्रम को दूर करने चेप्टा की कि स्वराजदल की राजनीतिक हत्याओ से कोई सहानुभूति है। उन्होने सब तरह के हिंसाकाण्डो की निन्दा की और स्पष्ट रूप से कहा—

महत्त्वपूर्ण वक्तव्य

"मैने इसे स्पष्ट कर दिया है और एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मै सिद्धान्तत ही राजनीतिक हत्या या किसी भी रूप और प्रकार में की गई हिंसा के विरुद्ध हूँ। यह मेरे और मेरे दल के लिए बिलकुल ही तिरस्करणीय है। मै इसे देश के राजनीतिक विकास मे बाधक मानता हूँ। यह हमारी धार्मिक शिक्षाओ के भी विरुद्ध है।

"व्यावहारिक राजनीतिक-दृष्टि से भी मै निश्चय-पूर्वक अनुभव करता हूँ कि यदि हमारे देश के राजनीतिक जीवन मे हिंसा घुस गई तो यह सदा के लिए हमारे स्वराज्य के स्वप्न का अन्त करदेगी। इसलिए मै उत्सुक हूँ कि यह बुराई ज्यादा न बढे और हमारे देश मे राजनीतिक अस्त्र के रूप मे इसका सर्वथा परित्याग कर दिया जाय।"

देशबन्धु के इस वक्तव्य का अधिकारियो पर बडा प्रभाव पडा। तात्कालिक भारत-मत्री लार्ड वर्कनहेड ने इस वक्तव्य को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया और इसे सहयोग के नवीन युग का सूत्रपात माना।

अन्तिम दिन

चित्तरजन का हृदय आरम्भ से भक्तिमूलक था, शान्तिप्रिय था। परिस्थिति एव सस्कार ने उन्हे जीवन की हलचल मे ला खडा किया था।

आत्मा की प्यास

वस्तुत उनका स्थान महात्माजी के बगल मे था, हम दोनो में दयार्द्रता देखते हैं; दोनो मे पाश्चात्य सभ्यता की बाढ से शुद्ध भारतीय सस्कृति को बचाने की इच्छा दिखाई पढती है, पर यह समता होकर भी दोनो दो दिशाओ मे चले गये। कई वार मनुष्य अपने असली स्थान से हटकर ऐसी जगह चला जाता है जहाँ से निकल नही पाता। मोह के कारण भी और परिस्थिति के कारण भी। चित्तरजन के तूफानी, प्रवल प्रभजन-तुल्य गतिमान स्वभाव के पीछे वैष्णव-शान्ति की जो अमृत निर्झरिणी छिपी थी वह जीवन के सूखे एव निष्ठुर धरातल पर भी कभी-कभी प्रकट हो जाती थी। १९२४ तक चित्तरजन अपनी विभूति एव यश की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। उन्हे कभी-कभी आभास होता था कि अब मेरा काम हो गया; मृत्यु की छाया मेरे ऊपर पड रही है।

मनुष्य के मिश्रित स्वभाव मे कभी एक और कभी दूसरी प्रवृत्ति

प्रबल हो उठती है। यह वह समय था कि चित्तरजन का हृदय शान्ति के लिए, भक्ति के लिए, देव के चरणो मे सर्वस्व समर्पण के लिए छटपटाता था। जीवन-समुद्र मे सघर्ष का, तेज का तूफानी ज्वार शान्त हो रहा था, दिन का प्रखर आतप फीका हो रहा था, बवण्डर शीतल मलय समीर की खोज में सिर धुनता था, सध्या की शान्ति – नीलिमा जीवन मे फैलकर उसे ओत-प्रोत कर लेना चाहती थी। रात दिन की खटपट, विरोध, युद्ध और सघर्ष से चित्तरजन ऊबने लगे थे। युद्ध और सघर्ष का एक काल होता है और वह जीवन का बहुमूल्य काल होता है—शायद सबसे कीमती, क्योकि इसी मन्थन मे मानव-हृदय मे छिपी अदृश्य शक्तियाँ बाहर प्रकट होती है; पर युद्ध और सघर्ष नित्य-जीवन नही हो सकते—जीवन के अग हो सकते है। मनुष्य का हृदय सदा सघर्ष की आग पीकर जी नही सकता, उसे शान्ति के सोते का मीठा जल चाहिए। चित्तरजन भी कुछ दिन शान्ति चाहते थे।

शान्ति की खोज

बेलगाँव काँग्रेस से लौटते हुए जब चित्तरजन ३ जनवरी १९२५ ई० को कलकत्ता लौटे तो उनका स्वास्थ्य ख़राब होगया था। डाक्टरो ने परीक्षा करके यह सन्देह प्रकट किया कि भोजन के विष (food poisoning) का असर शरीर मे मालूम पडता है। धीरे-धीरे बीमारी इतनी बढी कि डाक्टरो की आज्ञा से कोई मिलने भी उनके पास न जा सकता था, न उनको ही बिस्तर से उठने की स्वतन्त्रता थी।

स्वास्थ्य की ख़राबी

पर उनके पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ के पहले ही बगाल कौंसिल की बैठक हुई जिसमे सरकार मत्रियो के वेतन का बजट पेश करना चाहती थी। देशबन्धु (चित्तरजन) ने लोगो की इच्छा के विरुद्ध, न केवल अपने

वोट का उपयोग करने के लिए वरन् बगाल-सरकार को पटकान देने की दृढ इच्छा से कौसिल मे जाना तय किया । उनके निवास-स्थान (भवानीपुर) से कौसिल-भवन (टाउन-हाल) प्राय तीन मील दूर है । इतनी दूर वह स्ट्रेचर पर लेजाये गये । कहने की आवश्यकता नही कि सरकार की बुरी तरह हार हुई ।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक ट्रस्ट बनाकर उन्होने अपनी जो-कुछ सम्पत्ति बची थी वह भी भारतीय लडकियो की डाक्टरी शिक्षा और महिलाओ के एक अस्पताल के लिए राष्ट्र को अर्पण कर दी । आज यह कलकत्ता मे स्त्रियो के लिए सर्वोत्तम चिकित्सालय है । चित्तरजन ने लाखो रुपये कमाये थे पर सब सार्वजनिक कार्यों में ही लगा दिया । जिस समय उन्होने यह ट्रस्ट बनाया उनके पास केवल पंतीस हज़ार रुपये बैंक मे थे और अन्तिम दिनो में तो वह गरीबी की सीमा पर पहुँच गये थे ।

माता के चरणो में सर्वस्व अर्पण

× × ×

पहले इसकी चर्चा की जा चुकी है कि मार्च एव अप्रैल १९२५ में क्रान्तिकारियो के कार्यो की निन्दा करते हुए चित्तरजन ने दो वक्तव्य निकाले थे । क्रान्तिकारियो की इस खुली निन्दा से लार्ड बर्केनहेड ने चित्तरजन की बडी प्रशसा की और उन्हे सहयोग का निमत्रण दिया ।

फरीदपुर कान्फ्रेंस से कुछ पहले की बात है । एक मित्र ने, जिनका सरकार पर भी कुछ प्रभाव था, चित्तरजन, लार्ड लिटन (बगाल के गवर्नर) और भारत-सरकार के बीच समझौते की बातचीत चलाई थी । आरम्भ में चित्तरजन ने इधर कुछ ध्यान भी दिया । एक अग्रेज महिला के निमत्रण पर वह बेलूर[1] के

कुछ बातें हुई थीं

[1] कलकत्ता से ४ मील दूर गंगा के दूसरे किनारे पर, एक छोटा उप-नगर । यहाँ स्वामी विवेकानन्द की समाधि है ।

रामकृष्ण आश्रम में बंगाल के गवर्नर लार्ड लिटन से मिले। उस समय क्या बातचीत हुई, क्या शर्तें दोनों तरफ से रक्खी गईं इसका कोई लिखित या प्रामाणिक बयान इस समय प्राप्त नहीं है। कई कारणों से समझौते में सफलता न मिली। फिर भी चित्तरंजन इस आशा में रहे कि जल्द ही सरकार की तरफ से कुछ होगा। फरीदपुर कान्फ्रेंस में दूसरी मई को उन्होंने जो भाषण दिया उसकी 'स्पिरिट' से यह स्पष्ट था कि यदि सरकार सहयोग की भावना का क्रियात्मक उदाहरण रक्खे तो हमारी ओर से सहायता मिलने में उसे संदेह करने का कोई कारण नहीं। मरते दम तक उन्हें यह विश्वास रहा कि लार्ड बर्कनहेड के द्वारा भारत का कुछ हित होगा। लार्ड बर्कनहेड का सच्चा स्वरूप वह जान न सके थे।

फरीदपुर कान्फ्रेंस में ही उनके इस नूतन भाव एवं व्यवहार का, जिसमें एक ओर क्रान्तिकारियों की निन्दा थी और दूसरी ओर सरकार से कुछ शर्तों पर सहयोग की आकांक्षा झलक रही थी, कुछ साथियों एवं प्रतिनिधियों ने बड़ा विरोध किया। ऐसा मालूम होने लगा था कि स्वराजदल और उसके नेता में गहरा मत-भेद उपस्थित होने का समय आ गया है। इन संघर्षों से उनका हृदय सन्तुष्ट न था। दिन-दिन स्वास्थ्य खराब होता जा रहा था। फरीदपुर में ही उनकी तबियत खराब हुई; ज्वर आ गया। वहाँ से कलकत्ता आये। वहाँ डाक्टरों ने जाँच करके सलाह दी कि स्वास्थ्य बहुत गिर गया है इसलिए कुछ महीने यूरोप के किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान में जाकर रहना चाहिए; पर चित्तरंजन ने यह सोचकर कि इस समय यूरोप जाने का गलत अर्थ लगाया जायगा, यह विचार त्याग दिया। इसके बाद उन्होंने शिलांग या उटकमण्ड जाकर रहने की बात सोची, पर अन्त में, डाक्टरों की इच्छा के विरुद्ध, उन्होंने दार्जिलिंग जाना तय किया।

जब मनुष्य मे शान्ति की इच्छा जागृत होती है तब आध्यात्मिक प्रेरणाये भी प्रबल होने लगती है। चित्तरजन के साथ भी यही हुआ, उन-

दार्जिलिंग में

मे भी आध्यात्मिक भावनाये वढ़ रही थी। उन्होने अनुकूलचन्द्र भट्टाचार्य नामक एक सज्जन को अपना गुरु भी बनाया था। दार्जिलिंग जाने के पूर्व वह उनसे मिलने गये और १६ मई को अपनी पत्नी के साथ 'स्टेप एसाइड' (दार्जिलिंग का एक बँगला) में पहुँचे। यहाँ आने के बाद ही रोज वह दूर-दूर तक टहलने के लिए निकलते। ऊपर से स्वास्थ्य अच्छा मालूम पडता था, पर भीतर-ही-भीतर शरीर खोखला होता जा रहा था। धीरे-धीरे ज्वर आने लगा और उसका एक निश्चित रूप बन गया। इस समय उनके मन मे मुख्यतया दो इच्छाये थी। एक तो वह इस भ्रम मे थे कि यहाँ कुछ दिन रहने से मेरे स्वास्थ्य पर बडा अच्छा असर पड़ा है, इसलिए यदि कोई उपयुक्त छोटा मकान मिल जाय तो शेष जीवन जगत् के कोलाहल से दूर रहकर यहाँ बितावे। एक मकान पसन्द भी कर लिया गया था।

अप्रैल मे भारत-सचिव लार्ड बर्केनहेड के निमन्त्रण पर तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग इंग्लैण्ड गये। इससे चित्तरजन ने अनुमान लगाया कि भारत को अधिकार देने के विषय मे जल्द ही कुछ निर्णय होनेवाला है और इसमे मुझसे भी अवश्य राय ली जायगी, पर जब कुछ न हुआ तो बडी निराशा हुई। स्वास्थ्य की ख़राबी के बीच यह निराशा भी उनके लिए घातक हुई।

इस समय तक उनमे सघर्ष का भाव बिलकुल दब गया था। उनमे यह इच्छा भी बलवती हो चुकी थी कि सब दलो को मिलकर विचार एव कार्य करना चाहिए और इसको क्रियात्मक रूप देने के लिए वह स्वय राजनीतिक क्षेत्र से अलग तक हो जाने को तैयार थे। जून के आरम्भ

में महात्मा गाधी उनसे मिलने आये और कई दिनोतक दोनो मे स्व-राज्य-दल के भविष्य, कॉंग्रेस तथा असहयोग-आन्दोलन के सम्बन्ध मे वाते हुई। अपने 'कामनवेल्थ ऑव इण्डिया बिल' के विषय मे सलाह लेने के लिए श्रीमती बेसेण्ट भी पधारी। दो दिन के सलाह-मशविरे के वाद चित्तरजन ने विल का समर्थन करने से इन्कार कर दिया, क्योकि जबतक काग्रेस का निर्णय न मालूम होता, इस विपय मे अपनेको किसी प्रकार के वचन मे बाध लेना वह ठीक न समझते थे।

महात्माजी का आगमन

वह दार्जिलिग विश्राम के लिए गये थे; पर देश की राजनीतिक दुरवस्था उनके दिमाग मे सदा फिरती रहती थी, इसलिए वहॉं भी मानसिक शान्ति उन्हे न मिली और फल-स्वरूप स्वास्थ्य दिन-दिन खराब ही होता गया।

ज्यो-ज्यो जीवन की अवधि समाप्ति पर आ रही थी चित्तरजन का स्वभाव बदलता जाता था। जिन लोगो ने उन्हे अन्तिम दिनो मे देखा, उनका कहना है कि पहले का वह तूफानी स्वभाव—वह सघर्ष एव विजय की आकाक्षा, वह शत्रु को—विरोधी को पटकान देने, नीचे गिराने की वीर भावना उनमे से विलकुल दूर हो गई थी। जिनके प्रति उनके मन मे कटुता के भाव थे, उनके प्रति सहानुभूति के भावो का उदय होगया और उनके स्वभाव मे एक प्रचार की अप्रतिम मधुरता आ गई थी। अपने विरोधियो की भी वे निन्दा न करते थे, बल्कि उनका बखान करते थे।

परिवर्तन

× × ×

बुखार बीच-बीच मे आता रहता था। अन्त मे नियमित रूप से साप्ताहिक ज्वर आने लगा। रविवार १४ जून को उन्हे बुखार आया।

सोमवार को सुबह तक टेम्परेचर (शरीर का तापमान) बहुत बढ गया और सारे दिन वह दर्द से बेचैन रहे। मँगल वार के प्रात काल बुखार दूर होगया, पर टेम्परेचर गिरने के साथ-साथ नाडी भी डूबने लगी। एक बजे दिन के बाद दिल डूबने लगा और वह बेहोश होगये। ५ बजकर १५ मिनट पर यह शरीर छोड महाप्रयाण कर गये।

महाप्रयाण

—तीन—

अध्ययन-विश्लेषण

चित्तरजन के जीवन को देखते है तो ऐसा मालूम होता है! वह विद्रोह के पुरोहित थे। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विद्रोही रहे, उन्होने सदा स्वप्न देखे,—पर उन्हे पूरा भी किया। केवल स्वप्न की झाँकियो से सन्तुष्ट होनेवाले वह न थे। स्वप्न देखना और फिर उसके पीछे जी-जान से पड जाना—यह उनका स्वभाव था। एक की पूर्ति के बाद दूसरा,—यह क्रम चलता। इस महापुरुप के मन में एक ओर विद्रोह और दूसरी ओर युद्ध मे मजा पानेवाली सैनिकता बसी हुई थी। वर्तमान कुरीतियो के प्रति उनके हृदय मे प्रबल रोष था। यह व्यक्ति समाज की परम्पराओ की मूर्तियो को तोडता, लडता, तर्क करता, आनन्द लूटता और लुटाता हुआ, एक अजीब मस्ती के साथ हमारे राष्ट्रीय क्षितिज पर दिखाई दिया। उसमें कार्यशक्ति अद्भुत थी—वह महाप्राण था। जबतक रहा कभी सुस्त, दुखी, निराश नही। जैसे आशा का एक प्रबल स्रोत, बगाल की तूफानी जमीन पर फूट पड़ा हो—जो जिधर उमड़ पडा उसीको भिगो देना चाहता है, डुबा देने को उत्सुक है।

विद्रोही

नीव की जाँच-पड़ताल कौन करता है ? कठिन काम है। लोग उसके ऊपर खड़ा महल, उसकी सजावट और आकर्षण देखते है। सभव है नीव गन्दी हो, पर महल अपनी भव्यता से ससार को चक्कर मे डाल दे। जहाँ प्रचार और सजावट का वोलवाला हो वहाँ मनुष्य की बुद्धि भ्रम मे पड जाय तो क्या ? पर चित्तरजन के व्यक्तित्व की नीव को देखना ही चाहे—और जव ध्यान आ गया तो मन विना देखे कैसे माने ?—तो देखने के वाद कहना पडेगा कि वह उनके ऊपरी जीवन से कम नही, शायद अधिक ही, भव्य है। उसमे कूट-कूटकर उदार हृदय की, विशाल हृदय की मानवता भरी गई है। एक व्राह्म की संस्कृति और विद्रोह, एक वैष्णव का सर्वग्राही प्रेम उसमे जोड़-जोड़ कर वैठाया गया है। फिर एक युवक का कठिनाइयो को दमन कर ऊपर उठने का उल्लास उसमे प्रकाशित है। ये तीन धाराये इस महाप्राण पुरुष के जीवन मे त्रिवेणी की तरह मिली हुई है। किसीने देशवन्धु को यथार्थवादी (Realist) के रूप मे देखा; किसीने वैष्णव रूप मे; किसीने विद्रोही वीर सैनिक के रूप मे। पर यह उस चीज़ के टुकडे है; इन्हे अलग-अलग कर देने और अलग-अलग देखने से वह चीज़ नही वनती जिसका नाम चित्तरजन था। यह तो हाथी की सूँड़ है या पाँव, या पूँछ; हाथी नही है। चित्तरजन का दिमाग, दिल और शरीर तीनो, तीन धाराये लेकर भी एक मे ऐसे मिल गये है कि उन्हे अलग करके देखने मे कुछ रह नही जाता,—रह भी जाता है तो सम्पूर्ण के सामने वह न रहने के ही समान है।

ये तो उस चीज़ के टुकडे है !

एक मे मिलाकर—टुकड़ो को नही, सम्पूर्ण को देखने से ही असली व्यक्ति को हम पाते है। जन्म से व्राह्म, दिल के वैष्णव और शरीर के क्षत्रिय चित्तरंजन को इस प्रकार देखने से ही हम उन्हे देख सकते

है। किशोरावस्था मे ही उन्होने ब्रह्मसमाज की अनेक रूढियो के प्रति विद्रोह किया। महापुरुष—महाप्राण कभी बन्धनो मे, सम्प्रदाय की सकुचित सीमा में बधकर रह नही सकता। यह वह सोता है जो फूटकर अबाध गति से बहना और सबको जल देना चाहता है। अपनी लडकियो की शादी उन्होने जातिबन्धन तोडकर की—और इसी शादी मे, तथा बाद में, माता-पिता के श्राद्ध मे, हिन्दू रीतियो का पालन किया। जहाँ जो अच्छा देखा, ले लिया। जहाँ अन्याय है, वहाँ विद्रोह भी है। एक मूर्तिभजक की भाति वह गदा लिये कुरीतियो की, अन्याय की मूर्तियो पर प्रहार करते फिरते थे। उनका सारा जीवन विश्राम-हीन विद्रोह की गति से ओतप्रोत है। यह वह नाव है जो ससार-सागर मे किसी घाट पर रुकना नही चाहती।

ब्राह्मण, वैष्णव और क्षत्रिय

× × × ×

यह कहा ही जा चुका है कि चित्तरजन के जीवन मे तीन अलग धाराये मिली दिखाई देती है। उन तीन धाराओ को पहले अलग-अलग देख ले और फिर इस सहारे से त्रिवेणी के पूरे रूप को—एक मे मिलाकर, एक करके और एक होकर देखें।

पहले हम उन्हे उनके यथार्थवादी रूप मे लेते है। बगाल के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री विनयकुमार सरकार ने बडे यत्न से यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि चित्तरजन का यथार्थवादी रूप ही उनका असली रूप है—भावुकता इत्यादि उसमे गौण है। कानूनी दाँव-पेच मे निपुण एक वकील की शुद्ध तर्कना, यथार्थ ससार को ठोस रूप मे देखने की शक्ति और व्यापारी का व्यवहार-ज्ञान ही, उनकी दृष्टि से, चित्तरजन की विशेषता है और इसीलिए उन्होने सफलता प्राप्त की। इसमें कोई सन्देह नही कि असहयोग-आन्दोलन के

यथार्थवादी

उत्तरार्द्ध—१९२३—मे उनमे वकील की तर्कना प्रबल हो उठी थी, वह निर्दय की भाति तर्क करते और भावो के टुकडे-टुकडे कर डालते थे। रासायनिक का विश्लेषण मनुष्य की परख की कसौटी बन गया था। तर्कना की आँधी मे भावो के बादल फटे जा रहे है, देशबन्धु मानो भावुकता के पीछे कोडा लिये उसे फटकारते, भगाते चले जा रहे है। जो व्यक्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय को तोडने और आशुतोष मुकर्जी-जैसे दाँव-पेच-विशेषज्ञ से लोहा लेने के स्वप्न देखता था और जिसके मुँह से माँ की पुकार सुनकर शत-शत युवक—प्रोफेसर, विद्यार्थी, वकील—आकर राष्ट्रीय-पताका के नीचे खडे होगये थे, जिसने स्वयं अपनी उस वकालत, जिसके वह एकच्छत्र शासक हो सकते थे और जो सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी के समान कीमती हो सकती थी, पर लात मार दी, वही चित्तरजन, बगाल का वही महाप्राण, महापुरुष जब त्रिविध बहिष्कार आन्दोलन को शिथिल होता देखता है तब निर्दय न्यायाधीश की भाति तर्क करता है—तर्क, जिसमे उसका दिमाग चिल्लाकर प्रश्न करना चाहता है—"यह त्रिविध बहिष्कार का प्रस्ताव इतना पवित्र क्यो है कि कोई काँग्रेस इसके एक शब्द को हाथ नही लगा सकती ? मै आपसे देश की परिस्थिति की ओर देखने की प्रार्थना करता हूँ। एक तथ्य सैकडो पाठ से बढकर है। काँग्रेस-मच से पेश किये गए सैकडो प्रस्तावो की अपेक्षा तथ्य—घटनाएँ—facts—अधिक भाव-व्यजक है।"[1]

× × × ×

कैसा निर्दय प्रहार! और यही तक नही—आगे और भी, एक कुशल आक्रमणकारी की भाति प्रहार-पर-प्रहार—"वह किस प्रकार का असहयोग है जो आज आप कर भी रहे है, केवल कह नही रहे है ?" यह

१ मद्रास; १९२३ ई०

कहने और करने का अन्तर बड़ा चोटीला, बड़ा दुखद है। उस दुख की कहानी फिर लो—"त्रिविध बहिष्कार क्या है ?" वह पूछता है और वही उत्तर देता है—"अदालतो का वहिष्कार ? आह ! अदालते फूल-फल रही है—एक हरे-भरे वृक्ष की भाति फूल-फल रही है ' मुझे भय है कि आपके कागजी प्रस्तावो की हर साल की इस पुनरावृत्ति के होते हुए भी ये निगोडी इसी तरह फलती-फूलती जायँगी।··· इसके बाद, आप स्कूल-कालिजो का बायकाट—वहिष्कार—करने को कहते है—पर स्कूल-कालेज भरे हुए है ! · तीसरी वात है कौसिलो का बहिष्कार ! पर वह देखो, कौसिल—और असेम्वली भी—पूरी तरह भरी हुई है !" ज्यो-ज्यो आगे बढता है यह तर्क और निर्दय होता जाता है—"पर हम 'अक्लमन्द' इन कौसिलो मे न जायँगे बल्कि कहेगे—'ओह ! हमने त्रिविध वहिष्कार पूरा कर लिया।' इस तरह हम अपने सीने फुला लेते है, सतुष्ट हो जाते है और फिर सो रहते है !"

यहाँ कवि चित्तरजन नही, वैष्णव चित्तरजन नही, भक्त चित्तरजन नही—देश-भक्त चित्तरजन भी नही, केवल तार्किक चित्तरजन है। केवल दिमाग वोल रहा है और दिमाग से वोल रहा है ! एक पक्का वकील, लठैत, विजय पर तुला हुआ तार्किक प्रहार करता है—आप सविनय-अवज्ञा की वाते कहते है ? किन्तु यदि आज आप सविनय अवज्ञा-आन्दोलन शुरू करे तो वह पैदा होने के पहले ही मर जायग। आप पूछते हैं 'क्यो ?' मै कहता हूँ—"आप सविनय-अवज्ञा को ढाल—मैनुफैक्चर—नही कह सकते !" कैसे घातक शब्द है ! पैने छुरे के समान कलेजे तक घुसने वाले ! दया नही, भावोद्रेक नही, कम्पन नही;—यहाँ वस प्रहार है, कटु तथ्य है। जैसे तर्क सवपर छा जाना चाहता हो—"आप चाहे तो सोच सकते है कि हमने कागज पर तो कौसिलो का वहिष्कार कर

ही दिया, इसलिए कौसिलो मे न जायँगे। इसी तरह आइए, हम जनता का जोश बनाये रखने के लिए सविनय-अवज्ञा, सविनय-अवज्ञा, की रट—जप—लगादे।" श्रोता हँस देते हैं—बस आक्रमणकारी ने आधा मैदान मार लिया!

पर ज्यो-ज्यो विजय का भाव—उल्लास तीव्रतर होता है, प्रहार की भीषणता, व्यग की निर्दयता बढती जाती है—"सविनय-अवज्ञा अप्रैल के अन्त से जून के अन्त तक स्थगित करदी गई है। मै ऐतराज नही करता, क्योकि मै जानता हूँ कि जून के अन्त में यह फिर दिसम्बर के लिए स्थगित हो जायगी और यदि कट्टरपन्थियो के विचार इसी तरह जारी रहे तो दिसम्बर के अन्त मे फिर मार्च के लिए स्थगित हो जायगी। और फिर तीन महीने के लिए और तीन महीने के लिए ।"

इन बातो को देखते हुए इसमे सन्देह कैसे करे कि स्वराज्य दल के आरम्भकाल मे चित्तरजन यथार्थवादी के रूप मे सामने आये थे, पर किसी तरह करे, यह सन्देह तो उठता ही है कि क्या यह यथार्थवादी रूप ही उनका यथार्थ रूप था ? और क्या उस समय भी उनमे यथार्थवादी प्रधान था ? नही, सच बात तो यह है कि चित्तरजन कभी तत्ववेत्ता—दार्शनिक, 'फिलासफर'—न रहे। वह एक कर्मयोगी भक्त थे। उनमे कार्य करने की जो अप्रतिम शक्ति थी और जो केवल पाँच वर्षो (जेल का समय निकाल दे तो और कम) मे भागीरथी की अगणित धाराओ की भाति बग-भूमि और उसके द्वारा समग्र भारत मे, जहाँ देखो तहाँ, अपना प्रभाव और छाप लेकर फैल गई। उसका दूसरा उदाहरण आधुनिक भारतीय राजनीति के इतिहास मे नही है। पाँच वर्ष मे एक महापुरुष इस प्रकार आँधी की भाति आकर हमारे मानव-क्षितिज पर छा गया, यह एक आश्चर्य की घटना है। पर यह तो हम दूसरी ओर जा रहे हैं,—बात चल रही थी यथार्थवादी की। हाँ,

कर्मयोगी भक्त

तो चित्तरजन के इस यथार्थवाद के पीछे क्या शुद्ध तर्क है—कोरा वकील बोल रहा है ? नही, इसमे भी एक कर्मयोगी का अनुभव, एक भक्त की व्यथा बोल रही—चीख रही है। ऊपर के भाषण को ध्यान से पढिए। उसमे शरीर तो है ही पर सब मिलाकर देख सके तो देखिए उसमे एक प्राण भी है।

इस यथार्थवाद के पीछे भी देखो !

चित्तरजन विद्रोही योद्धा थे; शब्द-जगत् उन्हे सन्तुष्ट न कर सकता था। यदि असहयोग का आदर्श पूर्ण हो चला होता, यदि अदालते खाली हो गई होती, स्कूल उजड गये होते तो चित्तरजन शायद सबसे पहले व्यक्ति होते जिनका हृदय प्रफुल्लित हो जाता, पर वैसा नही हो सका। आदर्श नाम की जो चीज़ है, उसे केवल कागज़ पर लिखी चीज़ समझकर वह सन्तोष न पा सकते थे। महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद उस समय के नेतागण विक्षिप्त की नाई घूमते रहे, जनता को कोई मार्ग न दिखा सके। आन्दोलन शिथिल होगया। जेल से आकर चित्तरजन ने देखा और निश्चय किया कि परिस्थिति की ओर आँखे बन्द करके चलने से न होगा। वह सेनानायक योद्धा थे जो समय के अनुसार हाथ बदलकर वार करते थे और अपनी दाँव-कुशलता से विपक्षी को चकित, स्तभित एव परास्त कर देते थे। महात्मा जी के अलावा इस आन्दोलन का 'टेकनीक' किसी को मालूम न था, इसलिए यहाँ कोरा वाग्युद्ध रह गया था—इसमें चित्तरजन को शान्ति नही मिलती थी। इस सूने जीवन-हीन आदर्शमोह की अपेक्षा कौंसिलो का वह झूठा थियेटर, जो युद्ध-कला से जगमगा-कर जीवनमय हो सकता है, जहाँ दो-दो हाथ हो जाने, ज़ोर आज़माने का मौका है, उन्हे ज्यादा 'अपील' कर गया। आदर्श शब्द-जगत् की अपेक्षा लोगो को व्यावहारिक कर्म जगत् मे खीच लाने की भावना इस भाषण के प्रत्येक शब्द के पीछे है।

दूसरी बात यह कि चित्तरंजन के उत्साह का, कार्य शक्ति का स्रोत क्या ? योद्धा का, युद्ध मे मिलने वाला, आनन्द। खतरे को वह प्यार करते थे। जहाँ खतरा है, जहाँ संघर्ष है वहाँ उनकी विजय करने की आकांक्षा तीव्र और तीव्रतर होकर प्रकट होती थी—वहाँ वह आँधी थे। पर बादल फटे, विजय हुई, सूर्य निकला और उनका प्राणोन्मेष शिथिल हुआ। संघर्ष के पूर्व के तेजस्वी चित्तरंजन के सामने विजयी चित्तरंजन मुर्दा था। यह भावुक राजपूत की वीरता थी। उनके बाद जवाहरलाल और वल्लभ भाई दो ही ऐसे निकले जिनमे यह बात दिखाई दी। जवाहरलाल ने ठीक कहा था कि, "जबतक युद्ध चलता है, लडाई हो रही है, तबतक मै अनुभव करता हूँ कि मेरी नाडियो मे खून बह रहा है।" छोटे से राजनीतिक जीवन के मध्यान्हकाल मे चित्तरंजन के लिए भी यही बात थी। उनका प्रेम, उनकी वैष्णव भावुकता युद्ध के समय अगणित प्राणियो मे बंधुत्व पाकर—अपने प्राण को फैलाकर, जीवनमय हो उठती थी। शान्ति हो जाने पर, साधारण स्थिति मे, वह स्वाद नही, एक भारतीय की भारतीयता प्रकट करने का वह अवसर नही। जहाँ विरोधी तनकर खडे हो, जहाँ मोर्चेबन्दी हो रही हो, जहाँ आस्तीने चढाई जा रही हो वहाँ देखो—चित्तरंजन का योद्धा रूप। गया (दिसम्बर १९२२ ई०) मे यह रूप न था,—मानो तबतक योद्धा चित्तरंजन का जन्म ही न हुआ था, पर गया कॉंग्रेस की उनकी हार ने उन्हे जीवन दे दिया। कुछ ही महीनो के अन्दर, मद्रास मे (१९२३ ई०) में उनको हम पूर्ण-विकसित योद्धा-रूप में देखते है। कारण ? कारण है—गया मे वह राष्ट्र के देवता थे, पूजा की चीज़ थे; मद्रास मे सैनिक थे। मद्रास मे विजय करनी थी। एक-से-एक सेनापति सामने खडे थे। दिल बढ गया। यहाँ हम

शक्ति का स्रोता कहाँ है ?

चित्तरजन का वीर, उद्बुद्ध, प्राणमय, विजयोन्मुख, लडाकू और न झुकने वाला पुरुषार्थ देखते हैं। जैसे विरोधी दल को टुकडे-टुकडे कर देने को वह आ खडा हो—जैसे एक आँधी हो जो अपने मार्ग की प्रत्येक बाधा को पीस डालना चाहती है। चित्तरजन के समग्र जीवन मे यह बात ओतपोत है। जहाँ अधिक-से-अधिक कठिनाइयाँ हैं वही उनका सर्वोत्तम योद्धा-रूप है। लडने पर उद्यत चित्तरजन एक पुरुप है—एक देव, जिसे आखें देखना चाहती है। यह अखाडे मे उतरे पहलवान का रूप है जो आशा से भरा है; छाती फूल रही है, नथने हिल रहे है, आँखे ज्वाला-मयी हो रही है—'आँखें' बन गई है, जिसकी एक-एक नस लोहा लेने को फडक रही है और विजयी चित्तरंजन एक प्राणहीन ढेर के समान है।[1]

चित्तरजन दार्शनिक—तत्ववेत्ता, फिलासफर—की अपेक्षा योद्धा अधिक थे। इसीके कारण कभी-कभी वह यथार्थवादी रूप मे प्रकट होते थे। यह हुआ उनका एक रूप।

पर जब हम ज़रा और गहरे पानी पैठते है तो कुछ और हाथ आता है। तब ज्यादा असली रूप की झलक मिलती है। इसलिए यह कहने में

ज़रा और गहराई में

हिचकिचाने की कोई ज़रूरत नही कि उनका दूसरा और ज्यादा असली रूप वह है जो उनके जीवन मे सदा व्यक्त होता रहा। यह वैष्णव की द्रवणशीलता है—सर्वग्राही प्रेम है। ब्रह्मसमाज ने हिन्दू को जो एक नया रूप दिया, उसकी अच्छाइयाँ लेकर यह पौधा बढा था। आगे वैष्णव-प्रेम का

१. प्रो० विनयकुमार सरकार ने अपने लेख (Chittranjan And Young Asia) मे ठीक लिखा है—"... ...Chittranjan militant is a man, a giant, a devil incarnate, a sight for the gods But Chittranjan triumphant is a pigmy"

प्रकाश पाकर वह फूलो से भर गया। यह प्रेम ही देश के साथ देशभक्ति के रूप मे, साहित्य के साथ कविता के रूप मे और गरीब-दुखियो के साथ सेवा के रूप मे व्यक्त हुआ। चित्तरजन जिस चीज़ को प्यार करते थे, हृदय से करते थे। क्या उनका देश-प्रेम एक यथार्थवादी व्यावहारिक राजनीतिज्ञ का देश-प्रेम था? वह ठीक है कि उन्होने पश्चिम के ढग पर भारत मे सबसे पहली और सुसगठित पार्लमेण्टरी पार्टी—स्वराजदल—का सगठन किया; पर सच पूछे तो यह उनका असली क्षेत्र न था। इसमे चौकने की बात नही है। इस क्षेत्र मे भी उन्होने अद्भुत सफलता पाई—केवल इसलिए कि उनमे जो महाप्राणता, जो तेज था, वह जिधर झुका, उधर ही ले बीता—उधर ही विजय हुई। पर कौन कह सकता है कि यदि वह कुछ वर्ष और जीवित रहते तो उनका वैष्णव रूप राजनीति मे भी खिल न उठता। और अपने तई तो मै अब यही मानता हूँ कि उन्होने जो एक नये दल का सगठन किया वह इसीलिए कि वह निराशा और अकर्मण्यता के भाटे मे रह न सकते थे; रहते तो यह उनके लिए बड़ा भारी बोझ हो जाता, उनकी जीवनी-शक्ति क्षीण हो जाती। उन्हे जीवन मे सदा ज्वार चाहिए था। वह ज्वार जबतक असहयोग मे रहा वह उसकी अगली पक्ति मे रहे, जब उसमे शिथिलता आई और परिस्थित ऐसी होगई कि उसका वैसा ही रूप तत्काल न बन सका तो उस व्यवस्था मे जो हो सकता था, उसे खोज निकाला। राजनीति मे देशबन्धु—चित्तरजन—को केवल एक धुन थी

एक धुन

और वह थी—'भारतशासन कानून' (गवर्नमेण्ट ऑव इण्डिया एक्ट) को छिन्न-भिन्न कर देना। जब शरीर चारो ओर रस्सियो से कस और जकड लिया गया हो तो हमे उस बन्धन को तोडकर अपना करतब दिखाने मे विशेप आनन्द आता है। यह

मानव-हृदय का मनोवैज्ञानिक झुकाव है। रस्सियो मे जकडा हुआ नट जब बाहर निकल आता है तब हम अपने-हृदय का सारा विस्मय आँखो मे भरकर उसकी ओर देखते है। सरकार ने कौंसिलो को कानूनी दाँव-पेच से जकड रक्खा था। उसके अन्दर भी अपनी श्रेष्ठतर बुद्धि से दो-दो हाथ हो जाय, इस भाव से चित्तरजन इधर प्रेरित हुए, पर उनका देश-प्रेम अगाध था, वह मातृ-भूमि को एक वैष्णव भक्त की तरह चाहते थे, उनके लिए वह एक भौगोलिक सीमा नही, एक जीवित वस्तु थी। उनका हृदय स्वतन्त्रता के लिए वैसे ही छटपटाता था जैसे एक विरहिणी व्रजागना, भारतीय साहित्य मे, कृष्ण के लिए तडपती रही है। जिस हृदय से ये—नीचे देखिए—वाक्य निकले हो उसे शुद्ध यथार्थवादी—'रियलिस्ट'—के रूप मे देखने का दावा कौन कर सकता है?—

"I have loved this land of mine with all my heart, from childhood, in manhood, through all my manifold weakness, unfitness and poverty of soul I have striven to keep alive its image in my heart, and to-day, on the threshold of age, that image has become truer and clearer than ever"

('बचपन से ही मैने अपने इस देश को अपने सम्पूर्ण हृदय से प्रेम किया है, मैने उसे यौवनकाल मे अपनी विविध दुर्बलताओ अयोग्यता और आत्मा के दैन्य के बीच प्यार किया है। मैने अपने हृदय में उसकी मूर्ति जीवित—जाग्रत रखने की सदा चेष्टा की है, और आज, आयु की देहली पर वह मूर्ति सर्वाधिक सत्य और स्पष्टतर हो गई है।')

एक ओर भक्ति-विह्वलता और दूसरी ओर वकील की तर्कना और व्यवहार-बुद्धि इन दोनो का सघर्ष, चित्तरजन के जीवन मे बड़ा मनो-रजक है। इसीलिए अनेक स्थानो पर वह सीधा रास्ता छोडकर टेढे-

मेढे मार्ग से चलते दिखाई देते है। वह नौकरशाही शासन के कट्टर विरोधी थे, किन्तु साथ ही पाश्चात्य पार्लमेण्टरी सस्थाओ के अन्ध समर्थक भी न थे वह एक 'डेमोक्रैट' (प्रजातन्त्रवादी) थे, किन्तु वर्तमान प्रजातन्त्रो के सिद्धान्तो की अनिवार्यता को स्वीकार न करते थे। शिक्षा और सस्कार दोनो दृष्टियो से उनका स्वभाव एक अनियन्त्रित मनुष्य—'आटोक्रैट'—का स्वभाव था। इसीलिए वह अपनी आलोचना सहन न कर सकते थे, न उस आदमी को क्षमा कर सकते थे जो उनके अधिकार और पद-मर्यादा का विरोध करता था। गाँधीजी के हृदय की उदारता उनमे नही थी, जो अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे, मानव-प्रकृति के एक अश की तरह प्रकट होती है,—जो अपने विरोधी के प्रति अति उदार है। उनकी उदारता एक रईस की उदारता थी जो दीन-दुखी पर पानी-पानी हो जाती है, पर प्रतिद्वन्द्वी के सामने, सूक्ष्म अहकार के शीत से जमकर, हिमवत् होजाती है। इस बारे मे वह मोतीलालजी से मिलते-जुलते थे। वह प्रेरणा और प्रवृत्ति से वैष्णव थे, पर उनमे वैष्णव धर्म की शाति और आत्मार्पण न था। सिद्धान्तत उनकी सहानुभूति साम्यवाद की ओर थी, किन्तु उन्होने बगाल के स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) को तोडने अथवा उसमे परिवर्तन करने की आवाज तक न उठाई। इसी प्रकार मजदूर-संघो (Trade Unions) के सम्बन्ध मे भी वह धनवाही प्रभावो से ऊपर न उठ सके।

दो धाराओं का संघर्ष

इन सब बातो को मिलाकर जब हम देखते है तो मालूम होता है कि चित्तरजन मे भावना ही प्रधान थी। इसीलिए विधायक की अपेक्षा सहारक के रूप मे वह अधिक प्रबल हो उठे थे। विधायक राजनीतिज्ञता (Constructive States-

भावना प्रधान

manship से अभिप्राय है) में वह गोखले और फीरोजशाह के तथा विचक्षणता मे तिलक से पीछे रह गये। निर्दय प्रहार, तीव्र मेधा और तर्कना मे मोतीलालजी उनसे आगे निकल जाते है, पर राजनीतिक आदर्श के लिए अपने त्याग मे, एक दल के सगठन के लिए स्वास्थ्य और जीवन को खतरे मे डालने मे, लगन, भावो की सच्चाई और दृढता मे वह इन सबसे आगे थे। इसी प्रकार विशाल जन-समूहो को हिला देने, उद्वेलित कर देने, मे वह मोतीलालजी से कही बढकर थे। बगालियो मे से देखे तो उनके समय के दूसरे महान् बगाली भूपेन्द्रनाथ बसु से, कई बातो मे,

भूपेन्द्रनाथ से समानता

उनका स्वभाव मिलता था। भूपेन्द्रनाथ की तरह ही उनमें सामाजिकता के सब गुण थे;—उनमे सभी तरह के आदमियो मे से मित्र बना लेने की प्रबल शक्ति थी। भूपेन्द्रनाथ की ही तरह वह अपने मित्रो को एक स्नेह के बधन मे बाँधकर उनको एकत्र एव सगठित कर सके थे। इस विषय मे, अपने स्वभाव की मधुरता, अपने सहायको की वफादारी मे उनका विश्वास, उनकी विचक्षणता सबसे अद्भुत थी और बगाल के क्या, शायद दूसरे प्रान्तो के किसी आदमी से उनकी तुलना नही हो सकती।

जहाँ समानताये है वहाँ असमानताये क्यो न होगी ? भूपेन्द्रनाथ मे एक बडा गुण यह था कि वह अपने समय के प्रतिभावान् आदमियो को

असमानतायें

एकत्र कर सके थे; उनके मित्रो एव सहायको मे बडे-बडे प्रतिभावान् मनुष्य थे। मात्रा के लिहाज से चित्तरजन में यह बात बहुत कम थी, बल्कि अनेक बार कितने ही प्रतिभाशाली मनुष्य उनके द्वारा उपेक्षित भी हुए। इस विषय मे वह सुरेन्द्रनाथ से मिलते-जुलते थे। इसी प्रकार भूपेन्द्रबाबू के समान आदमी पहचानने की शक्ति भी चित्तरजन में न थी। इस विषय मे भी वह

सुरेन्द्रनाथ की ही तरह थे। कौन सच्चा साथी है, कौन चापलूस है, इसकी पहचान उन्हे न थी। इस कारण जबतक वह जीवित रहे उनकी असाधारण व्यक्तिगत प्रतिभा तथा आकर्षण से लोग दबे रहे, पर उनके मरते ही कलह और फूट का बोलबाला हुआ। आज बगाल का बहुत-सा कलह उनकी इस कमी के कारण ही है।

सुरेन्द्रनाथ और गोखले से समानता

सुरेन्द्रनाथ और गोखले से तीन बातो मे उनमे समानता थी। तीनो ने राजनीति को बडी सच्चाई से अपनाया था। तीनो ही अपनी आलोचना सहन न कर सकते थे,—इस विषय मे 'सेन्सिटिव' थे। यहाँतक कि जो उनके निर्णय को न माने या उनके अधिकार के सामने न झुके उससे बोलना भी पसन्द न करते थे। तीनो ही विनोदवृत्ति (सेस ऑव ह्यूमर) से सर्वथा हीन थे।[१]

पॉच बाते !

इतनी बाते कर लेने के बाद अब हम चित्तरजन के विषय मे किसी निष्कर्ष पर आना चाहते है। पहली बात तो यह कि उनकी शिक्षा और उनके सस्कार, मोतीलालजी की भाति, शासक कोटि के—रईसाना—थे, दूसरी बात यह कि उनमे वर्तमान कुरीतियो. परिस्थितियो के प्रति विद्रोह का भाव विकसित हुआ था। यह विद्रोह की भावना पिता से एव ब्रह्म-समाज के सस्कारो से उन्हे मिली, लडकपन की परिस्थिति ने तलवार की धार पर शान दे दिया। तीसरी बात यह कि चित्तरजन आरभ से वैष्णव-भावना की ओर आकर्षित हुए—जिस क्षेत्र मे गये उसमे एक तूफानी उत्साह, एक अप्रतिहत गतिमान एव सतेज भावना, एक 'पैशन' साथ ले गये। यह उनके

१. देखिए 'Chittaranjan Das His Achievements and Failures —P.' C. Ray

द्रवणशील प्रेमी हृदय का परिणाम था। चौथी बात यह कि चित्तरजन में, यह वैष्णव भावना देशभक्ति के अत्यन्त प्रबल और तूफानी रूप मे व्यक्त हुई थी। पाँचवी—विरोधी को हराने, उसका उद्देश्य विफल करने की उनमे अद्भुत दृढता थी। इसके सामने वह सब भूल जाते थे।

यदि उनमे यह भावप्रवणता न होती तो वह मोतीलालजी होते, यदि उनमे इस भावप्रवणता के साथ वकील की यथार्थवादी तर्कना न होती तो वह गाँधीजी के समीप होते। यो—जैसे थे वैसे—वह दोनो के मिश्रण थे। आशुतोष मुकर्जी-जैसी मेधा उनमे न थी और न उनमे उस गभीर राजनीतिज्ञ की कला थी जो अपने विरोधी की उछल-कूद पर मुसकराता है और बिना अस्थिर हुए उसीके अस्त्रो से उसको काटता जाता है। यह बात आशुतोष बाबू मे थी। वह ब्राह्मणसुलभ शान्ति के साथ शत्रु को छकाने मे होशियार थे। गवर्नमेण्ट हाउस से आनेवाली चेतावनियो को वह चुटकी बजाकर उडा देते थे। दाँव-पेच मे ऐसी कुशलता सिवाय मोतीलालजी और विट्ठलभाई के तीसरे हिन्दुस्तानी मे न देखी गई!

× × ×

इसी रूप में महान्

पर चित्तरजन जो थे, उसी रूप में महान् थे। उनकी दुर्बलताये ही उनकी शक्तियाँ है। उनमें प्रेम-शक्ति अद्भुत थी और वह प्राणशक्ति के रूप मे प्रकट हुई थी। वह शक्ति के, उत्साह के, कर्मण्यता के पुज थे। जब वह बोलते थे तो ऐसा जान पडता मानो ज्वालामुखी से अग्निमय 'लावा' निकल रहा है। उनमें जान थी, वह जिये, उन्होने प्रेम किया, लडे और कष्ट सहा। उनमे गतिशीलता इतनी अधिक थी कि उनके आक्रमण, उनकी गति को रोकना कठिन हो जाता था। एक प्रकार की आँधी उनके हृदय मे उठती और सब जगह छा जाती। ऐसा महाप्राण महापुरुष इधर तो बगाल में

कोई हुआ नही। वह भाव के पुज थे; तर्कना के खिलाड़ी थे, विद्रोह और कार्यशक्ति के अवतार थे। लगन के, धुन के पक्के थे। अपने अधिकार के प्रति दूसरो का उँगली उठाना वह सहन नही कर सकते थे, इस विषय मे वह बड़े ही 'सेन्सिटिव' थे यही उनका दुर्गुण था। और भी कमजोरियाँ उनमे थी; पर उनके साथ भी वह महान् थे। कम-से-कम एक महान बगाली तो थे ही। और सब मिलाकर जब हम देखते है तो उनकी 'देशबन्धु' की उपाधि बिलकुल ठीक मालूम होती है।

—चार—

साहित्यकार चित्तरंजन

बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ मे ऐसे बहुत थोड़े होगे जो यह जानते हो कि चित्तरजन एक अच्छे कवि भी थे। और सभव है उनके कवि होने की बात लोग जानते भी हो, पर वह एक उच्च-कोटि के कहानी-लेखक थे, इसे तो बगाल मे भी बहुत-कम लोग जानते है।

चित्तरजन ने काव्य की वीणा बहुत थोड़े समय के लिए हाथ मे ली थी, पर उतने समय मे भी उन्होने अपने हृदय के प्रेम को ऐसा प्रवाहित किया कि हृदय का आँचल उससे भीग गया।

कवि चित्तरंजन

किशोरकाल की व्यावहारिक जीवन की असफलता निराशा, वेदना तथा प्रेम सभी इसमे प्रकट हुए है। उनके कुछ भक्तो का तो यहाँतक कहना है कि उनकी कविताओ का स्थान रवीन्द्रनाथ से भी ऊँचा है। इसे मानना तो कठिन है, क्योकि न काव्य और न कल्पना की विशदता की दृष्टि से वह रवीन्द्रनाथ तक पहुँच सके, पर हाँ, यह कहा जा सकता है कि कुछ कविताये बहुत ही सुन्दर हुई है और यदि

इस क्षेत्र की ओर वह अग्रसर होते तो एक ऊँचे कवि का स्थान पाने में उनके लिए कोई कठिनाई न होती।

बगला का प्राचीन काव्य-साहित्य हिन्दी के इतना सम्पन्न नही है। फिर भी उसमे वैष्णव भक्त कवियो ने जो-कुछ लिखा है उसमे एक प्रकार की अपूर्व भक्ति-विह्वलता है। इन भक्तो ने अनन्त प्रेम की ज्वाला से काव्य को प्रकाशित किया है और उनके हृदय से जो अमृत-मदाकिनी प्रवाहित हुई है उसने शत-शत प्राणो को शीतल किया है। नित्यप्रेमी को लेकर जो अतलस्पर्शी वेदना एव विरह-कातरता काव्य मे प्रकट हुई है उसने पश्चिम के सस्कारो से प्रभावित आधुनिक वग-कविता पर अपनी छाप छोड दी है। वह प्रेम जो देह के, माँस-पिण्ड के भीतर समाना—अँटना नही चाहता, यहाँ भी उच्छ्वसित होकर प्रकट हो रहा है।

चित्तरजन का सवेदनशील हृदय ऐसी, वैष्णव रँग मे रगी, कविता के सर्वथा अनुकूल था। इसीलिए उन्हे सफलता भी मिली है, पर इससे यह नही कहा जा सकता कि वह प्रथम कोटि के कवि थे। उनमे मौलिकता की कमी है, उन्होने काव्य को कोई नया रूप नही दिया, किन्तु आदर्श से अनुप्राणित एव सर्वग्राही प्रेम से भरा हुआ उनका हृदय ऐसी कोमल कविता के रूप मे व्यक्त हुआ है जैसे जूही की कली से निकलने वाली मृदु-मृदु हलकी सुगन्ध या नशे मे इधर-उधर उडती हुई चाँदनी।

उनकी कविता

उनकी आरम्भिक कवितायें प्राचीन कवियो का अनुकरण है। कुछ नवीन स्फूर्ति एव सवेदनशीलता से अनुप्राणित भी हुई है। इनमे 'वार-वनिता' तथा दो-एक और कवितायें तो बहुत सुन्दर एव उत्कृष्ट हुई है। धीरे-धीरे उनकी शैली परिष्कृत एव स्पष्ट होती गई है और अभिव्यक्ति मे भी एक प्रकार का प्रवाह एव बल आ गया है। ज्यो-ज्यो समय बीतता

गया है वह वैष्णव कविता के भाव-मूल तक पहुँचते गये है और ज्यो-ज्यो वह वैष्णव-भावना को अधिकाधिक ग्रहण करते गये त्यो-त्यो उनकी कविता मे भक्ति का एक उच्छ्वास पैदा होता गया है। यहाँतक कि अन्तिम दिनो की कविताओ मे कोमल धार्मिक भावनायें बिलकुल वैष्णव 'स्पिरिट' मे व्यक्त हुई है जिनमे नित्य-प्रेमी के प्रति पूर्ण आत्मार्पण का का भाव विद्यमान है।

चित्तरजन की सबसे पहली रचना 'मालञ्च' है। यह उनके कुछ गीतो का सग्रह है और पहली बार १८९५ ई० मे प्रकाशित हुआ था।

मालञ्च

उस समय कवि ताजा-ताज़ा इग्लैण्ड से लौटा था। उसमे जीवन के पाश्चात्य भावो की प्रबलता थी। सौन्दर्य मे एक आकर्पण, जीवन का एक अस्थिर चचल आनन्द, मानव-अस्तित्व के रहस्यो को प्रकट करने की चेष्टा, ये सब उनके प्रारम्भिक काव्य मे व्यक्त हुए है। और इसीलिए, असाधारण न होकर भी, वह साधारण काव्य से ऊँचा है। यह जीवन एव विश्व के साथ सामञ्जस्य एव शान्ति अनुभव करनेवाली आत्मा का प्रकाश नही, विद्रोह के झझा-वात मे पडे हुए अस्थिर, चचल मन का कुतूहल एव अनिश्चित पर जीवन-मय युवक-हृदय का उद्‌गार है।

उदाहरण लीलिए—

तोमार ओ प्रेम सखि, शानित कृपान[1]।
दिवानिशि करितेछे[2], हृदि रक्त पान।
नित्य नव-सुख भरे,
झलसिछे रवि करे,

१. शानित कृपान = तीक्ष्णधार कृपाण। २ करितेछे = कर रहा है या कर रही है।

रजनीर अन्धकारे से आलो[1] निर्वाण ।
तोमार ओ प्रेम सखि, मरन[2] समान ।
जीर्ण श्रान्त जीवनेर शान्ति आवरन ।
कोमल तुषार कर,
राखिया ललाट पर,
जुड़ाय ज्वलन्त ज्वाला, आनिया निर्वान !

प्रेम मे वासना और आसक्ति है । इसीलिए इसमे टूटी हुई आशा और निराशा एव असफल प्रेम का आभास है । यौवन के उन्मद आकर्षण में कवि बहा चला जा रहा है । जीवन पर उनका अकुश नही है, इसीलिए असफलता मे इतना तीव्र दग है ।

पर यह तो यह ! जब चित्तरजन की 'वार वनिता' बाजार मे आई तो ब्रह्म-समाज में तहलका मच गया । इसमे पतिता का करुण वर्णन है समाज उन्हे देखता है और लज्जा से मस्तक झुका लेता है ।

'वार-वनिता'

वे सब ओर से उपेक्षित है । जो उनके भक्त है,जो उनसे अपना मनोविनोद एव शरीर-रजन करते है, वे भी उनसे घृणा करते है । समाज के निकृष्टतम व्यक्ति की भी सहानुभूति उन्हे प्राप्त नही है । इन अभागिनियो के जीवन मे सुख की कोई रेखा नही. यह वह मरुस्थल है जिसकी जीवन मे कोई सीमा नही और जहाँ दूर तक केवल तृष्णा है, जलन है, दुख है, उत्तप्त वालुका-भूमि है । इस रेगिस्तान मे कही 'ओसिस' नही—हरियाली नही । अदूरदर्शी लोग इनकी वेश-भूषा, शृगार इत्यादि को देखते है—उनका मोल-भाव होता है । चीज़ खरीदी और चले गये । लोग समझते है कि ये सुखी है, वैभव के साथ रहती है । लोग उनके शृगार को, उनके गायन को, उनके खिले चेहरे को देखते है; पर

१ आलो = प्रकाश, आलोक । २. मरन = सर्प ।

उनकी व्यथा, वेदना किसे मालूम ? यह कौन जानता है कि उनकी हँसी के पीछे उनका अक्षय विषाद छिपा है ? यह कौन जानता है कि उनका कोकिलकण्ठ-निन्दक कलगान उनके चिरोत्थ करुणक्रन्दन का आवरणमात्र है ? अपने दुःख को, अपनी हृदय की प्यास को छिपाकर ससार के सामने, उसके रजन के लिए—विनोद के लिए, नित्य अपने को सजाकर रखना कितना कठिन है ? जो कुलागनाये है, पर परिस्थिति एव समाज की निष्ठुरता के कारण तिरस्कृत होकर पतित जीवन बिताने को बाध्य हुई है उनके दुःख की तो सीमा ही नही। पश्चात्ताप की सुई जब उनके कलेजे को छेदती रहती है, तभी पेट-पालन के लिए, और इसलिए कि दूसरा कोई रास्ता लोगो ने रहने नही दिया, हँसकर उन्हे दूसरो के प्रति प्रेम प्रकट करना पडता है। कैसा भीषण, रोमाचकारी कठिन अभिनय है यह! इसे कौन समझता है कि इस उपेक्षिता के अन्दर भी नारीत्व है, जो अतृप्ति और प्यास को लिये हुए कराह रहा है! समाज मे सभी दिशाओ मे आन्दोलन होता है, पर उनकी ओर सहानुभूति की दृष्टि डालने की किसीको फ़ुर्सत नही। किसी के ओठो पर दो मीठे शब्द इनके लिए नही है। चित्तरजन का विद्रोही और करुण प्रेमी-हृदय इनके इस मूक चिर-क्रन्दन के प्रति द्रवित होकर इस कविता मे वहा है। पतिता के क्षुब्ध हृदय-तल पर उठने वाले भाव-तरगो की इसमे स्वाभाविक आर्द्रता है। जहाँ फ़ुर्सत मिली, पुरानी स्मृतियाँ, पुराने विचार उठे! माता-पिता की याद, सहेलियो का विनोद, बाल-जीवन की शत-शत स्मृतियाँ, अब जो जीवन अत्यन्त सकुचित हो गया है उसके आँगन मे एक के बाद एक नाचती हुई आती है। मानो अतीत की समाधि से स्मृतियाँ प्रेतात्माओ के रूप मे निकलकर अट्टहास करती हुई नाच रही है! हाय, कैसा करुण और व्यथापूर्ण यह जीवन

वेदना के अतल में

है। और कैसी तरगें उठती है जीवन के उजडे दयार मे दिल के इस बुझे हुए चिराग के पास।

आमि जेनो चिरदिन ऋणी।
अपार ऐश्वर्य लये,
बिलाई भिखारी हये,
वासना-विहीन उदासिनी।
लालसा-उल्लासहीन, पूर्ण उदासिनी।
के करेछे मोरे चिर ऋणी,
ओगो आमि यौवने योगिनी।
ए विश्व लालसा छाइ,
सर्वांगे भाखिया ताइ,
चलियाछि कलंकवाहिनी।
चिरदिन यौवने योगिनी।
कार अभिशापे नाहि जानि।
कोन महाप्राणे व्यथा,
दियाछिनु तार हेया,
प्राणहीन प्रेम-विलासिनी।
सवारे विलासि ताइ वारि विलासिनी।
तारियाशे चिर-कलंकिनी ॥

इस कविता मे व्यथा और करुणा की धारा बरसाती फल्गू नदी की भाँति हरहराहट के साथ वह रही है। यह व्यावहारिक एव परम्परागत सदाचार की बाँधो एव चट्टानो को तोडती, सहानुभूति के विस्तृत क्षेत्र में बहती है। कवि की चिरन्तन सहानुभूति चिर-सखी-सी पतिता के आँसू पोछने को आई है। यह पतिता, अग्रेजी साहित्य के 'डालोर्स' (Dolores)

की भाति वेदना की—शोक की—नित्यनारी है जो अपने रक्त-माँस से दुनिया की वासना की प्यास वुझाने मे तिल-तिल करके अपनेको जला रही है—आत्मघात कर रही है। उसका जीवन एक लम्वा और निरन्तर आत्म-सहार है—उसकी शर्म, उसका पाप ससार का विलास एव सुख है; उसका शोक ससार का हर्ष है।

इस कविता के कारण वडा तहलका मचा। सदाचार की पूर्व-निश्चित एव सकुचित सीमा में यह तूफान कहाँ से अँटता? अनेक ब्रह्मसमाजियो द्वारा इसपर अश्लीलता का दोष लगाया गया; पर इससे इस रचना का मूल्य कम नही हुआ; वढ अवश्य गया। मौलिकता का विरोध तो होता ही है। जव वंकिम ने उपन्यास लिखने शुरू किये तो 'रमणी रूप को प्रधानता देकर भारतीय आदर्श को नष्ट कर रहा है,' यह चार्ज लगा कर उनका घोर विरोध हुआ था; पर पीछे उनकी पूजा हुई और वह समाज-द्वारा मत्र-दाता राष्ट्रीय ऋषि के रूप मे ग्रहण किये गये। यह सदा से होता आया है, पर इन सव विरोधो के वाद भी कहना पड़ेगा कि अंग्रेजी साहित्य में स्विनवर्न की 'डालोर्स' का जो स्थान है, वही वगला मे चित्तरजन की इस कविता का है। अंग्रेजी साहित्य के धुरन्धर समालोचक स्व० एडमण्ड गॉस ने 'डालोर्स के वारे मे ठीक ही कहा था कि "यह परम्परागत नीति के परित्याग के कारण ही हमारे साहित्य की तीव्रतम नैतिक कविताओ मे से एक है।"[१] निस्सन्देह रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' तथा चित्तरजन की 'वारवनिता' आधुनिक भारतीय साहित्य मे, अपने रंग मे, वेजोड एवं यकता है।

समाज-द्वारा विरोध

× × ×

१. "It becomes one of the most poignantly moral poems in our literature by its rejection of conventional morality."

इसी प्रकार चित्तरजन ने ईश्वर पर जो कविता लिखी उससे भी बड़ा तहलका मचा। ब्रह्म-समाजियो ने इन्हे नास्तिक समझा। इस कविता मे सृष्टि के असाध्य एवं मूक रहस्यो के विरुद्ध विद्रोह करने वाली आत्मा का तीव्र क्रन्दन है। वह सवाल करता है और उसका जवाब चाहता है, पर ईश्वर की ओर से कोई उत्तर नही। अनन्त मौन ही उसका उत्तर है। ऐसे ईश्वर से युवक एव उच्छृङ्खल कवि-हृदय सन्तुष्ट नही। वह अपने व्यथित हृदय के एकान्त मे अपना सुन्दर देवता स्वय निर्माण करता है—ऐसा देवता जो प्रेम करता है, बोलता है। प्रेम-विभोर अशान्त एव आकुल कवि मे अभी इतनी शान्ति नही आई है कि वह प्रभु की महानता हृदयगम कर सके। वह जब अभिलाषाओ की असफलता से निराश एवं दुखी होता है तो फिर ईश्वर के अस्तित्व में ही सन्देह करने लगता है। "... . . मेरी तृषार्त्त जिज्ञासा तेरे लौह वक्ष से टकराकर फिर आती है। . . ... तू निर्मम, निष्ठुर, पाषाण की भाति है।"

नास्तिकता का आरोप

चित्तरजन की कविताओ का दूसरा सग्रह 'माला' नाम से १९०४ ई० मे निकला। इन कविताओ मे स्वर गंभीर है और विचार सयत है। चित्त की चचलता दूर हो गई है। अस्थिर मन अव शान्त है। जहाँ पहली रचनाओ मे ईश्वर के अस्तित्व मे सन्देह होता था, वहाँ अव एक सार्वत्रिक सत्ता पर विश्वास जम चला है। अव उसकी लीला का आभास सर्वत्र मिलने के लक्षण दीख पडते हैं। प्रेम भी गूढ़ हो चला है—

माला

केमन से भालवासा? वला कि से जाय?
सकल जीवन आर सब स्वप्न गाय

तोमारि तोमारि गीत । स्रोतस्वनी यथा
समुद्रेर गान गाये; तारि पाने धाय
आकुल आशाय ।

वह प्रेम कैसा है ? क्या वह कहा जा सकता है। जैसे नदी समुद्र का गान गाती है वैसे ही मै सम्पूर्ण जीवन और स्वप्न मे तेरे गीत गाता हूँ।

अभी वैष्णव सन्तो का सर्वग्राही प्रेम नही है—उसमे वह गहराई नही है, पर कवि के हृदय मे अपने प्रियतम के लिए बडा आग्रह एवं उत्कठा है । कवि की सम्पूर्ण आत्मा उसकी ओर प्यासी-सी दौडती है। प्रेम मे उपासना का कुछ-कुछ आभास आने लगा है। इसीलिए कोई-कोई कविता इतनी सुन्दर हो गई है और उसमे भक्ति-विह्वलता का प्रवाह इतना जबर्दस्त है कि रवीन्द्र-नाथ की गीताजलि को छोड आधुनिक भारतीय साहित्य मे वैसे सुन्दर गीत मिलते नही। फिर जहाँ पहली कविताओ मे अभिलाषा-पूर्ति का आग्रह था वहाँ इनमे सौन्दर्य-दर्शन अधिक स्वच्छ है और प्रेम मे प्रियतम के चरणो पर मिट जाने का—आत्म त्याग का—भाव भी है। देखिए —

प्रेम का विकास

ओगो प्रिय, तुमि मोर सर्वजीवनेर
चिर प्रेमार्जित शत तपस्यार फल।
खुलिया हृदय-द्वार आमि विछाइब
यतना सौन्दर्य आछे यतना स्वप्न;
सर्वकोमलता मोर आमि पेते दिब
तुमि केरे ओगो केरे आमार जीवन।
तोमार चरणभूमि ।

प्रेम मे आर्द्रता आगई है। प्रेम-पात्र को कवि सम्पूर्ण जीवन की चिर-प्रेमार्जित शत-शत तपस्याओ के फल के रूप मे आवाहन करता है और

एक मस्ती के साथ, बेखुदी-ए-इश्क मे, कहता है—'हृदय का द्वार खोल कर मै उसमे अपने सारे सौन्दर्य एव स्वप्न को बिछाऊँगा, सम्पूर्ण कोमलता फैला दूँगा। तुम मेरे जीवन को अपने चरणो का आश्रय बनालो।"

प्रेम इतना परिष्कृत होगया है कि भक्ति की सीमा को छूता है, प्रियतम को देव-रूप दे दिया है। इन कविताओ मे कवि के हृदय मे

अन्तर्यामी

बढते हुए विवेक एवं शान्ति की छाया है। यह स्पिरिट, यह भाव-प्रभाव उनकी दूसरी—बाद की रचना—'अन्तर्यामी' मे और स्पष्ट होगया है। यहाँ प्रेम-पात्र की—देवता की—सर्वव्यापकता स्पष्ट है। कवि उसे प्रत्येक क्षेत्र मे अनुभव करता है—

निखिलेर प्रान तुमि। तुमि हे आमार
दिवसेर दिनमणि, निशार आँधार;
जागरणे कर्मभूमि
शयनेर स्वप्न तूमि
ओगो सर्व प्राणमय। तुमि जे आमार।

धीरे-धीरे निकटता आ रही है। उपासक उपास्य से सानिध्य-लाभ कर रहा है। नीचे का गान देखिए, इसमें मिलन का आनन्द है, उपासक की ध्येय-प्राप्ति का उल्लास है—

बाजारे बाजारे तबे बाजा जय डंका;
नाहि लाज नाहि भय, नाहि कोन शंका।
परानखानि काँपछे कत जय-माल्द गले;
फूलेर मत कि जानियो फूट् छे हृदितले।
सुखेर मत दु:ख आज, दु:खेर मत सुख;
कोन गानेर गरबे गो भरियाछे बुक ?

प्राणेर माझे एकि सुनि कि नीरव भाषा !
बुकेर माझे कोन् पाखी गो बाँधियाछे बासा ।
पायेर तले राजे पथ ! प्राण आज्नि के राजा !
बाजारे बाजारे तबे जय–डंका बाजा ।

× × ×

सन् १९१३ ई० मे 'सागर-सगीत' निकला । इसमे कवि मानव-हृदय के अतलस्पर्शी भावो को छूता है । इसमे रात-दिन के प्रकाश और छाया मे बदलते रहने वाले समुद्र के अनेक रगो की तुलना कवि के सतत-परिवर्तनशील मन से की गई है । कवि की आत्मा और सागर मे मानो एक पूर्व-निश्चित सामञ्जस्य है । जैसे कवि सागर से भाव ग्रहण करता है वैसे ही मानो सागर कवि की प्रवृत्तियो से भाव ग्रहण करता है । यहातक कि साधक एव साध्य—उद्देश्य-विधेय एक हो जाते है । 'अन्तर्यामी' और 'सागर-सगीत' कवि के सर्वोत्कृष्ट काव्य है, जिनमे 'सागर-सगीत' का स्थान बहुत ऊँचा है । इसके अग्रेज़ी मे भी दो अनुवाद हुए है । एक श्री अरविन्द ने किया है और दूसरा श्री जे० ए० चैपमैन ने । इस काव्य मे उषा, मृत्यु और तूफान के ऐसे सुन्दर वर्णन है कि वेदो की याद आ जाती है ।

सागर-संगीत

'किशोर किशोर' मे वैष्णव प्रवाह बहुत स्पष्ट होगया है । इसमे प्रेम का आनन्द है—उस आनन्द आत्मा विपची के स्वर-प्रवाह की भाति तरगित हो रही है । यह प्रेम मानवी है पर देवाभिमुख है । यह प्रेम की नित्यता का गान है । प्रेम एक क्षण मे परिपूर्ण हो उठता है पर उसी क्षणिक परिपूर्णता मे असख्य युग चक्कर काटकर निकल जाते है । कली प्रभात मे सूर्य का चुम्बन-प्राप्त करने को खिल उठती है पर उस किरण-स्पर्श मे अनन्त जीवन

किशोर किशोर

जाग्रत होकर कली को स्पर्श करता, जीवन देता और खिलाता है। इसी प्रकार कवि पूछता है—"सन्ध्या के इस आकाश के नीचे हमारा यह मिलन!—क्या यह जीवन का क्षणिक उपकरण है? क्या तुम्हारी आँखो के प्रकाश मे वह उल्लास नही है जिसका एक जीवन के बाद दूसरे जीवन मे मै स्वप्न देखता रहा हूँ। क्या मै तुम्हे युग-युग से अपने अनेक जन्मो और पुनर्जन्मो मे, समय के अनन्त प्रवाह मे, जानता और प्रेम नही करता रहा हूँ? आज वह समय आया है जब इस आकाश के नीचे हमारा मिलन हुआ है,—जबकि शत-शत जन्मो की आकाक्षा को आज पूर्णता प्राप्त हुई है।"

इसमे शुद्ध वैष्णव भाव—वैष्णव प्रेम विकीर्ण हुआ है।

× × × ×

जीवन के अन्तिम वर्षों मे चित्तरंजन ने जो कवितायें लिखी उनमे वैष्णव-वृत्ति स्पष्टतर होती गई है। जमीन वही है। मिलन के लिए उत्कण्ठित प्रेम—वह प्रेम जो काँटे के समान दिल मे चुभता है, पर सुगन्ध के समान मस्त करता और आलिंगन के समान विस्मृतिकारी आनन्द से मन को पूर्ण कर देता है, पर पिछली कविताओ मे यह जीवनमय होता गया है। यहाँ वेदना अश्रुमय होकर आनन्द मे बदल जाती है और मृत्यु रक्त-सिंचित होकर जीवन का रूप धारण करती है। इन कविताओ मे रंग-आमेजी नहीं, अलकारिता नही, पर यहाँ आवाज़ मुँह से नहीं, दिल से निकल रही है और सीधे दिल तक पहुँचती है।

अन्तिम जीवन की कवितायें

चित्तरंजन को काव्य की आराधना के लिए बहुत थोड़ा समय मिलता था। उनका जीवन कानून और राजनीति के बीच सदा झूलता रहा; पर उस कर्म-कोलाहल में, जीवन के संघर्षों के बीच, उदारता के रूप में,

मानव-सेवा तथा देश-प्रेम के रूप मे सदा उनकी आदर्शवादिता, उनके हृदय को लेकर प्रकाशित होती रही।

पर चाहे चित्तरजन ने थोडा लिखा हो और चाहे वह प्रथम कोटि का न हो, पर जीवन के सत्य का बोध कराने मे वह उनके अन्य क्षेत्रो में किये हुए कार्यो से कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह इसलिए कि विशाल पुष्करिणी के नीचे जो सोते है वे यही दिखाई पडते है। यह इसलिए कि इनमे उनकी आत्मा बोलती है—उनका व्यक्तित्व इसमे प्रतिफलित है।

× × × ×

यह बात ध्यान मे रखने की है कि चित्तरजन रवीन्द्रनाथ की शैली के विरोधी थे। उनकी प्रारम्भिक कविताओ पर रवीन्द्रनाथ का किंचित् प्रभाव दिखाई देता है पर दिन-दिन वह उससे दूर होते गये है, और पिछली कविताओ मे बिलकुल अलग होकर सामने आते है। चित्तरजन पश्चिम के प्रभाव से उत्पन्न सब प्रकार की कृत्रिमताओ के विरोधी थे। उन्हे वैष्णव सन्त कवियो का प्रेम-वर्णन बहुत ऊँचा मालूम पडता था, उसमे एक अद्भुत सरसता थी। इस विषय पर चित्तरजन ने 'बगाल का गीति-काव्य' नाम से एक विचारपूर्ण निबन्ध भी लिखा था जिसमे दोनो 'स्कूलो' के तात्विक भेद का निदर्शन किया है। उनके मत से प्राचीन स्कूल बगाल की प्रकृति, भावना और प्रतिभा के अधिक अनुकूल है।

रवीन्द्र-शैली के विरोधी

चित्तरजन समय-समय पर पत्रो मे लिखा भी करते थे। उन्होने 'नारायण' नामक विख्यात मासिक का बगला मे सचालन किया था। इसमे विपिनचन्द्रपाल, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री—जैसे लेखक लिखा करते थे। पीछे असहयोग-आन्दोलन मे, प्रचार की सुविधा के लिए, उन्होने कलकत्ता से अग्रेजी

लेखक और पत्रकार

दैनिक 'फारवर्ड' निकाला। इस पत्र ने बगाल के समाचारपत्रो के बाजार मे बडी सफलता प्राप्त की थी।

× × ×

चित्तरजन की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनकी 'डालम' कहानी इस बात का प्रमाण स्वय उपस्थित करती है कि यदि वह लिखते तो उच्च कोटि के कहानी-लेखक होते। यह लम्बी कहानी, जिसका अनुवाद 'मतवाला' मे उसके शिशु-काल मे निकला था, बडी सुन्दर है। उसमे मनोभावो का, परिस्थिति के मानसिक प्रभावो का तथा चरित्र का बडा ही सुन्दर चित्रण है। सबके ऊपर, मानो सब भावो को दबाकर, एक मानवी सहानुभूति चतुर्दिक दौड गई है। इन सब बातो का निष्कर्ष यह कि चित्तरजन मे एक श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार के उपकरण थे। वाणी और लेखनी दोनो पर उनका अधिकार था और उन्होने, उस थोड़े से समय मे, जो सार्वजनिक जीवन के सघर्ष के बीच उनको मिला, जितना किया, बहुत किया।

कहानी-लेखक

—पाँच—

स्मृति के फूल !

वह एक अत्यन्त साहसी पुरुष थे। साहस मे वह खतरा उठाने को तैयार एक क्रान्तिकारी के समान थे। पद्मा मे बाढ आ रही है, नाव डूबने-डूबने को हो रही है, नाविको के होश फाख्ता हैं, पर सार्वजनिक कार्य के आगे जीवन तुच्छ है! देशबन्धु अपनी धुन और लगन मे चले जा रहे हैं।

× × ×

जब देशबन्धु किसी बात का निश्चय कर लेते थे तो फिर रात-दिन

कुछ नही देखते थे। स्वराजदल के सगठन के समय उन्होने सम्पूर्ण भारत को अपने व्याख्यानो, लेखो एव योजनाओ से भर दिया था। लगन और धुन के वह पक्के थे। मद्रास-काग्रेस के समय का एक उदाहरण दे देना ठीक होगा। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री मनमोहन बाबू लिखते है —

विश्राम के लिए समय नही !

"एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि १२॥ वजे मोटर तैयार रखना; क्योकि शहर के बाहर जाना है। यह कहकर वह तडके ही चले गये, दोपहर को लौटे। यह सोचकर कि अभी वह थके-माँदे लौटे है, घण्टा-आध घण्टा विश्राम मिलना चाहिए, मैने श्रीरगस्वामी ऐयगर से १२॥ की जगह १ वजे मोटर भेजने को कहा, लेकिन मेरे विश्वास के विपरीत, १२॥ वजे तक स्नान और भोजन से निपटकर देशवन्धु ने मोटर मागी। मै चकित होगया और बोला—"मैने यह सोचकर कि आप अभी आये है, थोड़े विश्राम की जरूरत होगी, १ वजे गाड़ी मँगवाई है।" इसपर देशवन्धु ने मेरी इतनी भर्त्सना की कि मेरी आँखो में आँसू आगये। मै उनके कमरे से चला आया और चन्द मिनटो के वाद जव उन्होंने कुछ तार देने के लिए वुलाया तो न गया। आसाम के श्री टी० आर० फूकन उनके साथ थे। उन्होंने देशवन्धु से कहा—"आपने इस तरह उसे डॉटा है कि वह आपके सामने न आयगा।" तव देशवन्धु स्वय मेरे पास आये और पकडकर ले गये। उस समय उनके चेहरे पर स्नेह का जो भाव था, उसे मै कभी भूल नही सकता। इस प्रकार एक मिनट विश्राम किये विना वह दिन-रात काम करते रहते थे। सार्वजनिक कार्य मे वह इतना मग्न हो जाते थे कि विश्राम का ध्यान ही उन्हे वहुत कम रहता था।

× × ×

देशवन्धु मे जातीय श्रेष्ठता की भावना विलकुल न थी। एक वार

वह एक मित्र के साथ मद्रास मे मोटर से कही जा रहे थे कि कुछ पचम (अछूत) उधर से गुज़रे। उन्हे देखकर मित्र ने कहा--"ये अनार्य उद्गम के मालूम पडते है।" देशबन्धु ने शान्तिपूर्वक कहा—"क्या तुम स्वय अपने रक्त की रासायनिक परीक्षा करके देखोगे कि उसमे कितना भाग आर्य है ?"

जातीय श्रेष्ठता की भावना का अभाव

उदारता मे चित्तरजन की तुलना ही कैसे की जा सकती है ? यह तो उनके जीवन का नशा था। इसीके पीछे उन्होने अपने को फकीर बना दिया। जो आया, खाली हाथ नही लौटा। एक बार की बात है कि डाक्टरी पढने वाला एक छात्र सहायतार्थ उनके घर पहुँचा। उनके क्लर्क ने यह कहकर उसे वापस करना चाहा कि इस समय रुपये का अभाव है। देशबन्धु ने सुन लिया और बोले—"छात्र को खाली हाथ लौटाने की अपेक्षा मेरा फर्नीचर नीलाम कर दो !"

उदारता

चित्तरजन उन आत्माओ मे से थे जिन्हे रुपये से प्रभावित नही किया जा सकता था। वह रुपये को पानी की तरह खर्च करते थे। कभी उसके गुलाम नही हुए, सदा उसे गुलाम रक्खा। इस सबंध मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना का ज़िक्र करना आवश्यक है। १९२१ की बात है, शायद अक्तूबर का महीना था। चित्तरजन कुछ मित्रो के साथ किसी योजना पर विचार कर रहे थे कि एक महाजन अपना कर्ज़ उगाहने आया। उसके लगभग पाँच हज़ार रुपये बाकी निकलते थे। जब उसे दूसरे दिन आने को कहा गया तो भुनभुनाने और मुँह बनाने लगा। संयोग की बात कि इसी समय एक भारतीय ताल्लुकेदार ने कमरे में प्रवेश किया। पहले चित्तरजन

चित्तरंजन की महानता

उनके मुकदमे की पैरवी कर चुके थे; पर साल के प्रारम्भ मे छोड़ दिया था। उसने देशवन्धु से पुन. वह मुकदमा हाथ मे लेने की प्रार्थना की और उसके लिए एक लाख रुपये पारश्रमिक देने को कहा। 'न' कहने पर दो लाख कहा और अन्त मे, यह समझकर कि और रुपये चाहते होंगे कहा कि आप स्वय जो उचित समझे अपना पारिश्रमिक कह दे, मे उतना ही दे दूंगा।' पर चित्तरजन ने शान्तिपूर्वक मुसकराते हुए इन्कार कर दिया। इतने समय तक वह महाजन, जिसने कर्ज दिया था, वैठा हुआ सव सुन रहा था। वह आश्चर्य-विमूढ़ हो गया था और जव चित्तरजन कमरे के वाहर निकले तो वह, नशे मे डूवे हुए आदमी की तरह, पीछे-पीछे वाहर आया और हाथ जोडकर, आँखों में आँसू भरे हुए वोला—

"देवता! देवता! मेरी आँखों के सामने ही आपने दो लाख रुपये त्याग दिये और मैं ५०००) का तकाज़ा करने आपके पास आया! रहने दीजिए हमारे रुपये!"

भाषण-शक्ति

देशवन्धु की भाषण-शक्ति भी एक विशिष्ट प्रकार की थी। वह जव वोलते थे तो ऐसा मालूम पड़ता था कि उनके हृदय के अत्यन्त भीतरी तह से शब्दो का सजीव प्रवाह निकल रहा है। उसमे मन-प्राण सव भीग जाते थे। उसमे विपिन वावू की दहाड़ न थी, मोतीलाल जी के चुभने वाले व्यग उसमे न होते थे फिर भी विशाल जन-समूह उनके भाषण से इस तरह हिल उठता था जैसे आँधी मे पत्ता हिलता है। या जैसे मदारी की तूमड़ी से साँप मुग्ध होकर नाचने लगता है। ऐसा क्यो? इसलिए कि वोलते समय उनके चेहरे पर अपूर्व दृढ़ता, आँखो में आकर्षण, ओठो पर हँसी एवं जिह्वा पर चुने हुए प्रभावशाली एव मधुर शब्द होते थे। शब्द आग फूंकनें वाले, वाक्य चोट करने वाले एव तर्क आँधी की तरह विरोधी को जड-मूल से उखाड़

फेकने वाले होते थे। जब गया मे युवको से उन्होने अपील की—

"क्रोध तुम्हारे लिए नही है, घृणा तुम्हारे लिए नही है, न तुम्हारे लिए क्षुद्रता, नीचता, कपट और झूठ है, क्योकि तुम उषा की आशा और प्रभात का विश्वास हो।"[१]

तब पण्डाल मे बैठे प्रत्येक युवक का दिल विपची के तार के समान झनझना रहा था।

इसी प्रकार कोकनाडा कांग्रेस मे जब वह दहाड कर बोले—"आप पैक्ट से बगाल को निकाल सकते है पर आप कांग्रेस के इतिहास से बगाल को नही निकाल सकते।"[२]

फलत सबको बगाल के इस प्रतिनिधि के सामने सिर झुकाना ही पडा।

× × ×

उनकी देश-भक्ति बड़ी गहरी थी। वह उनके लिए धर्म थी। उनके ये शब्द याद आते है—"अपने देश के लिए काम करना मेरे लिए, मेरे धर्म का ही एक अग है। · · वह मेरे जीवन के सम्पूर्ण आदर्श का ही भाग है। मै अपने देश की धारणा मे ईश्वर की अभिव्यक्ति पाता हूँ।"[३]

१ "Anger is not for you, hatred is not for you; nor for you is pettiness, meanness or falsehood For you is the hope of dawn and the confidence of the morning"

२ "You can delete Bengal from the Pact, but you cannot delete Bengal from the history of the Congress, you cannot delete Bengal from the map of India"

३ "With me, work for my country is a part of my religion.... It is the part and parcel of all the idealism of my life I find in the conception of my country the expression also of divinity."

'लिबर्टी' के सम्पादक श्री सत्यरजन बख्शी ने देशबन्धु के चरणो मे श्रद्धा के फूल समर्पित करते हुए बडे ही भावपूर्ण शब्दो में लिखा था—

"... ....बगाल रोता था, सारा भारत रोता था—और जार-जार रोता था। अब बगाल को त्याग की वह शाहाना प्रवृत्ति, प्राण-मय, जीवन-मय वह भावना कहाँ मिलेगी ? बगाल वह जीवनप्रद व्यक्तित्व कहाँ पावेगा, वह खतरे की परवाह न करने वाली दृढता, जो शोक मे सान्त्वना देती थी और मृत्यु को तिरस्कृत एव पराजित करती थी, कहाँ मिलेगी ? कवि और देशभक्त, देशबन्धु का जीवन एक गीत—एक भावोद्रेक—त्याग और कष्ट-सहन की एक वैष्णव स्वर-लहरी था। कवि और देश-भक्त—जिस स्वाधीनता के वह प्रेमी थे और जिस पर मरने के लिए जिये और जिसे प्राप्त करने मे मरे, वह केवल सैद्धान्तिक वस्तु न थी। उनका प्रेम अपने स्वप्नो को मूर्तिमान करने वाले पुजारी का प्रेम था—एक प्रगाढ प्राणमय प्रेम। हाय ! बगाल वह व्यक्तिगत स्पर्श फिर कहाँ पावेगा ?"

जैसा कि किसी ने कहा है —

"निश्चय ही देशबन्धु युवक बगाल के सबसे अधिक जीवन-दायी नेता थे"। (greatest and most dynamic leader which young Bengal has ever known or seen) महात्माजी ने उनकी मृत्यु पर ठीक ही लिखा था—:

"मनुष्यो मे एक देव गिर गया। आज बगाल एक विधवा के समान है!"

× × ×

प्रगाढ देश-प्रेम, अद्भुत लगन, मनस्विता, असीम उदारता तथा जीवन-दायी शक्ति ये सब गुण चित्तरजन मे इतने सुन्दर रूप मे व्यक्त हुए थे कि उनकी दुर्बलताये उनके अन्दर छिप जाती है और नगण्य हो

जाती है। इन गुणो के कारण न केवल उनके समर्थक वरन् उनके विरोधी भी उनकी स्मृति मे बराबर प्रशसा के फूल वरसाते रहे है। उनके उठ जाने के बाद उनकी महानता को बगाल ने देखा। जिस दिन से वह उठे उस दिन से मानो बगाल के जीवन मे एक दरार पड गई है जिसका भरना अत्यन्त कठिन है। वह परिपूर्ण-से होकर, बँगाल के सम्पूर्ण जीवन मे समा गये थे। इसलिए उनका अभाव केवल राजनीतिक क्षेत्र मे ही अनुभव नही होता वरन् जीवन की प्रत्येक दिशा मे होता है। वह अभाव इतना बड़ा है कि आजतक उसकी पूर्ति नही हुई और आगे बहुत दिनो तक कोई सभावना भी नही है। बगाल का सारा जीवन विच्छिन्न, विशृखल, तितर-वितर हो रहा है। जिनको शक्ति देकर देशबन्धु ने शक्तिमान् बना दिया था, वह श्री सुभाष बोस, वह विधानराय और वह जतीन्द्रमोहन सेन[1] सभी परिस्थिति को सभालने मे अपने को असहाय पाते है। ये लोग जितना सभालते है, परिस्थिति उतनी ही जटिल और निराशाजनक होती जाती है और असमर्थ वगभूमि, चित्तरजन के अभाव मे, विधवा-सी, विलख कर कहती है —

'पडे है सूरते नक़्शे-कदम न छेडो हमें,
हम और ख़ाक में मिल जांयगे उठाने से।'

१ यह चरित्र और विश्लेषण जतीन्द्र बाबू के जीवन-काल में ही लिखा गया था। अब तो वह भी चले गये, इसलिए बंगाल आज और गरीब है।

जीवन-तालिका[1]

१८७० ५ नवम्बर, पटलडाँगा स्ट्रीट, कलकत्ता के एक मकान मे जन्म। अवस्था प्राप्त होने पर भवानीपुर के एल० एम० एस० इस्टि-ट्यूशन एव प्रेसीडेसी कालेज मे शिक्षा।

१८९० प्रेसीडेसी कालेज से बी० ए० पास किया और उसी वर्ष इग्लैण्ड गये।

१८९१ इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा मे बैठे, पर उत्तीर्ण नही हुए।

१८९२ 'मिडिल टेम्पुल' से बैरिस्टर हुए।

१८९३ भारत लौटे और कलकत्ता हाईकोर्ट मे बैरिस्टरी शुरू की।

१८९५ 'मालञ्च' (प्रथम काव्य-सग्रह) प्रकाशित हुआ।

१८९७ ३ दिसम्बर, श्री वरदा हलदार की कन्या कुमारी बासन्ती से विवाह।

१९०६ १९ जून, दीवालियेपन की दरखास्त, पिता के साथ, दी। दिसम्बर, पहली बार प्रतिनिधि बनकर काँग्रेस मे शामिल हुए।

१९०७-८ खुरुरिया-ज़मीदारी केस हाथ मे लिया। ब्रह्मबाधव उपाध्याय का मुकदमा। विपिनचन्द्रपाल का मुकदमा।

१९०८ अरविन्द घोष तथा मानिकतल्ला बम-षड्यन्त्र के अन्य अभियुक्तो की पैरवी की।

१९११ ढाका षड्यन्त्र के अभियुक्तो की पैरवी की।

१९१३ १४ मई, अपना और अपने पिता का सारा ऋण चुकाकर

१ श्री पी० सी० राय की पुस्तक से।

दिवालियेपन की घोषणा रद कराई। 'सागर-सगीत' प्रकाशित हुआ।

१९१४ जुलाई, पुरुलिया मे पिता की मृत्यु।
राजवराने के एक दूर के सम्बन्धी केशवप्रसाद सिह की ओर से डुमरॉंव-केस हाथ मे लिया।

१९१७ वगाल प्रान्तीय कान्फ्रेस, भवानीपुर के अध्यक्ष हुए।

१९१८ टाउनहाल मे 'भारत-रक्षा-विधान' (डिफेस आव् इण्डिया ऐक्ट) की निन्दा करते हुए भाषण दिया।

१९१९ कॉग्रेस की जलियॉवालाबाग जॉच-समिति के सदस्य। अमृतसर कॉग्रेस मे प्रथम बार अड़गा-नीति का प्रस्ताव। कलकत्ता मैदान की विराट सभा मे रौलट ऐक्ट के विरोध-स्वरूप महात्मा गाधी के निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) आन्दोलन का समर्थन।

१९२० मार्च, महात्मा गाधी ने सरकार से असहयोग करने की घोषणा की।
४ सितम्वर, लाला लाजपतराय की अध्यक्षता मे हुई कलकत्ता की विशेष कॉंग्रेस मे महात्माजी के असहयोग-कार्यक्रम का विरोध किया।
दिसम्वर, श्री विजयराघवाचार्य की अध्यक्षता मे हुई नागपुर कॉग्रेस में असहयोग-कार्यक्रम को अपनाया।

१९२१ जनवरी, वैरिस्टरी छोड दी।
पूर्व वंगाल आसाम में राजनीतिक दौरा। ढाका मे राष्ट्रीय विद्यापीठ की स्थापना। ज़िला मजिस्ट्रेट-द्वारा मैमनसिह ज़िले मे प्रवेश करने की रोक। निषेधाज्ञा उठाई गई। मैमनसिह,

तगैल, हबीगज, मौलवी बाज़ार, सिलहट, कोमिल्ला, चटगाँव इत्यादि का दौरा। बारीसाल-सम्मेलन मे प्रतिनिधि रूप मे सम्मिलित हुए।

१९२१ २५ नवम्बर, स्वयसेवक दल गैर-कानूनी घोषित।

सार्वजनिक सभाओ पर रोक।

कलकत्ता-आगमन पर लार्ड रीडिंग ने बगाल-सरकार द्वारा जारी किये गए दमन के अस्त्रो का समर्थन किया।

२७ नवम्बर, काँग्रेस-कमेटी ने स्वयसेवक-दल के गैर-कानूनी घोषित करने एव सार्वजनिक सभाओ की रोक-सम्बन्धी सरकारी कानूनो को अमान्य करने का निश्चय किया।

२८ नवम्बर, खिलाफत कमिटी ने कॉग्रेस-कमिटी के उपर्युक्त निश्चय को स्वीकार किया।

बगाल की काँग्रेस एव खिलाफत कमिटियो-द्वारा चित्तरजन दास 'डिक्टेटर' बनाये गये।

डिक्टेटर की हैसियत से चित्तरजन ने कई विज्ञप्तियाँ निकाली और १० लाख स्वयसेवको के लिए अपील की। सरकार ने इन विज्ञप्तियो को एव स्वयसेवको की अपील को गैर-कानूनी घोषित किया।

३० नवम्बर, बगाल के गवर्नर लार्ड रोनाल्डशे ने, कलकत्ता के सेण्ट एण्डरूज़ भोज मे, चित्तरजन की बड़ी प्रशसा की, पर शासन के सम्बन्ध मे धमकी एव चेतावनी भी दी।

६ दिसम्बर, बहुत से स्वय-सेवक, जिनमे चित्तरजन के पुत्र भी थे, बड़ा बाज़ार मे गिरफ्तार हुए।

७ दिसम्बर, अन्य स्वय-सेवको के अलावा, चित्तरजन की पत्नी,

बहन तथा अन्य महिलाये गिरफ्तार हुईं पर थोड़ी देर बाद छोड दी गई ।

१० दिसम्बर, क्रिमिनल-ला अमेण्डमेण्ट ऐक्ट की १७वी धारा के अनुसार चित्तरजन गिरफ्तार हुए ।

२५ दिसम्बर, चूँकि विचाराधीन कैदी थे, इसलिए अहमदाबाद काग्रेस के अध्यक्ष चुने जाने पर भी उसका सभापतित्व न कर सके । दिल्ली के हकीम अजमलखाँ उनकी जगह पर अध्यक्ष हुए । प्रिंस ऑफ वेल्स का कलकत्ता-आगमन तथा ज़बर्दस्त हड़ताल ।

१९२२ कॉंग्रेस सविनय अवज्ञा-समिति ने रिपोर्ट दी कि अभी समय अनुकूल नही है ।

६ जनवरी, चित्तरजन को छ महीने की सज़ा हुई । गोलमेज़-सम्मेलन के लिए रीडिंग-मालवीय समझौता । महात्माजी की स्वीकृति की शर्त के साथ चित्तरजन का समर्थन ।

जुलाई, जेल से आने पर मिर्ज़ापुर पार्क (कलकत्ता) मे अभिनन्दन-पत्र अर्पण ।

दिसम्बर, गया कॉंग्रेस का सभापतित्व तथा स्वराज-दल की स्थापना ।

१९२३ सितम्बर, अंग्रेज़ी दैनिक 'फारवर्ड' निकाला ।

कॉंग्रेस के दिल्ली विशेषाधिवेशन मे कौसिल-प्रवेश की अनुमति ।

दिसम्बर, मौलाना मुहम्मदअली की अध्यक्षता मे हुई कोकनाडा कॉंग्रेस में कौसिल-प्रवेश का प्रस्ताव पास हुआ । कौसिल मे स्वराजियो का प्रवेश तथा सर सुरेन्द्रनाथ और श्री एस० आर० दास-जैसे प्रमुख लिवरलो की हार ।

बंगाल की कौसिल मे बहुमत दल के रूप मे स्वराजियो का प्रवेश ।

	गवर्नर लार्ड लिटन-द्वारा देशवन्धु को मत्रिमण्डल बनाने का निमत्रण, देशवन्धु की अस्वीकृति ।
	स्वतत्रदल वालो से समझौता ।
	हिन्दू-मुस्लिम पैक्ट ।
	भारतीय ट्रेड युनियन कॉंग्रेस के लाहौर अधिवेशन की अध्यक्षता ।
१९२४	स्वराजियो का कलकत्ता कार्पोरेशन पर अधिकार । देशवन्धु प्रथम मेयर निर्वाचित हुए ।
	२४ मार्च, बगाल कौंसिल मे मत्रियो के वेतन का वजट (२,२०००० रु०) अस्वीकार करने का प्रस्ताव । प्रस्ताव के पक्ष मे ६३ और विपक्ष मे ६२ मत आये ।
	अप्रैल, सिराजगज कान्फ्रेस और गोपीनाथ साहा सम्वन्धी प्रस्ताव । देशवन्धु ने कॉंग्रेस की ओर से तारकेश्वर के महन्त के विरुद्ध लगाये इलजामो की जॉच के लिए कमिटी नियुक्त की ।
	तारकेश्वर मे सत्याग्रह का आरम्भ ।
	महन्त सतीशगिरि से समझौता ।
	भारतीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस के चतुर्थ-अधिवेशन (कलकत्ता) की अध्यक्षता ।
	दिसम्बर, महात्मा गाधी की अध्यक्षता मे हुई वेलगॉव कॉंग्रेस मे शामिल हुए ।
१९२५	मार्च, रीडिंग-वर्केनहेड-दास की समझौते की बातचीत ।
	बंगाल-कौसिल मे मत्रियो का वेतन अस्वीकार करने का प्रस्ताव । प्रस्ताव के पक्ष मे ६९ और विपक्ष मे ६३ मत ।
	अपनी सारी सम्पत्ति का ट्रस्ट वनाकर देश को अर्पण ।
	३० मार्च, हिंसात्मक कार्यो की निन्दा करते हुए विज्ञप्ति निकाली ।

८ अप्रैल, दमन और हिंसात्मक कार्यों की निन्दा करते हुए दूसरी विज्ञप्ति निकाली।

२ मई, फरीदपुर कान्फ्रेंस के अध्यक्ष-पद से दिये अपने भाषण में सम्मानपूर्ण समझौते का प्रस्ताव।

१६ मई, दार्जलिंग-आगमन।

१६ जून, ५ बजकर १५ मिनट पर सन्ध्या के समय दार्जलिंग में देहावसान।

: ४ :

जवाहरलाल नेहरू

[१]

जन्म

१४ नवम्बर १८८९ ई०

"In bravery he is not to be surpassed. Who can excel him in the love of the country? 'He is rash and impetuous' say some This quality is an additional qualification at the present moment And if he has the dash of and the rashness of a warrior, he has also the prudence of a statesman A lover of discipline, he has shown himself to be capable of rigidly submitting to it even where it has seemed irksome He is undoubtedly an extremist thinking far ahead of his surroundings × × He is pure as the crystal, he is truthful beyond suspicion. He is a knight sans peur, sans raproache The nation is safe in his hands"

Mahatma Gandhi

× × ×

"वहादुरी मे कोई उनसे बढ नही सकता और देश-प्रेम मे उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते है कि वह जल्दबाज और अधीर है। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहाँ उनमे एक वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है वहाँ एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। × × वह स्फटिक मणि की भाति पवित्र है; उनकी सत्यशीलता सदेह के परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथ मे सुरक्षित है।"

—महात्मा गाँधी (१९२९ में)

"He has the dash of a warrior, the prudence of a statesman. He is pure as the crystal, truthful beyond suspicion He is a knight sans peur sans reproache The nation is safe in his hands"

—MAHATMA GANDHI.

— एक —

वह जमाना !

कितनी जल्दी दिन आते और चले जाते है ! अठारह वर्ष वीत गये ! असहयोग के तूफानी दिन थे, राष्ट्र के हृदय ने पहली वार व्यापक उद्वेलन का अनुभव किया था। गाँव और शहर एक हो रहे थे। बूढे और जवान, पिता और पुत्र, माँ और वेटियाँ, वहने और पत्नियाँ एकसाथ उठ खडी हुई थी। प्राणो मे पीडा, जीवन मे उन्माद, हृदय मे विश्वास, आँखो मे आत्मोत्सर्ग का तेज तथा गालो पर आशा-निराशा की धूप-छाँह लिये राष्ट्र का शरीर आनन्द से काँप रहा था। वच्चे, जिनके दूध के दाँत भी न टूटे थे, भरी हुई 'प्रिजनवानो' (जेल की मोटरो) को देखकर उछलते और जय के नारे लगाते थे। भीतर वैठे हुए कैदियो के दिल वासो उछलते। स्नेह और कर्तव्य के सतत सघर्ष से आकुल वहने रोती आँखो और, उससे भी वढकर, रुँधे हृदय, पर गर्व से फूलती हुई छाती से, विना एक शब्द वोले, उस त्याग को नीरव अर्घ्य देती थी। मित्र जेल को रवाना होते समय ऐसे चिपट जाते थे मानो शरीर की भिन्नता स्नेह की धारा मे विलीन करके छोडेगे। गँवार, गाँधी टोपी पहनकर किसी को आते हुए देखते तो समझते कि हमारा भाई आ गया ! चोर और गिरहकट, गुण्डे और

बदमाश भी, जेल मे या जेल के बाहर, राजनीतिक कैदियो एव कार्य-कर्ताओ से मिलते समय अपने सस्कार भूल जाते थे। सी० आई० डी० और सेना के आदमी इस अहिंसात्मक त्याग, परवाने की भाँति लगन की लौ मे जल मरने की आकाक्षा लिये आठो पहर चलनेवाले दीवानो का यह पागलपन देखकर हैरान थे। आह ! क्या दिन थे ! क्या समय था ? जागरण के पूर्व, प्रभात के सुखद एव मधुर स्वप्न की भाँति दिल मे एक सिहर पैदाकर चला गया। जानता हूँ आज स्वप्न टूट गया है और उसके साथ, जैसा स्वाभाविक है, दिन के जागरण की किरणे फैल गई है पर वह बात कुछ और थी। स्वप्न सदा जागरण से अधिक गतिमान और अधिक आकर्षण होता है ! वह स्वप्न था, चला गया, यह जागरण है, आया है !

× × ×

इन्ही आशाओ और निराशाओ, उछलते हृदयो और उछालनेवाली कल्पनाओ के स्वप्न-युग मे, राष्ट्र की पुकार पर, मै अपने, आज जेलो मे सडने अथवा घर-गृहस्थी मे फँसकर, गहरे जल मे डूबते ज़रा तैरना जानने वाले के समान उभ-चुभ करते हुए साथियो के साथ, अवध के किसानो की झोपडियो के बीच घूमता-फिरता था। पचायते पुनर्जीवित की जा रही थी, गरीबी से झुलसी हुई हड्डियो को, जिनका रक्त विदेशी शासन की व्यापारी जिह्वा ने चूस लिया था, मिला-मिलाकर खडा किया जा रहा था। पुलिस वाले यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ भागते फिरते थे। पटाखो मे उन्हे 'बम' का भ्रम होता था। सडक पर, स्टेशनो पर, गाडियो मे, 'अनारकिस्टो के ये अवैतनिक रक्षक सर्व-व्यापक से हो रहे थे। रात को डेरे के चारो ओर चारपाइयाँ डालकर ये पहरा देते। तब भी कुछ न हुआ, काम चलता रहा। अवध के दुर्बल किसान एक शक्ति बनकर उठ

खडे हुए। सरकार घबरा गई, १४४ दफा लगाकर पाँच आदमियो से अधिक का एकत्र होना जुर्म करार दे दिया। जटिल परिस्थिति थी। सुनते ही जवाहरलाल प्रयाग से मोटर पर दौडे आये। तब पहली बार दोपहर के समय, कडी तपन मे, सुल्तानपुर की एक धूल-भरी सडक पर खडे-खडे, पर बहुत नज़दीक से, जवाहरलाल को देखा। लोग घेरकर उनसे बाते कर रहे थे और मै, राष्ट्रीय सग्राम के इस सदेह काव्य को, आँखो से, पीने मे तल्लीन था। उनकी दृढता और नरमी, उनका जोश और सयम, उनकी अमीरी और गरीबी, उनका त्याग और आत्माभिमान सब एक साथ ही उनके चेहरे पर छाया-चित्र की भाँति नाच रहे थे।

पीछे मुझे मालूम हुआ कि अवध का यह सारा किसान-आन्दोलन इसी अमल-धवल पर कर्त्तव्य-कठोर युवक-द्वारा संचालित हो रहा है।

—दो—

कुछ स्फुट चित्र

एक लम्बा, छरहरे बदन का गोरा नौजवान, ऊपर से नीचे तक निर्मल, स्वच्छ स्वेत खादी से लिपटा हुआ; चौडा ललाट, ममता उत्पन्न करने वाली सतेज आँखे, पतले और अभिव्यक्तिशील (Expressive) ओठ एव मुँह—यह जवाहरलाल है। यह प्रौढ युवक, जिसका सौन्दर्य और जिसकी स्थिति एक राजकुमार की थी। आज स्वाधीनता का अलख जगाता हुआ, कुछ अजीब दीवानेपन के साथ, देश में घूमता-फिरता है।

जवाहरलाल के भाषण पढने और फिर उनसे मिलने के बाद कितना अन्तर नज़र आता है। कहाँ एक आमूल क्रान्तिकारी और कहाँ एक मिलनसार, हँसमुख, बेतकल्लुफ तथा सहृदय युवक! छात्रो मे, युवको

मे, सिपाहियो मे, राजनीतिज्ञो मे, वह जहाँ रहते है वही लोगो को अपनी ओर आकर्षित करते है। इसका कारण यह कि उनका 'अहम्' उनके गरीब-से-गरीब के साथ मिलने मे भी बाधक नही होता। एक बार की बात है; उनकी प्यारी पत्नी, भारतीय स्त्रीत्व की मूर्ति, बहन कमला बीमार थी। एक-दिन तबीयत एकाएक बडी खराब हो गई। दूसरे दिन अपने छोटे-से दुर्बल अस्तित्व को सकोच मे और भी सकुचित करता, तर्क-वितर्क मे डूबा हुआ मै उनसे कुछ जरूरी बाते करने उनके 'आनन्द-भवन' गया। दरवाजे पर ही नौकर से मुझे मालूम हुआ कि

इन्सानियत

इस समय अपनी पत्नी की बीमारी की झझट और सेवा-शुश्रूषा मे लगे हुए है। प० मोतीलाल जी बैठे, आये हुए महत्त्वपूर्ण पत्रो को पढकर एक तरफ रखते जा रहे थे। नौकर ने न जाने क्या सोच कर मेरा कार्ड माँगा और ऊपर जाकर 'छोटे सरकार'—जवाहरलाल जी—को दिया। वह दवा-दारू का काम छोड चट नीचे दौड आये और बडे प्रेम से मिले। मुझे जबर्दस्ती अपनी कोच पर बिठाया और देर तक साहित्य एव सामाज की बाते करते रहे। हिन्दी मे समाज-निर्माण-सबधी विवेचनात्मक साहित्य के अभाव को वह बहुत अनुभव करते थे और उन्होने कहा—"तुम लोग साहित्य तो अच्छा निकाल रहे हो, पर वह सामयिक ही अधिक है। अब इस दिशा मे प्रयत्न करो।" मैने उस समय देखा, कैसी बेतकल्लुफी है इस आदमी मे! जवाहरलाल इस बात को कभी नही भूलते कि पहले वह मनुष्य है, फिर देश के एक सेवक है। और किसी नेता से दिल खोलकर, इस तरह बैठकर बाते करना कभी सभव नही। मैने उन्हे कालेज के लडको से मिलकर, उन्हीका बनकर, घुल-घुल कर बाते करते देखा है। यह हृदय के यौवन का लचीलापन है जो प्रेम के आगे, भाव के सम्मुख अपनी मर्यादा और अपने महत्त्व को

भूल जाता है। जवाहरलाल को इस रूप मे देखकर अग्रेजी कवि की ये लाइने बार-बार याद आती है—

Glorious it was to have been alive,
But to be young was very Heaven

आज जब जवाहरलाल की प्यारी पत्नी कमलाजी इस लोक मे नही है तब इस सम्बन्ध मे कुछ लिखना बडा हृदय-बेधक मालूम होता है।

गार्हस्थ-जीवन

और जवाहरलालजी को उनके दाम्पत्य जीवन के बीते दिनो की याद दिलाना, जिसे भूलने की चेष्टा मे उन्होने अपनी जिन्दगी को इतना व्यस्त कर रक्खा है, कुछ इन्सानियत की वात न होगी, पर जीवन के आलोचक और प्रेक्षक का काम कुछ ऐसा सरल नही है। वह ज़िन्दगी का कोई अध्याय, जिससे नायक के चरित्र पर रोशनी पड़ती हो, छोड नही सकता। ज़हर को सामने देखकर समीक्षक का उससे मुंह मोडना सभव नही है, कदाचित् उचित भी नही है। फिर जवाहरलाल के गर्हस्थ-जीवन मे तो ज़हर नही है, अमृत है। कम-से-कम यह तो विना किसी हिचकिचाहट के कहा जा सकता है कि ज़हर कम है, अमृत उससे कही ज्यादा है।

वडी-वडी वातो और शेख़ियो के इस युग में गार्हस्थ-जीवन अत्यन्त उपेक्षित होकर जी रहा है। राजनीति ने उसपर दोहरा वार किया है। फिर भारत की राजनीति व्यस्तताओ से भरी हुई है। वह अपने अनुयायियो से सम्पूर्ण वफादारी और भक्ति चाहती है। उसे विभक्त वफादारियाँ पसन्द नही है। इसलिए इस अभागे एव गुलाम देश के सेवको का ज्यादा समय घर के वाहर वीतना स्वाभाविक होगया है।

परिवर्तन के इस युग मे वहुत कम देशभक्त ऐसे है जिनका गृह-जीवन, उनके समय और ध्यान के अभाव मे भी निरानन्द नही है।

बडी बातो के बीच छोटी बाते लोग अक्सर भूल जाते है, पर याद रखने की बात यह है कि छोटी बातो से ही जीवन गढा जाता है और बडी बातो की नीव छोटी बातो पर ही उठाई जाती है।

जवाहरलाल के गृह-जीवन को यद्यपि हम आदर्श नही कह सकते, पर इतना है कि वह निरानन्द और नीरस नही है। एक आदमी के लिए जिसने एक पराधीन देश की राजनीति की सारी शक्ति सोख लेने-वाली हलचलो मे अपने को बेतहाशा डाल दिया हो, गृह-जीवन की सुगन्ध-पूर्ण भावनाओ की सँभाल करना बहुत मुश्किल है। फिर जवाहरलाल और कमला नेहरू मूलत, तत्त्वत, दो जुदा प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि रहे है। जवाहरलाल जी जन्म से भारतीय, पर शिक्षण एव सस्कार से मुख्यत यूरोपीय दृष्टिकोण के प्रतिनिधि है। कमलाजी भारतीय नारी के उत्सर्ग के सस्कारो की प्रतिनिधि थी। जब जवाहरलाल जीवन के खतरे के प्रति आकर्षण, साहसिकता, प्रचण्डता, प्रबल गति इत्यादि पौरुषमय प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करते है तब कमलाजी शील, सकोच और तिल-तिल आत्मदान करनेवाली कोमल स्त्रियोचित गुणो की मूर्ति थी। विवाहित-जीवन के अठारह वर्षो मे इन दोनो को इतनी फ़ुर्सत शायद ही कभी मिली हो कि निजी समस्याओ और भावनाओ के साथ न्याय कर सकते। जवाहरलालजी का अधिकाश समय जेलो मे या बाहर राजनीति के शोरगुल मे ही बीता है। इस बीच कमलाजी गृह-जीवन की जिम्मे-दारियो तथा पति की ममता का बोझ सँभाले हुए भी समय-समय पर देश के कार्य मे भाग लेती रही। स्वभावत: इसके कारण उनके मन मे काफ़ी सघर्ष होता रहा होगा। नारी कही हो नारी ही है और वह चाहे इन्कार करे; पर उसके हृदय के अतल मे सयुक्त जीवन-दीप को सतत स्नेह का अर्घ्य देते रहकर, सतत उसे पूरित किये रहकर, दिन व्यतीत

करने की कामना अवश्य होती है। वहुत कम पुरुष इसे समझ पाते है। यह कहना वहुत मुश्किल है कि जवाहरलाल ने इसे कहाँतक समझा। हो सकता है कि उन्होने इसे विलकुल न समझा हो, पर ज्यादा सही यह है कि उनको कभी इसपर विचार करने और समझने का मौका ही न मिला। यह तो नही कहा जा सकता कि कमलाजी का देहावसान सिर्फ मानसिक प्रतिक्रियाओ और सघर्षो का परिणाम था, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनके कारण उनकी मृत्यु के क्रम में तेज़ी आगई।

यद्यपि जवाहरलाल के गृह-जीवन मे कर्त्तव्य की तुरशी उसकी मिठास पर हावी है, पर यह भी सच है कि उसमे मिठास की कमी नही है। साध्वी कमलाजी का जीवन तो, एक प्रकार से, जवाहरलालजी की चिन्ता मे ही कटा। जवाहरलालजी यद्यपि परिस्थिति-वश राजनीति के हाहाकारमय जीवन से अपने को जुदा नही कर सकते थे, पर खतरो के वीच भी कमलाजी सदा उनके स्मृति-पट पर प्रकाशित रही है। आज भी है, इसे कहने मे मुझे कुछ हिचकिचाहट नही मालूम पडती।

कर्त्तव्य और प्रेम

पहली वार कमलाजी को, जव मैं १९२१ में वनारस ज़िला जेल में था तव, देखा। हम लोगो से मिलने आई थीं। वह देवी-सी मालूम पडती थी। वच्चो-सी भूनी निर्मल आँखे, भोला चेहरा जिसपर कौमार्य तव भी खेल रहा था। चेहरे पर कठोर कर्त्तव्य से उत्पन्न वेदना और पति की शुभाकाक्षा से उत्पन्न गरिमा की छाया। यह मूक चेहरा मानो कह रहा था कि उसे पति पर गर्व है, पर उनकी चिन्ता भी कम नही है। उनमे इसकी अनुभूति थी कि जिन रास्ते मे पैर डाला है उसमे कठिनाइयाँ पग-पग पर है, काँटे और झाडियाँ है, पर दिल का दर्द भी था। वह दर्द जो प्रेम का तकाजा है। जिसपर कर्त्तव्य ने भारी टैक्स लगा दिया है। उस टैक्स के

भार से प्रेम मे कोई कमी नही आती, क्योकि यह दिल का सौदा है। वल्कि मानसिक दृष्टि से देखे तो खतरे और कठिनाइयाँ दोनो दिलो को खीचकर नजदीक लाती है, पर वावजूद इस निकटता की अनुभूति के नारी मे स्थूल दृष्टि से भी पति के साहचर्य की जो स्वाभाविक भावना होती है उसमे वरावर असफलता होते रहने के कारण दिल में सघर्ष सदा चलता रहा। इस सघर्ष मे कमलाजी सदा क्षीण होती गई। उनके हृदय मे पति के कष्टो और कार्यो के लिए जहाँ गौरव था तहाँ दुख भी था। दूसरे सत्याग्रह-सग्राम के समय, जव जवाहरलालजी जेल मे थे, तव कमलाजी वनारस आई थी। वहुत क्षीण और दुर्वल होगई थी। जव एक मित्र ने पूछा कि पण्डितजी को जेल मे क्या काम दिया गया है, तव वोली—"रस्सी वटते है।" पर कहते-कहते गला भर आया, मानो प्रश्न से अन्दर की व्यथा वाहर उभर आई हो। इस वेदना के मूल मे निश्चय ही अतीत वैभव की स्मृति की कथा थी, पर प्रेम उसकी आत्मा थी। १९२६–२७ से ही कमलाजी मे राजयक्ष्मा के चिन्ह प्रकट होने लगे थे। फलत उस समय भी जवाहरलाल जी उन्हे लेकर यूरोप गये। स्वास्थ्य मे कुछ सुधार हुआ, पर जवाहरलालजी स्वय यूरोप से समाजवाद से अधिक प्रभावित होकर लौटे। राजनीति मे उनके विश्वास और कार्य अधिक खतरे और आपदाओ से पूर्ण होते गये। फलत. कमलाजी भी राजनीति के मैदान मे खिचती गई। सत्याग्रह आन्दोलन मे उन्होने भाग लिया और खूव भाग लिया। स्वभावत यह बोझ उनका शरीर वर्दाश्त न कर सका और राष्ट्र की समस्त शुभ कामनाओ और अन्तिम दिनो मे पति की मौजूदगी के वावजूद यूरोप के एक शुश्रूषा-गृह (सैनिटोरियम) मे २८ फरवरी १९३६ को उनका देहावसान होगया।

कमलाजी की साघातिक बीमारी के दिनो मे जब जवाहरलालजी केवल ११ दिनो के लिए छोडे गये थे तब उनके मन मे क्या भाव उत्पन्न हो रहे थे उसका एक अत्यन्त हृदय-द्रावक चित्र हमे उनकी 'मेरी कहानी' मे मिलता है —

" वह सब होते हुए भी कमला की खतरनाक हालत की चिन्ता परेशान कर रही थी। मैंने उसे दुबली और निहायत कमजोर हालत मे पडे देखा। उसका ढाँचा भर रहा था, जो वडी कमजोरी से अपनी बीमारी से लोहा ले रहा था। और यह खयाल कि शायद वह मुझे छोड जायगी, असह्य वेदना देने लगा। इस समय हमारी शादी को साढे अठारह साल हुए थे। मेरा दिमाग उस दिन और उसके वाद के इन सब पिछले वरसो में जो-कुछ गुजरा उसकी तरफ घूमने लगा। शादी के वक्त मै छब्बीस साल का था और वह करीब सत्रह वर्ष की, दुनियवी तौर-तरीको से सर्वथा अलिप्त, निरी अबोध बालिका थी। हमारी उम्र मे काफी अन्तर था, और उससे भी अधिक अन्तर हमारे मानसिक दृष्टि-विन्दु में था, क्योकि उसकी बनिस्वत मेरी उम्र कही ज्यादा थी। सजीदगी के इन सब अलामात के बावजूद भी मुझमे बडा लडकपन था, और मैंने शायद ही कभी यह महसूस किया हो कि इस सुकुमार और भावुक लडकी का मन फूल की तरह धीरे-धीरे विकसित हो रहा है और उसे सहृदयता और होशियारी के साथ सहारा देने की जरूरत है। हम दोनो एक-दूसरे की तरफ आकर्षित होरहे थे और काफी अच्छी तरह हिलमिल गये, लेकिन हमारा दृष्टि-पथ जुदा-जुदा था और एक-दूसरे में अनुकूलता का अभाव था। इस विपरीतता के कारण कभी-कभी आपस मे संघर्ष तक की नौवत आ जाती थी; और कई वार छोटी-मोटी वातो पर बच्चो के-से छोटे-मोटे झगड़े भी हो जाया करते थे जो ज्यादा

देर तक न टिकते थे और शीघ्र ही मेल-मिलाप होकर समाप्त हो जाते थे। दोनों का स्वभाव तेज था; दोनों ही तुनुकमिजाज थे, और दोनों में ही अपनी शान रखने की बच्चों की-सी जिद थी। इतने पर भी हमारा प्रेम बढ़ता गया...।

"हमारी शादी के बिल्कुल साथ-ही-साथ देश की राजनीति में अनेक नई घटनायें हुईं और उनमें मेरी संलग्नता बढ़ती गई। वे होम-रूल के दिन थे। उनके पीछे फ़ौरन ही पंजाब के मार्शल लॉ और असहयोग का जमाना आया और मैं सार्वजनिक कामों के आँधी-तूफ़ान में अधिकाधिक फँसता ही गया। इन आन्दोलनों में मेरी तल्लीनता इतनी बढ़ गई थी कि ठीक उस समय, जबकि उसे मेरे पूरे सहयोग की आवश्यकता थी, मैंने अनजान में उसे बिल्कुल नजरअन्दाज कर उसे खुद के अपने भरोसे पर छोड़ दिया। उसके प्रति मेरा स्नेह बराबर बना रहा; बल्कि बढ़ा भी और यह जानकर बड़ी तसल्ली हुई कि वह अपने शान्ति-प्रद प्रभाव के साथ इसमें मेरी सहायक है। उसने मुझे बल दिया; लेकिन साथ ही उसकी तन्दुरुस्ती पर भी असर पड़ा होगा और उसने अपने प्रति कुछ लापरवाही को भी महसूस किया होगा। इस तरह उसे भूला-सा रहने और कभी-कदास ही उसकी सुध लेने के बजाय उसपर मेरी अकृपा रही होती, तो भी किसी क़दर अच्छा ही होता।

"उसके बाद उसकी बीमारी का दौरा शुरू हुआ और जेल-निवास के कारण मेरी लम्बी ग़ैर-हाज़िरी रहने लगी। हम केवल जेल की मुलाक़ात के समय ही मिल सकते थे।.........कभी-कभी होनेवाली ये मुलाकातें बेशकीमती होती गईं; हम उनकी बाट जोहते रहते थे और बीच के दिन गिनते रहते थे। हम आपस में एक-दूसरे से उकताते न थे और हमारी बातें नीरस नहीं हुआ करती थीं; क्योंकि हमारी मुलाक़ातें

और अल्पकालिक मिलन मे हमेशा कुछ-न-कुछ ताज़गी और नवीनता बनी रहती थी। हम दोनो बराबर एक-दूसरे मे नई-नई बाते पाते रहते थे। ..

'हमारे वैवाहिक जीवन के अठारह बरस बाद भी उसकी सूरत पर कौमार्य अभी तक वैसा ही बना हुआ था, स्त्रियोचित गम्भीरता का कोई चिन्ह न था। इतने दिन पहले वह जिस प्रकार दुलहिन बनकर हमारे घर मे आई थी, अब भी बिल्कुल वैसी ही मालूम होती थी।......

"वैवाहिक जीवन के अठारह बरस ! लेकिन इनमे से कितने साल मैंने जेल की कोठरियो, और कमला ने अस्पतालो और सेनिटोरियम मे बिताये ! और इस समय भी मै जेल की सजा भुगत रहा था और वह बीमार पड़ी हुई जीवन के लिए सघर्ष कर रही थी। अपनी तन्दुरुस्ती के बारे मे उसकी लापरवाही पर कुछ झुंझलाहट सी आई; लेकिन फिर भी मै उसे दोष किस तरह दे सकता था; क्योकि उसकी तेज़ तबीयत, अपनी अक्रियाशीलता और राष्ट्रीय युद्ध मे पूरा हिस्सा लेने मे अपनी लाचारी के कारण छटपटाती रहती थी। शरीर ऐसा करने मे समर्थ न होने के कारण न तो वह ठीक तरह से काम ही कर सकती थी, न ठीक तौर से अपना इलाज ही करा सकती थी। नतीजा यह हुआ कि अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रहनेवाली आग ने उसके शरीर को बरबाद कर दिया।

"सचमुच ही इस समय, जबकि मुझे उसकी सबसे अधिक आवश्यकता है वह मुझे छोड़ तो न जायगी ? क्यो ? इसलिए कि हम दोनो ने एक-दूसरे को ठीक तरह से पहचानना और समझना अभी शुरू ही किया है। हम दोनों ने एक-दूसरे पर बहुत भरोसा किया था; हम दोनो को एक साथ रहकर बहुत काम करना था।"

यह उद्धरण अपने-आप बोलता है। इसमे अपनी असमर्थता की वेदना

के भीतर से कमलाजी के प्रति जवाहरलाल का प्रेम फूटा पडता है।

पर जब प्रेम की कोपले फूटने ही लगी थी कि मृत्यु का भयकर प्रहार हुआ और कमलाजी इस लोक से चली गई।

पिता-पुत्र का स्नेह तो बहुतो को मालूम है। महाराजा महमूदाबाद-जैसे ताल्लुकेदारो की घनिष्ठता मे आराम और आराइश की जिन्दगी बसर करनेवाले मोतीलालजी, अपने एकलौते पुत्र जवाहर के स्नेह से खिंचकर ही असहयोग-आन्दोलन की आँधी मे आ पडे थे और तब से, मृत्यु के दिनतक, स्वभाव एव प्रकृति भिन्न होते हुए भी आजादी की लडाई मे उन्हे बढना ही पडा। जवाहरलाल के कष्टो पर कितनी ही बार उनकी आँखो मे आँसू आजाते थे। जवाहर के रूप मे मोतीलालजी ने अपना कलेजा देश की वेदी पर निकालकर चढा दिया और सब कुछ होने पर भी कभी-कभी जवाहरलाल को खतरो के बीच नि शक घुसते देख या अपने शरीर की परवा न करते देख मोतीलालजी झुँझला पडते और कभी स्वय लडकर एव कभी महात्माजी को पच बनाकर अपने प्रेम की भूख मिटा लेते थे।

— तीन —

जीवन-कथा

बीच मे जवाहरलाल की जीवन-कथा की कुछ साधारण बाते भी करले।

जवाहरलाल उच्च काश्मीरी ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए है। इनके पितामह प० गगाधर नेहरू दिल्ली मे कोतवाल थे। १८६१ मे गगाधरजी की मृत्यु होगई। उस समय उन्हे वशीधर एव नन्दलाल नामक दो पुत्र थे। मृत्यु के ३-४ महीने बाद प० मोतीलालजी नेहरू का जन्म हुआ।

मोतीलालजी ने बडे होकर वकालत मे बडी सफलता पाई। इन्ही

मोतीलालजी के यहाँ प्रयाग के मीरगज मुहल्ले मे, १४ नवम्बर १८८९ ई० को श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू के पेट से जवाहरलाल का जन्म हुआ। इसके पहले मोतीलालजी की प्रथम पत्नी का देहान्त हो चुका था तथा पहली सतान भी मर चुकी थी, इसीलिए मोतीलालजी पुत्र को बहुत मानते थे। यह बच्चा माता-पिता का जीवन-सर्वस्व था, उनकी सारी ममता उसीमे केन्द्रीभूत होगई थी। प्यार से सब इन्हे 'नन्हा' कहते थे। नन्हा कभी-कभी बडे मज़े करता था। उसकी एक आदत तो बडे विनोद की वस्तु थी। मचलते और रोते उसे देर ही न लगती थी, जब रोने की उमग आती, वे-बात रोने लगता और जब कोई कारण पूछता तो फिर और ज़ोर-ज़ोर से पूछने वाले का नाम लेकर रोता और कहता—"हमे इसने मारा है।" दूसरा कोई पूछता तो उसे ही मारनेवाला वतलाता। जैसे-जैसे पूछनेवाले बदलते जाते वैसे ही वैसे मारनेवाले का नाम भी बदलता जाता। उसकी इस लीला पर लोग खूब कहकहे लगाते थे।

जन्म

वचपन की एक आदत

सन् १९०० ई० मे मोतीलालजी ने मुरादाबाद के जज कुँअर परमानन्द का बँगला ख़रीदा और उसे भोग-विलास की सामग्री से सुसज्जित कर 'आनन्द-भवन' बना दिया। आज तो यह पुराना आनन्द-भवन, स्वराज्य-भवन के रूप मे काग्रेस की सम्पत्ति होगया है और मिटते हुए वैभव की परछाई-मात्र रह गया है।

जवाहरलाल का वचपन इन्ही आराम-आसाइश की परिस्थितियो मे वीता। दाइयाँ—और अग्रेज दाइयाँ सदा ख़िदमत मे हाज़िर रहती थी। यह सब था पर जवाहरलाल वचपन से ही शान्त एव गभीर थे; प्रत्येक वात को गभीर दृष्टि से देखते

दृढता के लक्षण

थे। जो वात उन्हे ठीक जँच जाती उसे करने से न चूकते थे।

'६ से १२ वर्ष तक घर पर योग्य अध्यापको-द्वारा सामान्य शिक्षा दी गई। घर पर ही पढना-लिखना, खेलना-कूदना सब-कुछ होता था।

घर पर शिक्षा

घोडे पर चढ़ना, फुटवाल और टेनिस खेलना और घर के छोटे जल-कुण्ड मे तैरना इत्यादि उनके नित्य के विनोद थे। इसके वाद १२ वर्ष की अवस्था मे प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री एफ० टी० ब्रुक्स तथा गवर्नमेण्ट हाई स्कूल प्रयाग के तात्कालिक हेड-मास्टर श्री गार्डन इनके शिक्षक नियत हुए। श्री ब्रुक्स एक स्वाधीन एव विद्वान् विचारक तथा भारतीय सस्कृति के प्रेमी थे। उनके व्यक्तित्व का वालक जवाहरलाल पर वड़ा प्रभाव पडा।

अंग्रेज़ होते हुए भी श्री ब्रुक्स वडे ही शान्ति-प्रेमी थे। हिन्दू वेश में सादी चाल से रहते थे। अधिकाश समय आध्यात्मिक चितन मे जाता था। ईश्वर में उनका अगाध विश्वास था। मास-मदिरा से उन्हे अरुचि थी। पाश्चात्य रंग में रगे

श्री ब्रुक्स का प्रभाव

मोतीलालजी के कुटुम्ब मे उनका प्रवेश ही एक आश्चर्य-जनक घटना-सी मालूम होती है। उन दिनो का आनन्द-भवन पश्चिम के मोहक वातावरण में मुग्ध था। विलास जवानी पर पहुँच चुका था। कभी अठखेलियाँ करता, कभी गुदगुदाता—चारो तरफ विनोद करता-फिरता था। चारो ओर वही वह था। उसके वीच अपनी सात्विक पूँजी का प्रकाश लिये यह हृदय का हिन्दू और जाति का अग्रेज, जाति के हिन्दू और हृदय के अग्रेज मोतीलालजी के वच्चे जवाहरलाल पर अपने सस्कार डाल रहा था। केवल साहित्य-ज्ञान कराना ही श्री ब्रुक्स का उद्देश्य न था। वालक के जीवन को सदाचरणशील वनाने की ओर ही उनकी अधिक रुचि थी। जवाहरलाल मे शिक्षा पर अमल करने की दृढता

खूब थी। दो-एक उदाहरण यहाँ दूँगा। एक दिन अध्यापक महोदय ने बताया कि माँस खाना पाप है। शिष्य ने मन मे इसकी गाँठ बाँध ली। खाने के समय टेबुल पर बैठते ही कहा—"मै माँस न खाऊँगा। मुझे मास्टर साहब से मालूम हुआ है कि माँस खाना पाप है।" इसी प्रकार कुछ दिनो बाद उन्होने थियेटर-सिनेमा जाना भी छोड दिया। मोतीलालजी को यह बात अच्छी न लगी। वह तो दूसरे प्रवाह मे बह रहे थे, अत कुछ दिनो बाद उन्होने इस योग्य शिक्षक को अलग कर दिया। जवाहर-लाल फिर पाश्चात्य जीवन और रहन-सहन के प्रवाह मे बहने लगे, पर वह सस्कार तो बीज की तरह उनके भीतर रह गया था। असहयोग-काल मे, आँख खुलने पर, वह, फिर राख के भीतर पडी आग की तरह, स्वतत्रता की हवा लगते ही, चमक उठा। उनके मानसिक विकास पर आज हम थियॉसफी की उदार भावना—'स्पिरिट'—तथा सौन्दर्यानुभूति की छाप देखते हैं।

विलायत-यात्रा

सन् १९०४ ई० मे प० मोतीलालजी ने पुत्र को विलायत भेजकर उच्च-शिक्षा दिलाने का निश्चय किया, पर उससे विशेप स्नेह होने के कारण अकेले भेज न सके और सपरिवार इग्लैण्ड गये। वहाँ के प्रसिद्ध प्राचीन स्कूल हैरो (हैरो ऑन् दि हिल[१]) मे इनका नाम लिखा गया। इग्लैण्ड के अनेक राजनीति-विशारदो एव विचारको ने यहाँ शिक्षा पाई है। लार्ड हेस्टिंग्स, सरजान शोर, मार्क्विज वेलेजली, लार्ड डलहौज़ी, लार्ड लिटन, लार्ड हार्डिंज इत्यादि भारत के पूर्व गवर्नर-जेनरल एव वायसराय, पामर्सटन, राबर्ट पील, वाल्डविन इत्यादि इग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री तथा शेरीडन, बायरन, विंस्टन

१ यह स्कूल लंदन से दस मील दूर, 'मिडिल-सेक्स' ग्राम की सुरम्य पहाडी पर स्थित है।

चर्चिल इत्यादि नाटककार, कवि एव राजनीतिज्ञ यही की उपज है। इग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन पर इस विद्यालय ने वडा प्रभाव डाला है। इस स्कूल का अध्ययन बडा व्यय-साध्य है, पर पडितजी ने रुपये को पानी की भाँति खर्च करके पुत्र को पढाया। इनके सहपाठियो मे कपूरथला के युवराज, महाराज गायकवाड के पुत्र स्व० राजकुमार जयसिंह, सर सुलेमान (आजकल इलाहाबाद के चीफ जस्टिस) इत्यादि प्रमुख थे। इस स्कूल से इन्ट्रेस की परीक्षा पासकर जवाहरलाल, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध 'ट्रिनिटी कालेज' मे भरती हुए और जूलोजी (जन्तु-विज्ञान), वोटनी (वनस्पति-विज्ञान) एव केमिस्ट्री (रसायन) मे सम्मान-सहित बी० ए० की परीक्षा पास की। जवाहरलाल की असाधारण योग्यता से कालेज के अध्यापको और सचालको ने सन्तुष्ट होकर, विना परीक्षा लिये इन्हे एम० ए० आनर्स का सार्टीफिकेट दे दिया। ट्रिनिटी कालेज मे इनके सहपाठियो मे श्री शेरवानी, श्री ए० एम० ख्वाजा, डा० महमूद, डा० किचलू इत्यादि थे। स्व० श्री जे० एम० सेनगुप्त इस समय तक कालेज की पढाई लगभग समाप्त कर चुके थे। यह भी जवाहरलाल के लिए एक सौभाग्य की वात है कि आगे चलकर इन सहपाठियो मे प्राय. सभी उनके साथ भारतीय स्वाधीनता के सग्राम मे वीरता-पूर्वक खड़े हुए और पहले का वह परिचय एक-दूसरे के प्रति आदर एवं सम्मान में वदलता गया।

वैरिस्टर

यहाँ की शिक्षा समाप्त कर, वैरिस्टरी की शिक्षा ग्रहण करने के लिए वह लन्दन के 'इनर टेम्पुल' मे प्रविष्ट हुए और १९१२ ई० मे 'वार-एट-ला' की डिग्री प्राप्त कर ली।

इसके वाद, १९२०ई०तक प्रयाग हाईकोर्ट मे पिता के साथ वैरिस्टरी करते रहे। फरवरी १९१६ ई० मे, दिल्ली मे, प० जवाहरलाल कौल की पुत्री कुमारी कमला से, वडी धूम-धाम के साथ, उनका विवाह हुआ।

इस विवाह मे कितने ही उच्च यूरोपियन, एग्लो-इडियन भी निमत्रित होकर आये थे। १९१७ ई० मे पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १९२४ ई० मे आपको एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था, पर जन्म के तीसरे ही दिन जाता रहा।

—चार—

सार्वजनिक जीवन

जवाहरलाल शुरू से ही बडे कोमल हृदय के रहे है। कालेज की पढाई के समय ही भारत मे होने वाले अत्याचारो की ओर इनकी दृष्टि थी। उस समय ला० हरदयाल भी इग्लैण्ड मे ही थे। भारतीय छात्रो की सभा मे अक्सर राजनीति की चर्चा चलती रहती थी। स्वदेश लौटते ही (१९१२ मे), पटना कांग्रेस मे शामिल हुए और तब से प्राय प्रत्येक काग्रेस-अधिवेशन मे भाग लेते रहे है। सन् १९१४ ई० मे प्रवासी-भारत-वासियो की सहायता के लिए श्री गोखले के अपील करने पर उन्होने पचास हज़ार रुपये सग्रह कर अफ्रीका भेजे थे। यूरोपीय महायुद्ध के बाद डा० एनी बेसेण्ट के 'होमरूल' आन्दोलन मे इन्होने जोरो से भाग लिया। यदि मेरी स्मरण-शक्ति मुझे धोखा नही देती तो प्रयाग की होमरूल लीग के वह शायद कोई पदाधिकारी भी थे और सुन्दरलालजी के साथ मिलकर काम करते थे। फिर १९१९-२० मे अवध के किसानो मे काम करने लगे। इसकी दृढता के कारण यह आन्दोलन सफल हुआ और सरकार को 'अवध टिनेसी' कानून बनाकर किसानो की स्थिति मे सुधार करने को बाध्य होना पड़ा।

होमरूल-आँदोलन में

इसी वर्ष, महायुद्ध मे अपनी अनुपम सेवाओ के पुरस्कार मे, भारत को जलियाँवाला-हत्याकाण्ड के अपमानो का अनुभव करना पडा। कितने

ही निहत्थे भारतीय जेनरल डायर की गोलियो-द्वारा भून दिये गये;

देश-भक्ति का प्रथम पुरस्कार

प्रतिष्ठित नागरिको के साथ पशुओ-सा व्यवहार किया गया और बच्चे भी राज-द्रोह के अभियोग में फाँसे गये। इस हत्याकाण्ड की जाँच करने के लिए जवाहरलाल भी पिता के साथ पजाब गये और वहाँ की घटनाओ का ज्ञान प्राप्त कर विदेशी शासन की क्रूरताओ और बर्बरताओ के कारण, इन्हे आरामतलबी के नेतापन से घृणा होगई। और कुछ ही दिनो बाद असहयोग-आन्दोलन आरभ होने पर, बैरिस्टरी छोड यह उसमे कूद पडे और महात्मा गाँधी के खास सहायक बन गये। स्थान-स्थान पर घूम-घूम कर लोगों को असहयोग के मत्र की दीक्षा देने लगे। फल-स्वरूप १९२१ मे ६ महीने की सजा हुई। जनता समाचार पाकर क्षुब्ध होगई। लोगो ने जगह-जगह सभाये करके इसका विरोध किया। सैकड़ो आदमी जेल जाने को तैयार हो गये। मजबूर होकर सरकार ने कुछ ही सप्ताह बाद इन्हे छोड दिया।

जेल से छूटकर जवाहरलाल दूने उत्साह से काम मे लग गये। मई १९२२ मे प्रयाग कांग्रेस-कमेटी के आदेशानुसार, विदेशी कपडा बेचनेवाले

दूसरी बार

बजाजो की दुकानो पर धरना देने के कारण कुछ साथियो के साथ फिर गिरफ्तार हुए और १८ मास की कडी कैद तथा १००) जुर्माने की सजा मिली।

इसके बाद देश के हृदय मे उफान आ गया। हज़ारो युवक धरना दे कर तथा अन्य कानूनो को तोड़कर जेल जाने लगे। जेलो मे जगह न

छुटकारा

रहीं। सरकार सर पर यह मुसीबत मोल लेकर पछताने लगी और प० जवाहरलाल को, अन्य अनेक कैदियो के साथ, प्रान्तीय सरकार ने छोड दिया। इस प्रकार नौ महीने

जेल मे बिताकर १९२३ के आरम्भ में जवाहरलाल फिर स्वतन्त्र हो गये और देश के काम मे लग गये।

इन्ही दिनो भारत-सरकार ने नाभा रियासत के महाराज रिपुदमन-सिंह को गद्दी से उतारकर राज्य का शासन एक कमिटी के हाथ मे दिया। इससे असन्तुष्ट हो अकालियो ने सत्याग्रह आरम्भ किया और उनपर भयकर अत्याचार होने लगे।

दिल्ली-काग्रेस के समाप्त होने पर पण्डित जवाहरलाल नाभा के प्रश्न को समझने के विचार से उस राज्य मे गये और कुछ अकाली जत्थो से भेट की। इसी समय १४४ धारा के अनुसार आज्ञा-पत्र निकालकर उन्हे राज्य मे घूमने की मनाही की गई और इसकी अवहेलना करने पर वह गिरफ्तार कर लिये गए और दफा १४३ और १८८ के अनुसार मुकदमा चलाया गया।

निषेधाज्ञा तथा आज्ञा-भंग

मुकदमे मे पण्डित जवाहरलाल अपराधी ठहराये गये और एक अभि-योग में दो वर्ष तथा दूसरे मे ६ मास कैद की सज़ा दी गई। पीछे दोनो सजाये मुलतवी की गई और अबतक मुलतवी ही पड़ी है।

१९२२ मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू सर्वसम्मति से प्रयाग म्युनि-सिपैलिटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और १९२५ तक बड़ी योग्यता और निर्भीकता से यह काम किया। इनके प्रबन्धकाल मे प्रयाग म्युनिसिपैलिटी ने बडी उन्नति की। इस बात को तात्कालिक कमिश्नरो ने भी, वार्षिक रिपोर्टो की आलोचना करते हुए, स्वीकार किया है और जवाहरलालजी की कार्य-क्षमता की वडी प्रशसा की है।

म्युनिसपलिटी के अध्यक्ष

१९२६ के आरम्भ में, पत्नी कमला के वीमार पडने और क्षय रोग के चिन्ह प्रकट होने पर जवाहरलाल उन्हे लेकर स्वीज़रलैण्ड गये और

वहाँ सैनिटोरियम मे रहने के बाद, पत्नी के कुछ स्वस्थ होने पर, फरवरी १९२७ मे भारतीय राष्ट्रसभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य-विरोधी सघ के जेनेवा-अधिवेशन मे सम्मिलित हुए, और उसके पाँच अध्यक्षो मे (आइन्स्टीन, रोम्या-रोला, श्रीमती सनयातसेन, जार्ज लैंसबरी के साथ) यह भी एक अध्यक्ष चुने गये। उसके एक प्रधान मत्री भी चुने गए थे, पर कार्य-भार की अधिकता से क्षमा माग ली और सघ की कार्य-समिति के सदस्य चुने गये। सोवियट-सरकार के निमन्त्रण पर नवम्बर १९२७ मे रूस गये और वहाँ रूसी प्रजातन्त्र के दशम वार्षिकोत्सव मे सम्मिलित हुए। वहाँ उन्होने साम्यवाद का व्यावहारिक रूप देखा तथा यूरोपीय साम्राज्यवादी राष्ट्रो की कुटिल नीति का अध्ययन करके स्वदेश लौटे।

यूरोप-यात्रा

स्वदेश लौटने पर झाँसी के युक्तप्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन, पजाब प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन तथा अन्य सभा-सम्मेलनो के सभापति की हैसियत से जवाहरलाल ने जो भाषण किये, उनमे उनकी यूरोप-यात्रा के अनुभवो एव विचारो का प्रभाव स्पष्ट दीख पडता है। जवाहरलाल जब यूरोप से लौटे, एक बिलकुल नई विचार-धारा लेकर भारतीय राजनीति मे प्रविष्ट हुए। अभीतक किसी नेता ने समाज-व्यवस्था के नूतन-निर्माण की राजनीतिक उपयोगिता लोगो के सामने न रक्खी थी। इसलिए इस बार वह न केवल एक सिपाही और नेता वरन् विचारक एव समाज-विधायक के रूप मे भी हमारे सामने आये। उनके आगमन से देश के युवक-आन्दोलन को बडी स्फूर्ति मिली और बगाल प्रान्तीय छात्र-सम्मेलन एव बम्बई-प्रान्तीय युवक-सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से जो भाषण उन्होने दिये, उनमें उनके क्रान्तिकारी विचार बडे व्यापक रूप मे प्रकट हुए है।

प्रजातन्त्र-परिषद् के अध्यक्ष

१९२७ मे हिन्दुस्तानी सेवा-दल तथा मद्रास की प्रथम प्रजातन्त्र परिषद् के सभापति हुए। इसके साथ ही मजूर-समस्या का अध्ययन करके उन्होंने मजूर-आन्दोलन मे भी विशेष भाग लेना शुरू किया और १९२९ मे मजूर-काग्रेस के नागपुर अधिवेशन के सभापति की हैसियत से वर्तमान समाज-सगठन की मूलभूत कमजोरियो का खाका बडी कुशलता के साथ खीचा। १९२७ की मद्रास काग्रेस मे स्वतन्त्रता का प्रस्ताव उपस्थित किया और पुराने विचार के नेताओ के आनाकानी करने पर भी काग्रेस का ध्येय स्वराज्य घोषित करा लिया। सितम्बर १९२८ मे इन्होने 'भारतीय स्वाधीनता-सघ' कायम किया।

१९२३ से १९२९ तक (बीच के यूरोपीय प्रवास-काल को छोड़कर) वह बराबर काग्रेस के प्रधानमन्त्री रहे हैं। और इस समय, मजूर-आन्दोलन, युवक-आन्दोलन तथा स्वाधीनता-आन्दोलन के खास नेताओ मे है।

१९२९ मे वह लाहौर काग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और इन्हीकी अध्यक्षता में काग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता के लक्ष्य को स्वीकार किया। उसके बाद १९३० मे जो सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ उसमे ज़ोर-शोर से भाग लिया और सत्याग्रह के सिलसिले मे तीन बार जेल गये। जेल मे भी अपना समय इन्होने अपने विचारो को स्पष्ट करने के उद्देश्य से अध्ययन और लेखन कार्य मे लगाया। इनकी दो प्रसिद्ध पुस्तके 'विश्व-इतिहास की झलक' और 'मेरी कहानी' प्रधानत जेल की ही उपज है। १९३६ के अप्रैल और दिसम्बर मे होनेवाले लखनऊ और फैजपुर काग्रेस-अधिवेशन के भी यह अध्यक्ष हुए। देश मे दौरो की धूम मचा दी। जबर्दस्त जागरण हुआ। मई १९३८ तक यही क्रम चलता रहा। जून १९३८ मे योरप गये। और १९३९ मे वहाँ से लौटने के बाद ही देशी राज्यो के आन्दोलन में भाग लेने लगे और देशी राज्य प्रजा परिषद् के

लुधियाना अधिवेशन के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होने बडा प्रभावपूर्ण भाषण किया। मार्च १९३९ की त्रिपुरी काग्रेस मे, गाँधीजी की अनुपस्थिति मे अधिवेशन को सफल बनाने और काँग्रेस मे फूट न होने देने का श्रेय इन्हीको है।

—पाँच—

विकास-रेखा

भविष्य की सूचना

यद्यपि जवाहरलाल के परवर्ती जीवन पर अनेक शक्तियो का प्रभाव पड़ा है, किन्तु जीवन के बिलकुल आरम्भ मे भी, उनके अन्दर आगे आनेवाली घटनाओ तथा उनके भावी जीवन-गठन के बीज मिलते है। 'अलकाफिर' नामक एक लेखक ने लिखा है कि जवाहरलाल ने, 'बल्ब'[१]—भजक के रूप मे अपना बचपन आरम्भ किया, मानो साम्राज्यवाद के विरोध के बीज बचपन से ही अकुरित होने लगे हो।

तेजस्विता

आज उनमे जो तेजस्विता और स्पष्टवादिता है उसके चिन्ह तो उनके बाल-जीवन मे बहुत मिलते है। तेजस्विता उनका पैतृक गुण है। स्पष्टवादिता मे वह माता-पिता तथा गुरुजनो के साथ भी रिआयत नही करते। इस सम्बन्ध मे दो-एक घटनाये याद आती है। सन् १९१७ ई० में श्रीमती बेसेण्ट का होमरूल-आन्दोलन जोरो पर था। मोतीलालजी और जवाहरलाल दोनो उसमे काम कर रहे थे। जवाहरलाल ने उस समय बड़ा काम किया था। सन्

१ बल्ब=बिजली के ऊपर का शीशे का गोला या ढक्कन जो तरह-तरह का होता है। इसी के अन्दर बिजली के तार होते हैं जिनसे प्रकाश होता है।

१९१८ ई० मे श्रीमती बेसेण्ट को उनके दो प्रमुख साथियो के साथ, सरकार ने नजरबन्द कर लिया। जनता मे तूफान उठ खडा हुआ। स्थान-स्थान पर विरोध मे सभायें हुई। लखनऊ मे सयुक्त प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का एक विशेष अधिवेशन किया गया। मोतीलालजी सर्वसम्मति से इसके अध्यक्ष चुने गये थे। अपने भाषण मे उन्होने सरकार-द्वारा किये गये अनेक अन्यायो का जिक्र करने के बाद उसी पुराने ढग से कहा कि 'इन बातो के लिए आन्दोलन करते हुए भी हमे ब्रिटिश जनता की सद्भावना मे विश्वास रखना चाहिए, क्योकि हमारे भाग्य का अन्तिम निर्णय उसीके हाथ है।'

पण्डितजी अपने भाषण मे से ये वाक्य पढ ही रहे थे कि एक तरफ से, सुपरिचित कण्ठ से, आवाज आई—"क्वेश्चन[१]।" यह जवाहरलाल की बोली थी। इस प्रश्न के मर्म पर विचार किये बिना ही, मोतीलालजी तमतमा उठे, अपना चश्मा उतारकर एक तरफ रख दिया, भाषण की हस्तलिपि एक ओर पटक दी और टेबुल पर जोर से हाथ पटककर बोले—"इस (मेरी बात) से इन्कार करने का साहस कौन करता है?" फिर धीरे से, एक ओर से वही 'क्वेश्चन' शब्द आकर सभा मे गूंज उठा। मोतीलालजी उत्तेजित होकर बोले—"जिसे साहस हो, सामने आकर मेरी धारणा को असत्य साबित करे।" प्रश्नकर्ता—पुत्र—शात हो गया। मोतीलालजी की बात रह गई, पर शायद ही कभी जवाहरलाल ने अपने सार्वजनिक जीवन मे इससे बडी दूसरी विजय प्राप्त की हो।

उनके इस एक शब्द में जो सत्य था वही आगे चलकर न केवल उनके जीवन में व्याप्त होगया वरन् चैलेंज—चुनौती—देनेवाले पिता को भी, अपने बाद के जीवन मे मानना पडा कि वह एक नशा और झूठा स्वप्न था।

१ 'क्वेश्चन'=प्रश्न; आपत्ति। भावार्थ यह कि यह बात शका के योग्य है, ठीक नहीं है।

इसके थोडे ही दिनो बाद की एक और घटना है। सन् १९१९ का जमाना था। भारत के राजनीतिक आकाश में आँधी आ रही थी। जागरण के नवीन इतिहास की रूप-रेखा बन रही थी। भारतीय क्षितिज धुँएँ से भर रहा था और आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन के प्रकाश के लिए कलेजे कराह रहे थे। भारतीय जनता एवं व्यवस्थापको के लाख विरोध करने पर भी रौलट बिल कानून बना दिया गया था। उस समय के इतिहास में यह 'काला कानून' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। महात्मा गाँधी ने स्वावलम्बन का झण्डा उठाया और सत्याग्रह का रास्ता देश के सामने रक्खा। सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र भराये जा रहे थे। स्वदेशी-ग्रहण और उपवास, इसके ये दो मुख्य अग थे। एक सार्वजनिक सभा मे मोतीलालजी ने पहले का समर्थन किया और दूसरे पर हस्ताक्षर करने को अनावश्यक बताया। उस समय फिर एक चिरपरिचित आवाज़ सभा-स्थल में गूंज उठी—"शर्म!" मोतीलालजी उस समय भी क्रोध के आवेश में आ गये थे और कई दिनो तक दुखी रहे।

एक दूसरी घटना

मतलब यह कि जो तेजस्विता आज जवाहरलाल में है उसके बीज उनमे सार्वजनिक जीवन के बिलकुल आरंभ में ही दिखाई पड़ते है।

साहसिक प्रवृत्तियाँ भी आरम्भ से ही उनमे है और इसका कारण यह है कि शुरू से वह अंग्रेजियत के वातावरण मे पले, अंग्रेज़ो के साथ रहे, उनका संग, उनके रहन-सहन को खूब अपनाया, इसलिए जिस साहसिकता—एडवेंचर—के लिए अंग्रेज़ दुनिया-भर मे प्रसिद्ध है, वह उनमें न आती, यह कैसे संभव था? जवाहरलाल बड़े साहसी है; जोखम में उन्हे मज़ा आता है। इसीके पीछे दो बार वह मरते-मरते बचे। सन् १९०९ ई० मे कुछ मित्रो के

साहसिकता

साथ घूमने के लिए नार्वे[1] गये। एक दिन ग्लेशियर (बर्फ का सोता) मे नहाने की ठहरी। झरने की गति बहुत तेज़ थी। यह साहस करके सबसे आगे बढ गये, पैर फिसल गया और यह प्रवाह मे पड गये। तेज़ी से चट्टानो एव एक ऊँचे जल-प्रपात की ओर बहने लगे। सौभाग्य से एक साहसी यूरोपीयन ने खीच लिया और यो यह बाल-बाल बच गये।

इसी प्रकार की एक और घटना है। जिस साल ब्याह हुआ उसी साल १९१६ ई० मे, यह लद्दाख गये। एक बर्फीला पहाड पार करते समय, खड्ड मे गिर गये और बडी कठिनाई से रस्सियो-द्वारा निकाले जा सके। यह घटना १८००० फुट की ऊँचाई पर घटित हुई थी। लाठियो की वर्षा एव गोलियो की बौछार के समय निधडक आगे बढनेवाले जवाहरलाल मे यह साहसिक वृत्ति नई नही है—केवल विकसित हुई है।

सार्वजनिक जीवन मे तो उनकी विकास-रेखा बडी स्पष्ट है। पहले हम उनको अग्रेज़ी रग मे डूबा हुआ देखते है। फिर 'होमरूलर' राष्ट्रवादी के रूप मे इनके दर्शन होते है। इस समय इन्होने जो काम किया उसमें उत्साह तो है, पर इस उत्साह के साथ प्राणदराष्ट्रीयता की—भाई-भाई की एकता की भावना नही है। यह भावना पजाब के पैशाचिक हत्या-काण्ड के कुटिल दृश्यो के बाद आई। इसके पूर्व भारत के शासक भारत को जो विष पिला चुके थे उसीकी मूर्च्छना मे वह डूबा हुआ था। सुरेन्द्रनाथ, विपिनपाल, यहाँतक कि तिलक के आन्दोलन ने भी जनता

राष्ट्र में तूफान

को समष्टिरूप से सचेत करने मे सफलता न प्राप्त की। राष्ट्र के हृदय तक पहुँचने का प्रयास ही न हुआ। कुछ क्रान्तिकारी इसे समझते थे, पर उनका अलग ही एक सम्प्रदाय बना हुआ था। कई बार झकझोरकर नेताओ ने राष्ट्र को

१. यूरोप के उत्तर हिस्से में बसा हुआ एक ठण्डा देश।

जगाने की कोशिश की, पर विष के गहरे नशे मे डूबा यह रोगी आँख खोल देता—नशे मे ही जगानेवाले को देखता पर पहचान न सकता। जेनरल डायर एव सर माइकेल ओडायर के काले कारनामो का वज्रपात उस समय हुआ जब लोगो को उसकी सबसे कम आशा थी। राज-भक्ति एव यूरोपीय महायुद्ध मे साम्राज्य की सेवा का बदला पाने को उत्सुक भारतीय हृदय यह कठोरता बर्दाश्त न कर सका। यह कुछ अजीब तरह का पुरस्कार था जिसे भारत का सरल हृदय नही पहचानता था। यह उसकी मनुष्यता को एक "चैलेंज"—एक चुनौती—थी जिसे, विवश होकर पर, आशा के साथ, उसने स्वीकार किया। आँखे खुल गई।

इस समय भारत मे इस युग के जिस महायज्ञ का आरभ हुआ, उसके पुरोहित महात्मा गाधी को इन वर्षो मे कई मूल्यवान सहयोगी प्राप्त हुए है। इनमे एक-से-एक चमकदार रत्न है। उनकी तुलना नही की जा सकती। ऐसा करना उनकी ईमानदारी का अपमान करना है, पर इसमे सदेह नही कि जवाहरलाल इनमे अन्यतम है। गाधीजी के बाद, उनके साथ भारत की सबसे अधिक आकाक्षाये बँधी रही है—आज भी बँधी है, ऐसा कहने मे, मै समझता हूँ, अत्युक्ति नही।

× × ×

असहयोग-काल मे हम जवाहरलाल को बिलकुल बदले रूप मे पाते है। यहाँ हम उन्हे किसानो के बीच, सीधे-सादे वेश मे, देखते है। जवाहरलाल और वल्लभभाई, दो ही ऐसे नेता है जिन्होने किसानो को पहचाना और उनके अन्दर छिपी शक्ति का अन्दाज़ा लगाने तथा उनकी सेवा-द्वारा, उसे जाग्रत करने की कोशिश की है। महात्माजी का नाम मै जान-बूझकर नही लेता। यद्यपि किसान-आन्दोलन के महत्त्व से वह खूब परिचित है—उनसे अधिक किसान-हृदय को शायद ही किसी ने

पहचाना हो—पर राष्ट्रीय पुनर्जागरण के विविध कार्यों मे लगे रहने के कारण, इस क्षेत्र मे सक्रिय आन्दोलन वह बहुत थोड़े परिमाण पर कर सके है।

यद्यपि सन् १९१८ मे ही जवाहरलाल किसानो का कार्य करने लगे थे, पर उसे प्रधानता तब भी न मिली थी। असहयोग-युग के जवाहर लाल की वाणी—'भारत का भविष्य किसानो के हाथ है'—का यदि वह अर्थ लगाया जाय, जो है तो इसमे एक महान् सत्य है। इस समय जवाहरलाल विलासिता के वातावरण को रौदकर पहली बार मुक्त वायुमण्डल में आये और पहली बार उन्होने भारतीय किसान को पहचाना। इस ससर्ग मे उन्हे भारत के सच्चे दर्शन हुए और यही समय था जब उनके मुँह से सुनाई पडा—"सरकार की सारी मशीन किसानो के पैसे से ही चल रही है। × × × हमारे शहर भी देहातो के व्यय पर ही गुजर करते है।" इस सहानुभूति में एक ओर भारत की राजनीतिक दिशा का निर्देश था और दूसरी ओर उस साम्यवाद का बीज था जो आगे चलकर स्पष्ट एव स्पष्टतर होने वाला था। वस्तुत जवाहरलाल की मनोरचना ही उस उपजाऊ मिट्टी से हुई है जिसमे साम्यवाद के बीज का अकुरित न होना ही आश्चर्यजनक होता।

ग्रामोन्मुख सेवा

सन् १९१९ से २१ तक किसान-आन्दोलन युक्तप्रात और विशेषत अवध में एक महाशक्ति की भाँति उठ खडा हुआ। उन दिनो उन्हे रात-दिन इसीकी लगन थी। प्रतापगढ जिले मे तो बहुत ज्यादा काम किया था। महलो के राजसी ठाट-बाट को छोडकर दीन-हीन पीडित किसानो के प्रेम में, फकीर बने; घूमते-फिरते थे। मैने स्वयं उन्हे किसानो की झोप-

अवध का किसान-आन्दोलन

ड़ियों में साधारण कम्बल बिछाकर सोते देखा है; किसानों के घर जो मोटी रोटी और साग-पात मिलता, उसे प्रेम से खाते देखा है। पानी बरस चुका है—खेतों एवं देहाती गलियों में भर गया है। उनके बीच धोती उठाये मीलों चले जा रहे हैं। बातें साधारण हैं: पर जवाहरलाल के लिए असाधारण हैं। जिसके लिए अनेक प्रकार के सुस्वादु भोजन बनते थे; जिसने जीवन के २६—२७ वर्ष राजाओं के लिए भी दुर्लभ विलासिता में बिताये थे; जो यह न जानता था कि पैदल चलना किसे कहते हैं, उसके लिए सूखी मोटी रोटियाँ, फटे कम्बल, और मीलों पैदल चलना—अवश्य ही असाधारण हैं!

पर इसका क्या परिणाम हुआ था? किसानों में जीवन आ गया था। जैसे सुप्त समुद्र में तूफान आता है और बड़े-बड़े जहाजों को भी इधर-उधर कर देता है वैसे ही यह किसान-आंदोलन सरकारी सत्ता को डगमगाने लगा। अवध में एक

संगठन के वे दृश्य!

बवण्डर-सा आगया था। मैंने फिर जीवन में कभी वैसा संगठन नहीं देखा। एक भी गाँव ऐसा न था जहाँ पंचायत न हो और जहाँ पंचायत की बात को क़ानून पर तरजीह न दी जाती हो। जो हुक्मी करते, उनका ज़बर्दस्त बहिष्कार होता—नाई बाल न बनाता, धोबी कपड़े न धोता, यहाँतक कि उसका जीवन दूभर हो जाता और उसको झुकना पड़ता। कितने ही ताल्लुक़ेदार नौकर न मिलने से अपने इलाक़े छोड़ लखनऊ चले गये। खेतों की बेदख़ली न हो पाती थी, न इजाफ़ा ही हो पाता था; क्योंकि एक भाई के विरुद्ध दूसरा उम्मीदवार खड़ा ही नहीं होता था और बिना इसके क़ानून की रू से बेदख़ली या इजाफ़ा न हो सकता था। सरकार ने यह देखा तो घबड़ा उठी। पीछे तो दमन की आँधी ऐसी चली जिसका ठिकाना नहीं: पर इस कार्य में जवाहरलाल बहुत उठे—उनकी

जीवन-दिशा बदल गई, उनको भारत का एक नया अनुभव हुआ और किसानो के सम्पर्क ने उनके हृदय मे साम्यवाद का बीज बो दिया।

इसके बाद तो असहयोग के समय से बराबर यह महात्माजी के साथ काम करते रहे हैं। इन कामो का जिक्र संक्षेप मे हम ऊपर कर चुके है। अँग्रेजी नीति से दिन-दिन उनका विश्वास उठता जा रहा था। भारत के उस समय के स्वराष्ट्र-सदस्य सर मालकम हेली ने ८ फरवरी १९२४ ई० को भारतीय व्यवस्थापिका सभा मे जो भाषण किया उससे स्पष्ट होगया कि भारत को पूर्ण औपनिवेशक स्वराज्य देना भी सरकार का उद्देश्य नही है। उनका कहना था कि 'उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के लिए यह अनिवार्य नही है कि व्यवस्थापक सभाओ को सारे अधिकार दे ही दिये जाँय। उन्हे सीमित रखने से भी उत्तरदायी शासन चल सकता है।' भारतीय राजनीतिक विचार-दिशा को पूर्ण स्वतन्त्रता की ओर ले जाने मे इस व्याख्यान ने बडा काम किया है। लगभग ४ वर्ष तक इस व्याख्यान के शब्दो को लेकर भारतीय राजनीति मे बहस-मुवाहिसे चलते रहे। नेहरू-रिपोर्ट लिखने के बाद भी जब इस दिशा मे कुछ होता नही दीखा तो युवक असतुष्ट हो उठे। ज्यो-ज्यो सरकार का रुख अस्पष्ट और कठोर होता गया त्यो-त्यो देश के यौवन में असतोष की मात्रा बढती गई और अन्त मे स्वतन्त्रता-सघो एव युवक-आन्दोलन के रूप मे, सर मालकम हेली की बात का, देश के युवको ने जवाब दिया।

जवाहरलाल तीसरी बार जेल से आचुके थे। और तब से स्वराजवादियो एव अपरिवर्तनवादियो का गृह-कलह देख-देखकर दुखित थे।

स्वतंत्रता का प्रस्ताव

इस बीच उन्होने अपने जीवन की—राजनीतिक जीवन की एक 'फिलासफी' विकसित कर ली थी। युवक उनकी ओर सतृष्ण नेत्रो से देख रहे थे। उन्होंने उनकी आशा

पूरी की। सन् १९२७ ई० की कांग्रेस में, लार्ड वर्केनहेड की मूर्खता से क्षुब्ध भारत के सामने, जवाहरलाल ने पूर्ण स्वतन्त्रता की पताका फहरा दी। उस समय मालवीयजी तथा एनी वेसेण्ट तक को उनकी युक्तियों का समर्थन करना पड़ा। इस आन्दोलन की तह में कुछ तो पूर्ण स्वतंत्रता के सच्चे पूजक थे और कुछ ने इसे मनोवैज्ञानिक अस्त्र की भांति अपनाया था। ऐसे भी बहुत थे जिन्होंने इस विचार से इसका समर्थन किया कि ज्यों-ज्यों पूर्ण स्वाधीनतावादी दल शक्तिमान होगा त्यों-त्यों हम लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के अधिक निकट पहुँचेंगे।

पर जवाहरलाल के विचार तो विलकुल वदल चुके थे। यूरोप में उन्हें जो भारतीय देश-भक्त मिले उनसे बात-चीत कर उन्होंने समझा कि 'उत्तरदायी शासन अथवा औपनिवेशिक स्वराज्य' का विदेशों में कोई अर्थ नहीं समझा जाता, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसका कोई स्थान नहीं ऐसी गोलमोल माँगों के कारण यूरोपीय राष्ट्र एवं राजनीतिज्ञ भारत-वासियों को नीची निगाह से देखते और उनकी बुद्धि पर तरस खाते हैं। इन सब अनुभवों ने जवाहरलाल को पक्का स्वतन्त्रवादी बना दिया। वह समझ गये कि जबतक भारतवर्ष एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनकर नहीं खड़ा होता, संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों के समाज में वह अछूत ही समझा जायगा और उसे संसार को जो-कुछ देना है, न दे सकेगा।

अक्तूबर १९२८ ई० में संयुक्तप्रान्तीय कान्फ्रेंस के झाँसी अधिवेशन में अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने साफ-साफ कहा—"भारत तबतक इंग्लैण्ड के साथ शान्ति नहीं कर सकता, जबतक उसे स्वाधीनता न प्राप्त होजाय। यही वह मनो-वैज्ञानिक एवं मौलिक कारण है जिसके लिए हमने पूर्ण स्वतंत्रता का आन्दोलन उठाया है। यह स्वतंत्रता ब्रिटिश साम्राज्य

संयुक्तप्रान्तीय कान्फ्रेंस के अध्यक्ष

में हमारे साझीदार बनने से नही आ सकती। बहुत दिनो तक हमने साम्राज्य और साम्राज्यवाद का अनुभव कर लिया। अब हम समझ गये है कि साम्राज्यवाद और सच्ची स्वतन्त्रता बाँस के दो सिरो के समान परस्पर-विरोधी दिशाओ मे जानेवाले पदार्थ है।''' ' इग्लैण्ड हमारा शत्रु नही है। हमारा शत्रु तो साम्राज्यवाद है और जहाँ साम्राज्यवाद हो वहाँ हम स्वेच्छापूर्वक कभी नही रह सकते।"

युवक-संघ का जन्म

पूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ ही युवक-सघ का जन्म भी भारतीय राजनीति की एक महान् घटना है। यद्यपि ससार मे इसके प्रसार के अन्तर्राष्ट्रीय कारण थे, पर भारत मे उसका जन्म विशेषत दो कारणो से हुआ। जातिगत वैनमस्य के धुएँ से विशुद्ध राष्ट्रीयता का गला घुटा जा रहा था, उसकी रक्षा के लिए आवश्यक था कि जनता, इन झगडो से ऊपर उठे। युवक-सघो का जन्म इसलिए हुआ। हम पहले भारतीय फिर हिन्दू-मुसलमान है, यह भाव इपके मूल मे काम कर रहा था। दूसरा कारण तो वही था जो पूर्ण स्वतन्त्रता-आदोलन के मे मूल था। जवाहरलाल इस दिशा मे भी मार्ग-प्रदर्शक बने।

चुपचाप

पर इन सबके साथ भी जवाहरलाल के भीतर एक भीषण युद्ध बराबर चल रहा था। एक ओर उनपर महात्माजी का प्रभाव था, दूसरी ओर पिता के प्रेम की खीचातानी थी और तीसरी ओर ये नई लहरे थी। इन तीनो बातो को लेकर एक जबर्दस्त मन्थन उनके अन्दर होरहा था। १९२३ से २७ तक हम उन्हे राजनीतिक दगल के अखाडे से हटकर चुपचाप—शातिपूर्वक काग्रेस के प्रधान मन्त्री और इलाहाबाद नगर-बोर्ड के अध्यक्ष का काम करते हुए देखते है। इस बीच बहुतो ने उनपर लाञ्छना की—व्यग किये। लोग

तरह-तरह की बाते करते थे। एक कहता—"उनमे पिता-जैसी तीव्र बुद्धि नही है।" दूसरा कहता—"उनकी सच्चाई एक धर्मान्ध की सच्चाई है।" तीसरा बोल उठता, "नही, वह क्रूस—सूली—का स्वागत करने वाला शहीद है।" पर अपनी ही महत्ता की इन सब प्रतिध्वनियो के बीच वह शातिपूर्वक अपने जीवन की एक 'फिलासफी' का विकास कर रहे थे और वही मद्रास कांग्रेस मे देश के सामने आगई।

× × ×

वह चित्र!

एक वर्ष बाद, फिर हम उन्हे सर्व-दल-सम्मेलन की बैठक मे, अपनी महानता के साथ, खडा होते देखते है। ३१ अगस्त १९२८ ई०, इस सम्मेलन की मृत्यु-तिथि है। उस दिन के विवाद मे, आत्म वञ्चना के धुएँ एव कोहरे के बीच, जवाहरलाल की दिव्य मूर्ति बिजली की भाति चमक रही है। श्री 'अलकाफिर' नामक एक अग्रेजी लेखक ने उसका बडा ही सुन्दर चित्र खीचा है। उसकी भाषा का सौष्ठव अनुवाद मे कहाँ आ सकता है? भावार्थ यह है—"उनकी आँखो मे शोक भरा है; उनमे मौन प्रार्थना आकर बस गई है। दाँत दृढ़ता से जुड गये है मानो भीतर उबलते हुए किसी विद्रोही भाव को दबाने के लिए कठोर होगये हो। भौहे उचित असन्तोष से तनी हुई है। यह मूर्ति बोलती है। उसकी वह आश्चर्यजनक बोली, वे कोमल उच्चार! जो-कुछ सच्चा और उचित है, उन सबकी मानो एक पार्थिव मूर्ति सजीव होकर आगई हो। उसमे देश-प्रेम भी मूर्तिमान था, अथा, गहरा और भयकर देश-प्रेम। स्वतन्त्रता-सघ की ओर से लिखा गया बयान पढने के पहले उन्होने जो बयान दिया, हमारे नव-जीवन के इतिहास मे शायद ही उसका जोड़ निकले। वह दस हज़ार मील दूर जाकर भी सुनने योग्य था। उसने उन दिलो को स्पर्श किया जो अभी तक

अछूते थे। उसने बिना किसी सकोच और दया या करुणा के कलेजे के टुकड़े कर दिये। सब प्रकार की कलापूर्ण प्रभावो से रहित इस छोटे व्याख्यान ने अपनी सहज सरलता से सब-कुछ कर दिखाया। यह सरलता भीतर के ज्वालामुखी की स्पष्ट सूचना दे रही थी।"[१]

यह पुरानी और नई सतति के मार्ग-भेद का शखनाद था। पुरानी से यहाँ मतलब स्वराजियो, नरमदल वालो तथा इसी प्रकार के अन्य राष्ट्रवादियो से है। नई से साम्यवादियो, स्वतन्त्रतावादियो का तात्पर्य है। इसमे बहुतो को कोरी भावुकता दिखाई पड़ी थी, पर वह भावुकता न थी। स्वर्गीय विपिनचन्द पाल ने एक बार व्यग करते हुए कहा था—"असंतुष्ट

१ "Out of the All Parties' Conference that died a glorious death on 31st of August, 1928, the solitary figure of Jawahar Lal Nehru rises with those sorrowful eyes homes of silent prayer and those determined teeth clenched as if to subdue the surging tide of emotion or to avoid, may be, the rising lump in the throat, those eye-brows knit in righteous indignation or that brow raised in agonised questioning, and that wonderful voice and those tender accents, the etherial embodiment of all that is honest and sincere, and of a patriotism blind, intense, ferocious. The speech he delivered before reading out the statement on behalf of the Independence League was worth going ten thousand miles to hear It touched chords as yet untouched, indeed unsuspected. It wrenched the heart, without mercy and without pity Devoid of all artistic effect, it did all this with an unconscious simplicity that spoke volumes of the mountain of volcanic energy within"

—Jawaharlal, the Man and His Message page 98-99

हो जाना युवको का स्वभाव है और व्यावहारिक तथ्यो को न देख सकना उनका दुर्भाग्य है ।"[१] पर जवाहरलाल ने मानो पहले से ही उसका उत्तर दे दिया था । इन व्यवहारवादियो का तथ्य क्या है ? "आप सोचते है इस दुनिया मे सिर्फ दो देश है—भारतवर्ष और इग्लैण्ड ।· · ······· ब्रिटिश कामनवेल्थ क्यो ? विश्व कामनवेल्थ क्यो नही ?" एक ने इसका उत्तर न दिया । एक से इसका उत्तर न दिया गया । प्रश्न की प्रतिध्वनि ही इसका एक क्षीण उत्तर देकर—वातावरण मे कम्पन उत्पन्न करके मिट गई !

कलकत्ता कॉग्रेस मे भी जवाहरलाल की वही वेदना दिखाई पडती है, पर इस वेदना के ऊपर सयम की जबर्दस्त बॉध है । कलकत्ता कॉग्रेस ने जो अल्टिमेटम—अतिम चुनौती—सरकार को दिया, उसका उत्तर लाहौर मे, सरकार-द्वारा नही, युवको-द्वारा दिया गया । १९२९ की लाहौर-कॉग्रेस भारतीय राजनीति के इतिहास के सुनहले पन्नो मे स्थान पायेगी । जवाहरलाल इसके अध्यक्ष चुने गये । कॉंग्रेस के इस उच्चासन पर पहली वार एक समाजवादी बैठता दिखाई पडा । जवाहरलाल ने पुरानी रूढियो को तोड, भावी युद्ध के सेनापति के रूप मे, घोडे पर चढकर लाहौर मे प्रवेश किया । मानो राष्ट्र का यौवन अपने शस्त्रास्त्रो से सजकर, शत्रु को चुनौती देने के लिए आ गया हो !

लाहौर कॉग्रेस

लाहौर कॉंग्रेस ने अपने अध्यक्ष को तथा भारतीय जनता ने अपने 'राष्ट्रपति' को यहॉ, आदर्श के रूप मे, देखा । वह प्रथम साम्यवादी राष्ट्रपति थे और इनके प्रत्येक काम मे जहॉं कडा शासन था, वहॉ अपूर्व

१ "It was the privilege of youth to be irritated and their misfortune to lose sight of realities"

भ्रातृभाव था। अभी यहाँ है तो थोडी देर मे वहाँ है। वह सिंहासन पर मौन बैठे हुए राजा नही थे। दरवाजे पर कोई दरवान न था, न कोई अग-रक्षक था। प्रत्येक व्यक्ति के लिए वह सुलभ एव सुगम थे। यहाँ आफिस के कार्यो की जाँच कर रहे है तो वहाँ 'रूलिंग—किसी चीज़ पर अध्यक्ष का अन्तिम निर्णय—दे रहे है, कही दूर विदेश से आई किसी यूरोपियन महिला को स्थान दिला रहे है तो कही वालटियरो के साथ किलोल कर रहे है। अधिवेशन के समय ज़रा शोर हुआ—झट आसन छोडकर उधर पहुँच गये। ३१ दिसम्बर की रात को १२ वजे के बाद जब पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय का प्रस्ताव पास हुआ तो सब नाच रहे थे। स्वय-सेवक दल ने इन्हे उठा लिया और हा-हा, हू-हू करते सारे नगर में फिरे। जब कार्य की अधिकता के कारण उन्होने सुस्वादु भोजन अस्वीकार कर दिया तब स्वय-सेवको के चने खाने से इन्कार न कर सके। वह स्वय ही अपने अध्यक्ष थे, स्वयं ही अपने सेक्रेटरी—मन्त्री—थे, इस अधिवेशन-जैसा उन्मादकारी कॉंग्रेस का दूसरा अधिवेशन नही हुआ। एक खतरनाक प्रस्ताव पास कर, खतरे के समय राष्ट्र का यौवन, पागल की भाति, अट्ट-हास कर रहा था।

स्वतन्त्रता का शंखनाद

उसके बाद सत्याग्रह की घोषणा हुई। चन्द दिनो बाद ही वह गिरफ्तार हुए। देश में तूफान मच गया। लगभग एक वर्ष के घोर युद्ध के बाद सरकार से सधि की बात चली। उस समय भी नैनी जेल से जवाहरलाल ने महात्माजी को पत्र लिखा था, उसमे कहा था कि जब लोगो की सधि की ही इच्छा है तो वैसा ही सही। उनको स्वयं तो लड़ने में ही मज़ा आता है, पर इस युद्ध मे अहिंसा के अन्दर उनका विश्वास और मजबूत होगया। जयकर और

सत्याग्रह

सप्रू को जो पत्र जेल से लिखा उसमे यह बात बहुत स्पष्ट हो गई है। उसके बाद सरकार से सधि हुई। लोग छूटे, बहुत-से लोग भी छूटे। सरकारी कर्मचारियो का व्यवहार वैसा ही था। जवाहरलाल को यह सधि—यह शान्ति-मृत्यु की शान्ति मालूम पड़ी। उन्होने कहा था, 'जबतक लडाई चलती है, मुझे अपनी रगो मे खून चलता हुआ मालूम पडता है, अनुभव होता है कि मै जी रहा हूँ।' इस सधि-काल मे सरकार का रवैया देखकर बार-बार उन्हे उसका विरोध करना पडा। इस बीच सरकार ने अपनी तैयारी कर ली और युक्तप्रान्त के किसानो के साथ ऐसे अत्याचार शुरू हुए कि वहाँ सत्याग्रह की घोषणा करनी पडी और फल-स्वरूप जवाहरलाल गिरफ्तार होकर जनवरी १९३२ मे जेल मे डाल दिये गए।[१]

यह तेजस्विता

इलाहाबाद मे मजिस्ट्रेट की ओर से उनपर यह प्रतिबन्ध लगाया गया था कि किसी सभा में भाग न ले और इलाहाबाद के बाहर बिना जिला-मजिस्ट्रेट या पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट की आज्ञा लिये, न जायँ। इसका उन्होने जो जवाब दिया था उसमे भारतीय युवक की तेजस्विता बडे दृढ एव स्पष्ट रूप से बोलती है—"सिवाय उस सस्था के, जिसका मै एक तुच्छ सदस्य हूँ, किसी से आज्ञा लेने का मुझे अभ्यास नही है।"

तब से जवाहरलाल प्रत्येक आन्दोलन मे आगे रहे है। १९३६ मे दो बार उन्होने पुन कांग्रेस की अध्यक्षता ग्रहण की है। जवाहरलाल जेल मे रहे हो या आन्दोलन मे बाहर उनका विकास सतत समाजवाद की

१. बाद में, माता स्वरूप रानी की बीमारी के कारण ३० अगस्त को (सजा की अवधि की पूर्ति के केवल १२ दिन पहले!) नैनी जेल से छोड दिये गये।

ओर होता गया है; पर इस समाजवाद पर गाँधीजी के प्रति श्रद्धा की सुनहली छाया है। और पहले देश का प्रश्न हल करके तब समाज निर्माण का प्रश्न उठाने का भाव है।

वस्तुत. हमारे राजनीति-क्षेत्र में, गाँधी से बडा, मनुष्यो का कोई परीक्षक नही है। वह जवाहरलाल को सबमे अधिक पहचानते है। उनके राष्ट्रपति निर्वाचित होने के बाद उन्होने लिखा था—"बहादुरी मे कोई उनसे बढ नही सकता और देश-प्रेम मे उनके आगे कौन जा सकता है ? कुछ लोग कहते है कि वह जल्दबाज़ और अधीर है। यह तो इस समय एक अतिरिक्त गुण है। फिर जहाँ उनमे-एक वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है वहाँ एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। × × × वह स्फटिक मणि की भाति पवित्र है, उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है। वह अहिंसक और अनिंदनीय योद्धा है। राष्ट्र उनके हाथ मे सुरक्षित है।" इससे अच्छा परिचय जवाहरलाल का कौन देगा ?

—छः—

विश्लेषण

जवाहरलाल का सबसे बड़ा गुण यह है कि खतरो के लिए उनके अन्दर बडा गहरा आकर्षण है। यह उनका यौवन-धर्म है। जिधर कठिनाइयाँ ज्यादा होगी, रास्ता कँटीला होगा, बलिदान और उत्सर्ग का तकाज़ा होगा, उधर खिचने के लिए वह अपनी प्रकृति से मजबूर है। उनकी गिनती उन लोगो मे नही की जा सकती जो भूख से व्याकुल जनता को देखकर उनके बीच कूद पडने को केवल इसलिए तैयार नही होते कि परिस्थिति कठिनाइयो से पूर्ण है और 'लाभ' कुछ न होगा। उनका जीवन एक निरन्तर बलिदान है।

किन्तु इस मूल्यवान भावमयता को भी उन्होंने आँच मे तपा-तपाकर बहुत ऊँचा उठा दिया है। यह उनमे ही जलकर समाप्त हो जानेवाली चीज़ नहीं, दूसरो मे भी छूत से ही, आग जला देने वाली चीज़ बन गई है। जो समझते हैं कि जवाहरलाल एक भावुक युवक-मात्र हैं, वे भूलते हैं। यह ठीक है कि वह भावुक भी हैं; पर इसके साथ उनका संयम, उनकी गम्भीरता भी अपूर्व है। उनमे भावना के साथ वास्तविकता का अपूर्व मेल है। जब-जब अवसर आया है इसका परिचय उन्होंने दिया है। अभी काँग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन मे भी उनकी गम्भीरता और नीति-नम्रता का परिचय मिल चुका है। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने ठीक ही लिखा था कि 'जवान कन्धो पर बूढा सिर' वाली कहावत जवाहरलाल के सम्बन्ध मे पूर्णत. चरितार्थ होती है। उनमें ब्राह्मणत्व का त्याग है और यह स्वाभाविक त्याग ही उनका ओज है। पिता, मोतीलालजी, मे त्याग के साथ क्षत्रियत्व का अभिमान और क्रोध भी था। जवाहरलाल के लिए त्याग करना उनके स्वभाव में दाखिल हो गया है। इन विशेषताओ के कारण ही मौलाना मुहम्मदअली बड़े नेहरू को 'बूढ़ा जवान' और छोटे नेहरू को 'जवान बूढ़ा' कहा करते थे।

बूढ़ा जवान

उनका सिद्धान्त है—"खतरनाक बनकर रहो" (Live dangerously)। "सीस उतारे भुइँ धरे तापै राखै पाँव", उनकी आदत है। खतरे के वक्त वह हथेली पर सिर रखकर आगे बढ़ते है। खतरे के प्रति उनमे जो आकर्षण है उसके कई उदाहरण ऊपर दिये जा चुके है। यहाँ इस सम्बन्ध मे एक और घटना का उल्लेख कर देना है। सन् १९२४ का साल था। छ: साल बाद प्रयाग मे कुम्भ-मेला लगा था। लाखो स्त्री-पुरुष संगम-स्नान के लिए आये थे; किन्तु सरकार ने यह कहकर स्नान रुकवा दिया

खतरे के प्रति आकर्षण

कि यहाँ ज्यादा गहराई है और नहाने मे खतरा है। इसकी जगह कि बालू डालकर नहाने का स्थान चौरस बना दिया जाता, सरकार ने यह तरीका इख्तियार किया। रोक के लिए वहाँ तख्ते गाड दिये गए और सशस्त्र एव अश्वारोही पुलिस उसके पास, जनता को रोकने के लिए, खडी कर दी गई। पू० मालवीयजी मेले मे उपस्थित थे। उन्होने अधिकारियो से बातचीत, लिखा-पढी भी की, पर कुछ फल न निकला। अधिकारी प्रमाद में डूबे हुए थे। जवाहरलाल नगर-बोर्ड (म्युनिसिपैलिटी) के सभापति थे। ज्योही उन्हे समाचार मिला, कुछ स्वयसेवको को लेकर दौड पड़े। मालवीयजी ने उन्हे शान्त किया और एक बार फिर समझौते की चेष्टा की, पर इन प्रयत्नो का फल कुछ न होता था। साधु लोग धर्म पर सरकारी आक्रमण देखकर भी चुप थे। कांग्रेसवाले उस रोक के पास ही सत्याग्रह के लिए डटे थे और अपने सेनापति के इशारे की प्रतीक्षा मे थे। मालवीयजी के अनुरोध से जवाहरलाल चुप थे। बैठे-बैठे चार घण्टे हो गये। उनका खून खौल रहा था। अब ज्यादा देर बैठना उनके लिए कठिन होगया। तेजी से उछलकर, एक क्षण मे, वह स्लीपर की दीवार पर, तिरगा-झण्डा लिये, पहुँच गये। घुडसवारो ने लाख चेष्टा की पर उन्हे न पा सके; स्वयसेवको ने उनका अनुसरण किया और जरा देर में बहुत से लोग त्रिवेणी मे जा पहुँचे। जवाहरलाल ने त्रिवेणी मे कूदकर तख्ते को उखाड दिया नहाने के लिए रास्ता कर दिया। सरकारी अधिकारी और पुलीस भौचक-सी देखती रह गई। अधिकारी घबड़ा गये और उसी दिन वहाँ बालू पडने लगी तथा यात्रियो को सगम मे नहाने की सुविधा होगई।

जवाहरलाल की दूसरी विशेषता उनकी निर्भीक सिद्धान्त-प्रियता है। १९२० ई० से आजतक उन्होंने जो समझा उसीपर चलते रहे। कभी

उन्हे कौसिलो मे जाने का मोह नही उत्पन्न हुआ, कभी विधायक कार्य-क्रम के महत्त्व को कम नही होने दिया। जब बडे-बडे नेता प्रवाह मे बह गये, वह अपने सिद्धान्त पर अटल रहे। उनके इस सिद्धान्त-सम्बन्धी न झुकने वाले स्वभाव ने, साधारण प्रेक्षको मे, गलतफहमी भी पैदा की है। एक बार मेरे एक आदरणीय मित्र ने बातचीत के सिलसिले मे मुझसे कहा कि जवाहरलाल का कोई खास सिद्धान्त नही मालूम पडता। मुझे हँसी आ गई। यही मित्र जब लाहौर काँग्रेस से लौटे तो उनके मुँह से प्रशसा के फूल झड़ते थे। कलकत्ता काग्रेस मे महात्माजी के दबाने पर भी वह समझौते के लिए राजी न हो सके। हाँ, उन्होने उसमे विघ्न नही डाला, पर दिल के दु ख के कारण पण्डाल तक मे न गये। महात्माजी ने उस समय इनके दर्द और सयम का बडा मार्मिक विवेचन किया था। ये बाते उनकी सिद्धान्त-प्रियता की द्योतक है।

सिद्धान्त-प्रियता

जवाहरलाल का अनुशासन (Discipline) बडा जबर्दस्त है। इस मामले मे वह बडा-छोटा, अपना-पराया किसी का विचार नही करते और उसे बड़े बेरहमी से इस्तैमाल करते है। इस विषय में उनके सामने और कोई नेता नही खडा किया जा सकता। नियम-पालन करने और कराने मे कभी मैंने उन्हे झुकते नही देखा। जेल मे और बाहर दोनो जगह जिन्होने उन्हे देखा है वही उनके नियम-पालन की कठोरता का ठीक-ठीक अन्दाज लगा सकते है। स्नान-भोजन, चर्खा कातना, खेलना, पढना सब नियमित। जेल मे वह अपने हाथ से स्थान की सफाई करते, साबुन से कपडे साफ करते, पुस्तके सँभालकर रखते, बर्तन मलते तथा बिस्तर धूप मे डालते थे। और इन कामो मे अपने प्रिय-से-प्रिय साथी की सहायता अस्वीकार कर देते थे।

अनुशासन

बाहर रहते है तो बडे सवेरे उठकर पहले अपना कार्यक्रम बनाते है और फिर साधारण दैनिक आवश्यकताओ से निबटकर काम मे लग जाते है। आज का काम कल पर नही छोडते और इसलिए अखिल भारतीय कॉग्रेस-कमिटी के कार्यालय मे या अन्यत्र उनके साथ या उनके नीचे काम करने वाले कार्यकर्ता या कर्मचारी उनसे परेशान रहते है। वह एक कठोर काम करनेवाले साथी (Hard Task-Master) है। वह स्वय परिश्रम करते है और अपने सहायको से भी कडा काम लेना जानते है। उनके मारे आलसी और कामचोर क्लर्को की जान आफत मे रहती है। भारतीय कॉग्रेस-कमिटी के कर्यालय को अपनी सुव्यवस्था से उन्होंने सरकारी शासन-विभाग के दफ्तर से भी अधिक सुव्यवस्थित कर दिया। असहयोग के जमाने मे जब गिरफ्तारी का वारण्ट लेकर पुलिस-अफसर उनके पास पहुँचा और उसने १०-१५ मिनट का समय घरवालो से मिलने और तैयार होने के लिए दिया तो जवाहरलाल ने तुरन्त सहायक से कहा—"लाओ, ज़रूरी पत्रो के उत्तर लिखा दूं।" जव लोग ऐसे समय स्नेह-विभोर होकर स्वभावत घर वालो से मिलना चाहेगे, जवाहरलाल ने वह थोडा समय कार्यालय की व्यवस्था करने और पत्रो का उत्तर लिखने मे व्यय किया। यह उनकी कडाई है, यह उनकी लगन है।

निर्दय नियम-पालन, तपस्या और गभीर मुद्रा के कारण इन वर्षो के अन्दर जवाहरलाल शरीर की दृष्टि से दुर्वल हो गये है। उन्होने अपनी देह की कभी परवा न की और इसीलिए उनका सौन्दर्य एक सुन्दर विधवा के करुण एव गभीर मुख की याद दिलाता है। उन्होने अपनी सारी कामनाओं को परिस्थिति की कठोरता और त्याग की आग में एक सच्चे साधक की भाति तिल-तिल करके जलाया है। यद्यपि वह

ऊँचे नैतिक उपदेश नही देते, और दूसरो को इस सम्बन्ध मे छूट भी बहुत देते है, अपने लिए उनकी कसौटी बडी कठोर रही है। विगत अनेक वर्षों से वह नियम-पूर्वक इन्द्रिय-सयम कर रहे है; यद्यपि उनके इस मूक व्रत का विज्ञापन नही हुआ और न होना ही चाहिए था।

अमीरी-ग़रीबी

यद्यपि उनका दिल अमीर है, गरीबी को उन्होने फकीर की भाति अपना लिया है। मैने उन्हे बिना बिस्तर योही सबके साथ सोते देखा है, मैने उनके शरीर पर फटे (पर साफ) कपडे देखे है, मैने उन्हे सबके साथ प्रेमपूर्वक चने चबाते देखा है; मैने उन्हे धोती उठाये पानी से भरे खेतो मे मीलो पैदल चलते देखा है। उनकी तपस्या और उनका त्याग विज्ञापन का भूखा नही। गाँवो मे पैदल २०-२० मील उन्हे चलना पडा है। इसी निर्भीक और बेलौस त्याग के कारण वह डडो की मार मे भी शान्ति के साथ मुस्कराते हुए देखे गये है, मानो अहिसा, हिसा को चैलेज करके हँस रही हो। कष्ट, दुख और खतरे के प्रति उनमे बडा झुकाव है। अपने मुकदमे के समय उन्होने कहा था—**"यहाँ बाहर! यहाँ तो अजीब सुनसान है। सब साथी जेल में है, मै भी वही जाना चाहता हूँ!"**

× × ×

वैसे तो मैने कई बार देखा था पर, बहुत निकट से पहली बार उन्हे बहन स्वरूप कुमारी (आज की श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित) के विवाह के समय देखा। मै भी कई कार्यकर्ताओ के साथ निमन्त्रित होकर आनन्द-भवन मे टिका था। उस समय इलाहाबाद की जिला कान्फ्रेस भी होने वाली थी। महात्माजी, सरोजनी नायडू, लाला लाजपतराय, मोहम्मदअली, श्री एण्डरूज़ इत्यादि कितने ही नेता जमा थे। उस समय भी जवाहरलाल की सादगी देखी थी। कान्फ्रेस से लौटकर कई बार बातचीत करते-करते

वह हम लोगो के साथ तख्त पर ही सो जाते। उन्होंने उस समय भी अपना वैभव छोड दिया था, यद्यपि उनका हृदय दिन-दिन अधिकाधिक वैभवशाली होता जा रहा था।

शीघ्र-निर्णय की शक्ति जवाहरलाल मे अद्भुत है। वह दीर्घ-सूत्री नही, बहुत जल्द निर्णय करते और तदनुकूल काम मे लग जाते है। ज्यादा तर्क-वितर्क और विवाद करना उन्हे अच्छा नही लगता। लम्बी-चौडी बहसे उनके नजदीक हेय है।

शीघ्र-निर्णय

नेताओ मे उनके इस गुण को महात्मा गांधी से अधिक किसीने न समझा गोलमेज कान्फ्रेस के लिए जब महात्माजी कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से लन्दन जानेवाले थे तब कई मित्रो एव नेताओ ने उनसे कहा था कि कुछ और नेताओ को भी लेकर काग्रेस का एक अच्छा प्रतिनिधि-मण्डल वहाँ जाना चाहिए। और लोग न सही पर जवाहरलाल को तो अवश्य जाना चाहिए। इसपर महात्माजी ने लन्दन के लिए रवाना होने के पहले 'यग इण्डिया' मे लिखा था—"मि० रेनाल्ड तथा अन्य मित्रो ने मुझसे कम-से-कम जवाहरलाल को तो लन्दन साथ ले जाने के लिए कहा है। वह निर्भय है फिर भी नम्र है। कमजोरी और कमजोर करनेवाली कायरता से अपरिचित है और इसी कारण वह कमजोरी को एक क्षण मे पकड लेते है। कूटनितिज्ञता से रहित रहने के कारण वह गोलमोल भाषा से घृणा करते है और वास्तविकता तक सीधे पहुँचने पर ज़ोर देते है। मै अपने को आदर्शवादिता मे उनसे आगे समझता हूँ तो वह मुझसे आगे होने का दावा करते है। मै उनका समर्थन करता हूँ और इसीलिए अपने बहुत से मित्रो की इस भावना के साथ सहयोग करता हूँ कि मुझे ठीक मार्ग पर बनाये रखने के लिए और सन्देह के समय 'डिक्शनरी' (शब्द कोष) का काम देने के लिए जवाहरलालजी को साथ रखना

चाहिए।" किंतु इतनी महानता देखकर ही उन्होने यह भी कहा कि यदि मै उन्हे साथ ले जाऊँ तो भारत को कौन सम्भालेगा ? उनके हाथ मे कही अधिक जिम्मेदारी का काम है।

स्वराज-दल के निर्माण के समय एक बार बूढे नेताओ के सैद्धान्तिक विवादो से ऊबकर वह दूर बैठ गये और उनकी आँखे भर-सी आई, मानो वे कह रही थी कि "जब माँ गुलामी की पीडा से चीख रही है, तुम लोग व्यक्तिगत महत्ता एव सिद्धान्तो के विवाद मे पड़े हो।"

अधिक विवाद से उन्हे चिढ़ है। वह शीघ्र-निर्णय को पसन्द करते है। ग्यारह साल पहले जब दिल्ली मे सर्व-दल सम्मेलन की बैठक हो रही थी तब मै भी वहाँ उपस्थित था। भारतीय युवक-सघ का भी अधिवेशन था। अनेक नेता आये हुए थे। धवलकेशी माता बेसेण्ट भी आई हुई थी और यदि मै भूलता नही तो विधान के अपूर्व पण्डित विद्यावयोवृद्ध विजयराघवाचार्य भी आये थे। दरियागज मे डा० अन्सारी के बगले पर बैठक होरही थी। बन्द कमरे मे। कुछ तै न हो पाता था। इधर भोजन तैयार होरहा था। अन्त में जवाहरलाल ने अपना जरा-सा बिस्तर बाँधकर डा० अन्सारी के प्राईवेट सेक्रेटरी से कहा—"मै जाता हूँ, मुझे कई जरूरी काम है।" उन्होने कहा—"क्या भोजन न करेगे ?" बोले—"इन बुड्ढो की बहस तो खतम होती नही। और ऐसा तराना छिडा है कि भोजन मिलता भी नही दीखता··· ·····मुझे खिलाना हो तो जो-कुछ बना हो, खिला दो।" इस प्रकार मैने कई बार देखा है कि जहाँ सैद्धान्तिक बहस ज्यादा होने लगती है वहाँ उनका दिल उचट जाता है।

× × ×

विद्रोह, युद्ध-प्रियता और उग्रता तो उनकी प्रकृति मे पैतृक देन हैं। अपरिमिति कार्य-शक्ति भी उन्हे पिता से मिली है; पर इसके साथ ही

उनका हृदय कोमल है—उसमे दया, प्रेम और इसानियत है। सादगी वहुत है और त्याग तथा कष्ट-सहिष्णुता उससे भी अधिक।

स्पष्टवादिता उनका एक विषेष गुण है। इसीलिए यह भी सत्य है कि सदा उनके कट्टर अनुयायी और कट्टर विरोधी रहेगे। ज्यो-ज्यो उनके अनुयायियो की सख्या बढेगी त्यो-त्यो उनके विरोधियो का विरोध भी प्रवल होगा।

जवाहरलाल के वारे मे लोगो में मत-भेद भी वहुत है। कुछ लोगो की दृष्टि मे "वह राजद्रोहपूर्ण साम्यवाद की मूर्ति तथा धन-सत्ता एव सुविधा के प्रति घृणा रखने वाला—एक ऐसा आदमी है जो स्वय अपनी ही श्रेणी को नष्ट कर देगा और जन-साधारण का नेता वनकर शक्ति पर विजय प्राप्त करेगा।" कुछ उनकी नीति को अनिश्चत बताते है, पर चाहे जो हो 'पायोनियर' के भूतपूर्व सम्पादक श्री एफ० डवल्यू० विलसन के शब्दो मे "वह सच्चे है, वह तर्कपूर्ण है और अपने जीवन का एक परिपूर्ण सिद्धान्त उनके पास है। ‥ जवाहरलाल समाज-सुधारक पहले है, राजनीतिज्ञ वाद मे है। उनके अन्दर जो समाज सुधारक है वह राजनीतिज्ञ को दवाये हुए है। × × × उनके मनुष्यो का नेता होने मे कोई सन्देह नही कर सकता। वह एक ऐसे नेता है जिनका जनता अवश्य अनुसरण करेगी,—उनकी वौद्धिक शक्तियो के कारण उतना नही जितना इस कारण कि उनके अन्त करण मे मानवीय दुर्वलताओ और कठिनाइयो के प्रति असीम सहानुभूति है।"[१]

१. "× × × To some people he is the embodiment of the worst kind of seditious communism, a bitter hater of wealth and privilege, who would destroy his own class and ride triumphantly to power as the leader of understanding masses. . . Jawaharlal is sincere He is logical, and

जवाहरलाल की महानता के सम्बन्ध मे स्वतंत्र मजूर दल के प्रसिद्ध नेता श्री फेनर ब्राकवे ने ठीक ही लिखा है—"मेरी धारणा है कि प० जवाहरलाल नेहरू आधुनिक समय मे संसार के महान् शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तियो मे से एक है। भारत के नवयुवक-समाज मे जिन नवीन विचारो की धारा प्रवाहित हो रही है, वह उनकी प्रतिमूर्ति है। आज से बीस साल पहले भारत के नेतागण शासन-सत्ता मे भारत की उन्नत जातियो के लिए कुछ भाग की याचना करके सतुष्ट हो जाते थे। दस साल पहले प्रधानतया महात्मा गाँधी के प्रभाव के फलस्वरूप वे राजनीतिक स्वतत्रता माँगने लगे। जवाहरलालजी की विशेषता यह है कि वह केवल राजनीतिक और सामाजिक स्वतत्रता ही नही माँगते, किन्तु साथ ही आर्थिक स्वतत्रता भी माँगते है। वे नवभारत को आत्म-निर्भर बनाने का प्रयत्न कर रहे है और विदेशी सरकार का साहस के साथ सामना कर रहे है, किन्तु उनके कार्य इससे भी बडे है। भारत की ही उन बातो के विरुद्ध जो कि भारत मे फूट फैला रही है और प्राचीन अन्ध-विश्वासो एव रीति-रिवाजो का दास बनाती है बगावत करने के लिए वह युवक भारत को आदेश दे रहे है। वह एक ऐसा सामूहिक सगठन खड़ा करने की

---

he has what appeals to himself, at least a perfectly adequate theory of life . Jawaharlal, I am convinced, is a social reformer first and a politician afterwards .. . It is the social reformer in Jawaharlal that dominates the politician. ....There is no doubt about his being a leader whom men will follow, not so much because of an intellectual predominance, but because there glows in his mind and soul a sympathetic understanding for human frailties and difficulties."

--W. F. Wilson in preface of J. L Nehru, the Man.

कोशिश मे है जो सामाजिक और आर्थिक क्रांति कर सके और भारत के मजदूर और किसानो को उनकी बेकली और गरीबी से छुटकारा दिला सके। पश्चिम मे कुछ ऐसे 'दर्शनीय' महानुभाव भी है जो भारत को पतित मान बैठे है, वे इस वास्तविकता के प्रति अन्धे है कि भारत मे महान् परिवर्तन होरहा है। मै ससार मे ऐसा कोई भी देश नही जानता जहां इतनी सारी शक्तियां राजनीतिक, सामाजिक और स्त्री-पुरुष की समानता के लिए काम कर रही हो। प० जवाहरलाल नेहरू उन शक्तियो की प्रतिमूर्ति है और इसीलिए मै उन्हे नवीन भारत का अवतार मानता हूँ। उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानने का सम्मान मुझे प्राप्त है और उनकी लगन और त्याग उस भावना का आदर्श है जो भारत मे स्वाधीनता की स्थापना कर सकेगी।"[1]

निस्सन्देह व्यक्तित्व के लिहाज से भी तथा कार्य-पद्धति के लिहाज से भी भारत के नेताओ मे शायद ही कोई उनसे ऊंचा हो। महात्मा गांधी मे उनसे अधिक विशेषताये है, पर भारतीय राष्ट्रवाद के नेता की जगह उन्हे मानवता का एक पथ-प्रदर्शक कहने और समझने मे हमारा विशेष गौरव है। "श्री नेहरू भारतीय राजनीतिज्ञ के सबसे ताजा सस्करण है। पुराने ढग के राजनीतिज्ञो की कोई बात उनमे नही है जो पनचक्की की तरह हाथ हिलाते है और विरोधियो के तर्कों को सुनकर जगली ढग से कभी दाये कभी बांये झाकते है। उनकी बुद्धि तीव्र है, वह बहस—'डिबेट'—मे कुशल है और सीधे एव सफाई से वार करते है।"[2]

१. 'जवाहरलाल नेहरू की जीवनी और व्याख्यान' (श्री गोपीनाथ दीक्षित बी० ए०) के आरम्भ में।

२ "Mr Nehru is the latest model de luxe of the Indian politician with veritable eight-cylinder ideas He is none of

मैंने जिन भारतीय राजनीतिज्ञो के व्याख्यान सुने है, उनमे से अधिकाश आपके प्रति सार्वजनिक सभा की भांति व्यवहार करते है—जैसा ग्लैडस्टन का रानी विक्टोरिया के प्रति था। जवाहरलाल सार्वजनिक सभा को एक व्यक्ति की तरह समझते—'ट्रीट' करते है। वह आपको अपने समकक्ष मानकर, आपको वेतकल्लुफ कर देते है। वह जोरदार वक्ता है, पर उनमे वाग्शास्त्री के चमत्कार नही है। समझदारी के साथ व्यक्त ठोस विवेक—यह उनका जादू-भरा तरीका है। वह इतने सच्चे ('सिंसियर') है कि उनके साथ मत-भेद रखने और प्रकट करने को आप एक अपराध समझते है।[१]

इस सम्वन्ध मे श्री धनपाल ने एक घटना का जिक्र किया है जिससे जवाहरलाल के सोचने और वोलने के ढग पर वडा प्रकाश पडता है—

एक वार एक व्याख्यान मे जवाहरलाल अध्यक्ष थे। एक शुष्क

---

your old-model politicians, waving their arms in wind-mill fashion, hacking savagely left and right the opponents arguments Gifted with a keen intellect, he is skilful in debate, cutting clean and straight,—B D Dhanpal in The New Thought.

Vol I, No I.

१. "Most Indian politicins, I have heard, treat you as Gladstone treated Queen Victoria—like a public meeting Mr Nehru treats a public-meeting like private individual He takes you as his equal, puts you at your ease. Cogent and forcible, he has no frills and oratorial flashes of purple patches Solid common sense, expressed in a common sense way—that is his magical method. Yet he is so sincere, you feel it a crime to disagree with him"

—B. D Dhanpal.

बुद्धि के तार्किक प्रोफेसर भारतीय महासभा के कार्यक्रम को अव्याव-हारिक और स्वप्निल बताकर हँसी उडा रहे थे। काग्रेस के बाद अपने व्याख्यान मे उन्होने लिबरलो की औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की भी आलोचना की। इसके बाद—सबकी आलोचना के बाद, उन्होने स्वीकार किया कि मैं समस्या का कोई हल नही बता सकता, क्योकि मै यह निर्णय नही कर सकता कि लोगो को क्या करना चाहिए। अन्त मे उन्होने अपना व्याख्यान इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया कि राज-नीतिज्ञो को कल्पना-जगत् मे विहार न करके असलियत का सामना करना चाहिए।

जवाहरलाल उठे। वातावरण मे बिजली का अनुभव हुआ। बडी शान्ति थी। जरा-सा शब्द भी जोर से सुनाई पड़ता था।

जवाहरलाल के मुख के कोनो पर हँसी फूट रही थी। उन्होने आरभ किया—"अपने मित्र प्रोफेसर का व्याख्यान सुनते समय मुझे एक शुभा-काक्षी ग्रीक प्रोफेसर की बात याद आ गई जिसका सिद्धान्त था कि किसीको क्या काम करना, इसका एक निर्णय न कर लेना चाहिए। उसके कितने ही सच्चे—ईमानदार शिष्य थे। एक दिन की बात है कि सयोग-वश प्रोफेसर किसी दलदल पड मे गये। वह कीचड़ में चिपट गये थे और धीरे-धीरे उसके अन्दर घुसते जा रहे थे। इसी समय उनका सबसे योग्य शिष्य उधर से निकला। शिष्य ने गुरु को इस हालत मे देखकर मन मे तर्क करना शुरू किया—'निकालने से क्या लाभ होगा? न निकालने से क्या होगा?'—इन सब बातो पर वह विविध दृष्टियो से विचार करने लगा। अन्त मे बड़ी देर के बाद इस निर्णय पर पहुँचा कि वह कोई निश्चय नही कर सकता!"

सभा अट्टहास से प्रतिध्वनित हो उठी। वह सूखी हँसी, शिशिर के

सूर्यास्त की तरह जवाहरलाल के मुख से दूर हो गई। बोले—"हम राजनीतिज्ञ, जिनके पास रात-दिन शुष्क, ठोस और कठोर तथ्यो का सामना करने के सिवा और कोई काम नही है, प्रोफेसरो एव कुर्सी-सेवी दार्शनिको के सामने अव्यावहारिक होने के वैभव का खर्च कहाँ से उठा सकते है ?"

मैने प्रोफेसर की ओर देखा। उनका मुँह उस आदमी-सा होगया था जो अपनी इच्छा के विरुद्ध आत्म-हत्या करने पर उतारू हो।

इसी प्रकार एक बार की बात है कि एक सज्जन किसी विपय पर उनसे बहस कर रहे थे। मत-भेद प्रकट करते-करते उसे न्याय्य सिद्ध करने के उद्देश्य से उन्होने कहा—"प्रत्येक प्रश्न के दो पक्ष होते है।" जवाहरलाल बोल उठे—"अवश्य, किन्तु इसका यह मतलब तो नही है कि आप सदा गलत पक्ष की ओर रहे ?"

उनके अन्दर अगाध आत्म-विश्वास है। इसीलिए वह समझते है कि यदि किसी देश को कुछ प्राप्त करना है तो उसके लिए असभव को सभव कर दिखाने की चेष्टा करने से बढकर दूसरा कल्याणकर मार्ग नही है। सच पूछो तो वह किसी बात के असभव होने मे अधिक विश्वास करते ही नही। वह आश्चर्यजनक घटनाओ मे विश्वास करने को पसन्द करते है। समझौते और राजनीतिक चालबाजियो के लिए उनके हृदय मे सख्त घृणा है। इधर या उधर—आधे या बीच मे उन्हे सन्तोष नही। १९२९ मे उन्होने 'समझौता' नामक एक लेख लिखा था। इस लेख मे उन्होने बड़े ही व्यगपूर्ण पर जोशीले ढग से उन लोगो की खबर ली थी जो प्राय: हमे उपदेश किया करते है कि ऐसी बातो से हमारे शासको का मन हमारी तरफ से और कडा हो जायगा और वे बुरा मान जायँगे। वह लिखते है—

"विलासी और चकाचौंध उत्पन्न करनेवाले पश्चिम की ओर ग्रीष्म ऋतु व्यतीत करने के लिए की जानेवाली यात्राये समाप्त हो चुकी है और अब प्रत्येक जहाज मे—जो भारत को आता है—हमारे दो-एक देश वासी अवश्य रहते है। प्रत्येक नवागन्तुक, जो जेनेवा या 'ह्वाइटहाल' अथवा डाउनिग स्ट्रीट[१] से परिचय एव घनिष्ठता प्राप्त करके आता है, अपने उत्कण्ठित देशवासियो को व्यक्तियो, वस्तुओ, राजनीति तथा और बहुत सी समस्याओ पर, जिनसे हमारा देश दुखी और विकल है, अपनी अमूल्य सम्मति बडी उदारता से प्रदान करता है। निस्सन्देह ये सम्मतियाँ रहस्यपूर्ण और गूढ है, क्योकि उदार दाता 'ह्वाइट हाल' के 'मुगल महान' की सेवा मे उपस्थित होकर भविष्य के विषय मे सारी बाते जानकर ही तो आते है × × ×"

"× × × सत्य ही ये लोग अपने कोकिल-कण्ठो से मधुर राग मे डाउनिग स्ट्रीट और ह्वाइट हाल के प्रभुओ के सौजन्य और सहानुभूति की प्रशसा करते है और कहते है कि भारत के लिए उन लोगो का प्रेम अवर्णनीय है और यहाँकी उन्नति के लिए उनके हृदय व्याकुल है। यह भी कहा जाता है कि हमे अपने मुख से एक भी शब्द या वाक्य ऐसा न निकालना चाहिए जिससे वे चिढ जायँ या उनकी स्थिति कठिन हो जाय। उन लोगो का हृदय कितना उत्तेजनशील और दुर्बल होगा जिन्हे हमारे चन्द शब्द इतना उत्तेजित कर सकते है कि उनका चिर-पोषित भार-प्रेम भूल जाय! इसलिए हमे रोज-रोज चेतावनी दी जाती है कि कही मूर्खता-वश हम कोई कटु या अनिष्टकर शब्द मुंह से न निकाल बैठे और ऐसा-ऐसा करके व्यर्थ ही विपत्ति न बुला ले।

"इस सम्बन्ध में यह जान लेना अच्छा है कि दूसरी दुनिया—

१. यहाँ पार्लमेण्ट के भवन तथा मन्त्रियो के कार्यालय है।

पश्चिम—के ये शक्तिमान पुरुष भी, हमारी ही तरह मनुष्य है और मनुष्यजाति की साधारण दुर्बलताओ के शिकार है, परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि जो लोग हमे उपदेश देते है, वे यह भूल जाते है कि हम भारत के स्त्री-पुरुषो मे भी मानवी दुर्बलताये हो सकती है। वे यह भूल जाते है कि यदि शब्द चोट पहुंचाते है तो कोड़ो से अधिक पीडा होती है, और जव पुलिस के सिपाही का डण्डा मुलायम चमडे पर पडता है तो किसी विशेष सुख का अनुभव नही होता। × × ×।"

"हमसे कहा जाता है कि 'समझौता ही राजनीति का निचोड़ है।' राजनीतिक प्रतिभा 'सबका-सब या कुछ भी नही' का अर्थ अपने सामने नही रखती वरन् स्थिति के अनुकूल समझौते से जितना भी लाभ उठाया जा सकता है, उठाती है और आधे के लिए सारा नही गँवा देती।' नरमी और समझौता राजनीति के खेल मे अच्छे हो सकते है; परन्तु जीवन राजनीति से अधिक महान् वस्तु है और जब जीवन का तकाज़ा दूसरे प्रकार का हो, नरमी या समझौता की नीति नही इख्तियार की जा सकती। × × × हमसे कहा जाता है कि हम बुद्धि-सगत बने, नरमी से काम ले और ऐसे शब्दो का उच्चारण न करे जिनसे हमारे शासक चिढ़जायँ, किन्तु अच्छा हो यदि हमारे ये उदार सलाहकार यह समझ सके कि जीवन मे ऐसे अवसर भी आते है और ऐसे विषय भी होते है जिनपर समझौता नही किया जा सकता। × × × उन्हे आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व कहे हुए वीरात्मा—विलियम लायड गेरीज़न—के इन शब्दो का स्मरण करना चाहिए—"मै सत्य के समान कठोर और न्याय के समान दृढ रहूँगा। इस विषय पर मै नरमी से विचार करना, बोलना और लिखना नही चाहता। नही ! नही ! उस आदमी से कहो, जिसका घर आग मे जल रहा है कि धीरे-धीरे चिल्लाये। उसे अत्याचारी

के हाथ पडी अपनी पत्नी को धीरतापूर्वक छुडाने के लिए कहो ! उस माता से, जिसका बच्चा आग मे पडा हुआ तडप रहा है, कहो कि वह उसे धीरे-धीरे आग से निकाले, किन्तु वर्तमान विषय के सम्बन्ध मे हमसे नरमी दिखाने को मत कहो ! मै अपने लक्ष्य के लिए विकल हूँ, मै झुककर बाते नही करूँगा; मै क्षमा नही करूँगा; मै एक इंच पीछे नही हटूँगा; मेरी बात सुननी पड़ेगी। × × ।"[१]

इस लेख से न केवल उनके किसी बात पर विचार करने के ढग का पता चलता है वरन् उनकी लेखनशैली पर भी प्रकाश पड़ता है। उनके लेख एव भाषण प्राय चुभने वाले व्यगो और ज़ोरदार अपील से भरे होते है। उसमे भावना और बुद्धि का अपूर्व सयोग होता है।

इतने पर भी देश-हित के लिए कई बार वह अत्यधिक सयम से काम लेते हैं। गाधी-इर्विन समझौते के समय भी वह उसके विरुद्ध थे, पर जब देखा कि इस पर ज़ोर देने से फूट फैलेगी एव विरोधी शक्तियाँ उसका दुरुपयोग करेगी तो चुप रह गये। यद्यपि इसपर वह दु खी-से थे। महात्मा जी से कई बार उन्होने मतभेद प्रकट किया है। उनकी 'मेरी कहानी' मे यह सघर्ष जगह-जगह प्रकट है, पर देश-हित के लिए उन्होने कभी इस वास्तविक स्थिति से इन्कार नही किया कि गाँधीजी ही भारत के सर्व-श्रेष्ठ प्रतिनिधि और नेता है।

× × ×

महात्मा गाँधी के बाद दूसरे किसी आधुनिक नेता ने भारतीय कल्पना पर इतना प्रभाव नही डाला है जितना जवाहरलाल ने। वह केवल एक राजनीतिज्ञ नही है वरन् विचारक भी है। यह ज़रूर है कि महात्माजी मे इसकी मात्रा अधिक है, पर जवाहरलाल मे भी अपना एक तत्त्वज्ञान है।

१. 'त्यागभूमि' वर्ष ३, अंक २।

भारतीय कल्पना पर प्रभाव

वस्तुत. "जवाहरलाल एक व्यक्ति नहीं है। वह एक धारणा (idea) है—एक आदर्श है। यह धारणा है, भारतीय राष्ट्र का दृढ़ निश्चय। उनमे यह धारणा मूर्तिमान हुई है। यह आदर्श शरीर बन गया है।"[१]

सच पूछे तो जवाहरलाल मे श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ का तो एक भी गुण नही है। इस विषय मे वह अपने स्वर्गीय पिता से कही पीछे है। वह अधीर है, वह समझौते से घृणा करते है; वह निष्ठुर स्पष्टवादी है। वह एक चीज पर अड जानेवाले है। उनमें 'टैक्ट' की अपेक्षा वफादारी अधिक है, कूटनीतिज्ञता की अपेक्षा सच्चाई ज्यादा है। और निश्चय ही राजनीति-विज्ञान मे ये सफल राजनीतिज्ञ के लक्षण नही माने जाते।

"उनकी धारणा रेडियम के बम की भान्ति है, जो मनुष्य के मन मे कुछ समय तक चुपचाप पडा रहता है और फिर उसका विस्फोट होता है।"[२]

× × ×

शैली, कीट्स और बायरन के वह बड़े प्रेमी है। इन कवियो के चुनाव मे भी उनकी प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। कोमलता, कल्पना,

साहित्य-रसिक

उत्साह और विद्रोह की वह मूर्ति इस निर्वाचन मे भी स्पष्ट है। फारसी कवि उमर खैयाम की रुबाइयो के अग्रेजी अनुवाद उनको कण्ठस्थ है। गेटे के 'फाउस्ट' के बडे प्रशसक है। टाल्सटाय की अपेक्षा तुर्गनेव की वह अधिक प्रशसा करते है। वह एक अच्छे पाठक है और उनका अध्ययन कठिन परिस्थितियो मे भी जारी रहता है। हिन्दी-साहित्य का अध्ययन चलता रहता है। उसकी गति-विधि से

१. श्री बी० डी० धनपाल।

२. "In addition to his being a politician he is a prophet. His ideas have the quality of radium-bombs—of lying about for some time in man's mind and then bursting" —B.D. Dhanpal.

वह परिचित है । समाज-शास्त्र की गम्भीर समस्यायो पर एक दार्शनिक की भाँति विचार करते रहते है और वर्तमान युग के विचारको मे वर्ट्रेण्ड रसेल का अध्ययन करने के लिए लोगो को आमतौर पर कहा करते है । एक बार उन्होंने बर्ट्रेण्ड रसेल का साहित्य हिन्दी मे निकलवाने के लिए कहा था, पर हिन्दी-प्रकाशको की वर्तमान मनोवृत्ति मे अभी तक वह सम्भव न होसका ।

वह स्वय भी एक अच्छे लेखक और विचारक है । 'सोवियट रशा,' 'ए फादर्स लेटर टु हिज डाटर' (पिता के पत्र पुत्री के नाम) 'ग्लिम्पसेस ऑव वर्ल्ड हिस्ट्री' (विश्व-इतिहास की झलक), 'एन आटोबाइग्राफी', (मेरी कहानी)[1] इत्यादि पुस्तके लिखकर साहित्य मे अपना स्थान बना चुके है । वह एक अच्छे शैलीकार है । घटनाओ, परिस्थितियो और मानसिक सघर्षो का चित्र उपस्थिति करने मे वह कमाल करते है । इस विषय मे उनकी अन्तिम पुस्तक ने दुनिया मे बडा नाम पाया है ।

यदि 'प्रताप' के लेखक के शब्दो मे कहना चाहे तो "उसका व्यक्तित्व उत्साह, कर्मण्यता और अनुशासन का प्रतिरूप है । × × × उसकी दृष्टि मे निर्मल आदर्श की ज्योति है, उसके चरण-निक्षेप मे सुसस्कृति और आत्म-गौरव की लोच है । उसके हृदय मे घोर असन्तोष है हमारी वर्तमान सामाजिक विशृखलता के प्रति, उसके दिल मे दर्द है नंगो और भूखो के लिए; उसके मन-मन्दिर मे एक देवता आसीन है, समानता और लोक–कल्याण का । सात्विक क्रोध, निष्ठुर कार्य-शीलता, शुद्ध आदर्श-वाद, शीघ्र निर्णय की शक्ति और बडी प्यारी झुंझलाहट × × × जवाहरलाल की विशेषतायें है ।"

१. अंतिम तीनो पुस्तके मण्डल से प्रकाशित हुई है । उनका मूल्य क्रमशः ॥ु ८ु और २॥ु है । —प्रकाशक

सन् १९२९ ई० मे जब सुधीन्द्र बोस अमेरिका से भारत आये थे तब वह मोतीलाल जी तथा जवाहरलाल से भी मिले थे। जवाहरलाल का वर्णन करते हुए वह लिखते है—

"उनमे सुसस्कृत सभ्य पुरुष की प्रतिभा और सौजन्य था। उनका मुख-मण्डल प्रभावशाली था। मैंने अपनी कल्पना की दुनिया मे उन्हे भारत के लेनिन के रूप मे चित्रित कर रक्खा था। मेरे सामने वह बुद्धिमान युवक खडा था जो भारतीय शासको के लिए भय की चीज़ बन गया था। मैंने आश्चर्य-चकित होकर उनकी ओर देखा। अवस्था मे ४० साल के भीतर, तौल मे १०० पौण्ड के लगभग, पर शान्तिमय प्रतिमा और इसपर भी जीवन की, जाग्रति की पराकाष्ठा! स्फूर्ति की किरणे उनके शरीर से फूट रही थीं और उनकी चमकती काली आँखो मे केन्द्रित दीख पडती थी। मेरे मन मे लेनिन से उनकी समानता दृढ होकर बैठ गई। उनमे जी-जान से, लगन से काम करने का वैसा ही गुण है जैसा रूस के नेता—लेनिन—मे था।"

पर जवाहरलाल की बाधाये भी कुछ कम नही है। पहली बात तो यह कि वह परस्पर-विरोधी परिस्थितियो, सस्कारो और विचार-धाराओ की उपज है। इसलिए उनमे वह केन्द्रित कट्टरता नही है जो क्रान्तिकारी मे होती है। वह बुद्धि एव

बाधाएँ

विश्वास से समाजवादी है, पर उनका जन्म ऐसे कुटुम्ब मे हुआ और वह ऐसे वातावरण मे पले जो रईसाना नफासत और वैभव से भरा हुआ था। इसलिए उनमे आज भी रईसाना वृत्तियाँ और नफासत की भावना है। वह अपनी इन (aristocratic) भावनाओ से ऊपर उठने मे असमर्थ है। मेरा खयाल है उन्होने उनसे ऊपर उठने का खयाल भी छोड़ दिया है। वह चाहते भी नही। और चाहे तो भी ये सस्कार इतने प्रबल है कि उनसे

ऊपर उठ नही सकते । दूसरी वात यह है कि उन्होने अपने पिता से अपने वर्ग की श्रेष्ठता का एक भाव भी विरासत मे पाया है इसलिए उनमे एक शान, अमनी श्रेष्ठता का एक अभिमान भी अवश्य है । यह ठीक है कि इस अहकार को उन्होने सस्कृति की लोच से मनोहर वना दिया है, पर अव भी अपने निर्णय, अपनी आज्ञा, अपनी शान पर प्रश्न खडा होते देख वह बाहर आ जाता है । जिन लोगो ने उनके साथ काम किया है या जो उनके निकट सम्पर्क मे आये है वे जानते है कि वह विरोध की ऐसी परिस्थितियो मे वहुत जल्द गरम हो जाते है । कई बार तो यह गरमी अवाछनीय सीमा तक चली जाती है । मुँह से 'वदतमीज', 'वेहूदे' इत्यादि शब्द निकलना नो जवाहरलालजी के लिए मामूली वाते है । यह सव वही अहकार है जो उनको पैत्रिक वातावरण और परिस्थितियो से मिला है । ये सस्कार समाजवादी के सस्कार नही है, ये उसी 'बुर्जुवा' वर्ग के सस्कार है जिनके विरोध मे, उनको खडा होना पडा है ।

तीसरी वात यह है कि जवाहरलालजी की गाधीजी के प्रति अत्यन्त शक्तिमान श्रद्धा है । सारे मतभेदो के वावजूद वह जानते है कि इस आदमी मे परिस्थितियो को स्वभाविक प्रेरणा से (instinctively) समझने ओर सुलझाने की अपूर्व शक्ति है । इसके साथ वह यह भी जानते है कि यह एक पूर्णत सर्मापित व्यक्तित्व है । इसलिए चाहे उसका किसी समस्या को हल करने का ढग (method of approach) विल्कुल स्पष्ट न हो पर उससे कल्याण ही होगा । इनके अलावा गाँधीजी के गुणो एवं निजी सम्पर्क ने उनके दिल मे उनके लिए वडे ही कोमल एव आदरणीय भावनाओ को सुदृढ कर दिया है । इसलिए गाँधीजी के विरुद्ध वगावत करना उनके लिए वहुत मुश्किल है ।

उनमे 'डिक्टेटर' (सर्वाधिकारी) की सव विशेषताये है, जो उनके

लक्ष्य की स्पिरिट के साथ कुछ दूर तक तो मेल खाती है; पर ज्यादा दूर तक नही चल सकती। इन परस्पर-विरोधी सस्कारो के कारण जवाहर-लाल मे मानसिक संघर्ष बहुत ज्यादा है। आज भी इस सघर्ष का अन्त नही हुआ है। और यह उनकी रचनाओ मे सर्वत्र देखा जा सकता है। इसके कारण कभी-कभी उनकी विचार-धारा मे अनिश्चितता, अस्पष्टता और भ्रम भी दिखाई पडता है और किस समय वह किस मार्ग को अप-नायेंगे इसके बारे मे भी अनिश्चितता है। उनके भविष्य को खतरा बाहर से नही है—स्वय अन्दर के इस सघर्ष के कारण है; यह खतरा स्वय उनको अपने से है, क्योकि उनके अन्दर परस्पर-विरोधी गुणो का विकास हुआ है।

पर आशा यह की जा सकती है कि जवाहरलाल अपनी दुर्बलताओ से ऊपर उठ जायँगे और राष्ट्र उनसे जो आशा रखता है, उसमे वह उसे निराश न करेंगे।

उनमें दृढता है, लगन है, स्फूर्ति है, अहकार और सगठन की योग्यता है। उनमे जन-समूहो के प्रति आकर्षण है। मतलब वे सब चीजें उनमे है जो एक श्रेष्ठ जन-नायक का निर्माण करती है। इसलिए वह स्वभावत गाँधीजी के पश्चात् हमारे राष्ट्रीय जीवन मे सबसे अधिक आकर्षक और आशा उत्पन्न करनेवाले व्यक्ति है।

इसमे कोई सदेह नही कि जवाहरलाल, यदि ऐसे ही रहे तो, निकट भविष्य मे अधिकाधिक आदृत होगे और अनुकरणीय समझे जायँगे। इसका कारण यह है कि एक तो उनमे गाँधीवाद और लेनिनवाद का समन्वय है और दूसरे वह पारस्परिक दुर्बलताओ, परिपाटियो, रूढियो और अन्धविश्वासपूर्ण असमानता के भावो से सर्वथा परे है। उनमें धार्मिक पक्षपात नही; उनमे जातिगत भेद-भाव नही; उनमें प्राचीन के अन्धानु-

सरण की प्रवृत्ति नही। इसलिए भविष्य मे, आजादी की लडाई मे भी और उसके बाद भी, ज्यो-ज्यो युवको और विश्ववादियो का ज़ोर बढता जायगा, वह दिन-दिन कीमती साबित होते जायँगे।

मोतीलालजी और जवाहरलाल

समता और विषमता

"जवाहरलाल में गाँधीजी की भाति स्पष्टवादिता है। मोतीलालजी तत्त्वत कूटनीतिज्ञ (डिप्लोमैट) थे। वह तबतक किसीसे अपने मत-भेद को प्रकट न करते थे—किसीसे झगड़ा मोल न लेते थे, जबतक कि वैसा करने मे कोई लाभ न हो। उनके लेखो एवं भाषणो को पढ़ जाइए; आपको एक जगह भी अपने विश्वास की स्वीकारोक्ति (A single confession of faith) न मिलेगी। वह उनकी कमज़ोरी भी थी—शक्ति भी थी। इसने उनको भक्त नही बनने दिया पर उनके मतलब को सदा पूरा किया। उनका काम नेतृत्व करना था और इस कार्य में इससे सहायता ही मिलती रही।

ऐसी बात जवाहरलाल के लिए नही कही जा सकती। उनके तो कट्टर श्रद्धालु अनुयायी होगे और कट्टर विरोधी भी होगे।"[१]

सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो मालूम होगा कि दोनो के जीवन मे तेजस्विता है, दोनो देशभक्त है; दोनो बात के धनी है; दोनो त्यागी है, दोनो में दृढता और लगन है। दोनो मे जातिगत् एव साम्प्रदायिक ईर्ष्या-द्वेष नही, दोनो समाज-सुधारक है। मोतीलालजी मे राजसिकता अधिक थी—क्षात्रभाव अधिक था, जवाहरलाल मे राजसिकता कम है, क्षात्र-भाव भी है, पर ब्राह्मणत्व उसको दबाये हुए है। मनुष्य के प्रति

१. अल काफिर

सहानुभूति के भाव से उनका हृदय भरा है। मोतीलालजी ने सर्वस्व त्याग दिया, पर उनका त्याग क्षत्रिय का त्याग है—राजा का स्वेच्छापूर्वक सिंहासन-त्याग है। उस त्याग मे उनकी शान, उनके बडप्पन का भाव स्पष्ट है। उसमे आवेश है विघ्नकारी वस्तुओ पर। उसमे रास्ता रोकने वाले विलास-वैभव पर लात मारकर अलग होजाने का भाव है। जवाहरलाल की प्रकृति मे उनकी अपेक्षा त्याग का भाव अधिक मिला हुआ—अधिक स्वाभाविक है। उनके त्याग मे आवेश तो है पर उसकी अपेक्षा शील अधिक है। जवाहरलाल का चेहरा एक साधक का या उससे भी ज्यादा एक कलाकार का 'आर्टिस्ट' का चेहरा है—मोतीलालजी का चेहरा अन्त तक एक राजर्षि का चेहरा रहा। वह हमे विश्वामित्र की तेजस्विता की याद दिलाता है। मोतीलालजी एव जवाहरलाल मे यही फर्क है।

मोतीलालजी दुनिया को आनन्द की दृष्टि से देखते थे, यह उनके लिए एक क्रीडाभूमि थी—खेल खेलने का एक मैदान था। इसीलिए बुढापे मे भी उनके निष्ठुर बुद्धिवाद के नीचे एक हँसता, उछलता हुआ जवान दिल था। अट्टहास करते थे तो सब भूल जाते थे—हँसी का मज़ा ले लेकर हँसते थे। जवाहरलाल हँसेगे भी तो अट्टहास नही होगा—बहुत हुआ तो मुस्कराहट तक ख़त्म है। इस मुस्कराहट मे आर्टिस्ट की 'पोज़' है जो उनके स्वभाव मे दाख़िल होगया है।

दोनो मे कौन बडा है? मोतीलालजी को जवाहरलाल के पिता के नाम से पुकारा जाय या जवाहरलाल को मोतीलालजी के पुत्र के नाम से?—इसका निर्णय करना कठिन है; व्यर्थ भी है। आधुनिक भारत के निर्माण मे दोनो के अपने अप्रतिम स्थान है। 'न दैन्यं न पलायनम्',—मोतीलाल जी के क्षात्र-हृदय का यह सिद्धान्त था—यदि उनके जीवन को किसी

सिद्धान्त मे बाँधा जा सकता हो। जहाँ रहना शेर बनकर रहना; सबसे आगे रहना, अपनी ज़िम्मेदारी के पालन मे अपना सब कुछ—अपने को, अपनो को मिटा देना, इस राजर्षि का यह ढग था, यह करीना था। मृत्यु तक वही रहा। मृत्यु के चार-पाच दिन पूर्व जब वर्किंग कमेटी—कॉंग्रेस कार्य-कारिणी—के कुछ सदस्य कमज़ोरी दिखा रहे थे, किसी प्रस्ताव में नम्रभाव का प्रयोग करना चाहते थे तो खबर पाते ही मोतीलालाजी ने उन्हे बुला भेजा और रोब से कहा—"ऐसा प्रस्ताव इस भवन मे पास नही हो सकता। तिनका मुँह मे उठाना हमने नही सीखा।" वह होते तो शायद ही दिल्ली की अस्थायी सधि हो सकती। कितने ही नेताओ की यह सम्मति है। वह कभी महात्माजी को झुकने न देते। किसीके सामने झुकना उनके स्वभाव मे ही नही था। कृष्णकान्तजी ने ठीक ही लिखा था—"उनके जीवन का सिद्धान्त था—'कि हसा मोती चुँगै कि करि रहे उपास'—करना तो सर्वश्रेष्ठ करना, नही तो न करना। वकालत मे, ऐशो-इशरत मे, रहन-सहन मे, साजोसामान मे, अनन्तर राजनीति मे, देश-सेवा मे, नेतृत्व मे—सर्वत्र यही सिद्धान्त उनके जीवन का ध्रुवतारा था। या तो सर्वोपरि, सबके आगे, सर्व-श्रेष्ठ या कही नही। अपने आगे वह किसीको कुछ नही समझते थे; किन्तु इसका यह मतलब नही कि दूसरे की महत्ता का उसके गुणो का, उसके त्याग का आदर उनके हृदय में कम था, या उसकी वे कद्र नही करते थे। दूसरा प्रधान गुण पण्डितजी मे 'नेहरू' शब्द और 'नेहरू'-परिवार का अभिमान था। जो काम हो, उसमें 'नेहरू' सबसे आगे हो, जो बात हो, उस पर 'नेहरू' की छाप हो और जो चीज हो वह 'नेहरू'-ब्रैण्ड हो। × × × लगन, हठ, स्वाभिमान, उत्तरदायित्व का पालन, शेरदिली, आन-बान-शान, विद्रोह और युद्ध-प्रियता उनके चरित्र की विशेषताये थी।"

जवाहरलाल ऐसे नही है। महात्माजी और साम्यवाद ने उनके त्याग को प्रेममय, विनम्र और शान्त बना दिया है। विद्रोह, तेजस्विता, युद्ध-प्रियता, दृढता तो उनमे भी पिता की ही भाँति है—पैतृक है पर साथ ही कोमलता, मनुष्यता, से इनका हृदय भरा हुआ है। सादगी, त्याग और कष्ट-सहन मे यह बढे हुए है। शीघ्र-निर्णय की शक्ति इनमे पिता से भी अधिक है, पर इस निर्णय मे पिता जहॉ केवल बुद्धि एव विवेक का उपयोग करते थे वहाँ इनमे भावना का, भावुकता का रग भी है। इसीलिए कभी-कभी उनमे बडी आतुरता—जल्दबाजी दिखाई देती है। झुँझला भी जाते है—चिढ भी जाते है।

मोतीलालजी एक महान् सेनापति, एक महान् राजनीतिज्ञ और एक महान् राष्ट्रपुरुष थे, जवाहरलाल एक महान् देश-सेवक, एक श्रेष्ठ नेता, एव भारतीय राजनीति को मानवता से, विश्व के सुख-दु ख से जोडने वाले एक पथ-प्रदर्शक है। मोतीलालजी एक व्यक्तित्व—'पर्सनैलिटी'—थे; जवाहरलाल एक धारणा—एक 'आइडिया' है।

जीवन-तालिका

१८८९ १४ नवम्बर, मीरगंज (प्रयाग) में माता स्वरूपरानी के पेट से जन्म।

घर पर पढ़ना-लिखना, तैरना, अश्वारोहण इत्यादि की शिक्षा।

१२ वर्ष की अवस्था होने पर श्री गार्डन और श्री एफ० टी० ब्रुक्स से विद्या-लाभ।

१९०४ सपरिवार इंग्लैण्ड-यात्रा। शिक्षा के लिए हैरो स्कूल में प्रवेश। यहाँ से इण्ट्रेंस पास किया। फिर ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश। यहा एम० ए० पास किया।

१९११ लन्दन के 'इनर टेम्पुल' में बैरिस्टरी की शिक्षा के लिए प्रवेश।

१९१२ बैरिस्टरी पास कर ली।

इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। पटना कांग्रेस में शामिल हुए तब से प्राय प्रत्येक अधिवेशन में शामिल होते रहे।

१९१४ गोखले की अपील पर प्रवासी भारतीयों के लिए ५० हजार रुपये एकत्र कर दक्षिण अफ्रीका भेजे।

१९१६ फरवरी प० जवाहरलाल कौल की कन्या कुमारी कुमला से विवाह। लद्दाख-यात्रा।

१९१७ कन्या (कुमारी इन्दिरा) का जन्म।

१९१८ होमरूल-आन्दोलन में काम किया।

१९१९-२० अवध के किसानों में काम किया।

१९२० बैरिस्टरी छोड़ी तथा असहयोग-आन्दोलन में सम्मलित हुए।

१९२१ ६ दिसम्बर, छ महीने के लिए जेल।

कुछ हफ्ते बाद छुटकारा ।

१९२२ मई, पिकेटिंग के कारण गिरफ्तारी । १८ मास की कडी कैद और १००) जुर्माने की सज़ा । प्रयाग म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष चुने गये ।

१९२३ वर्ष के आरभ मे—शायद फरवरी में—छोड दिये गये । नाभा के प्रश्न की जॉच करने के लिए यात्रा । नाभा मे प्रवेश-निषेध । आज्ञा-भग । १४३ एव १८८ धाराओ के अनुसार मुकदमा चला । ढाई वर्ष की सजा । पीछे दोनो सजाये मुल्तवी कर दी गईं और अभी तक मुल्तवी हैं ।

१९२४ पुत्र-जन्म, पर तीन दिन बाद ही मृत्यु ।

१९२६ पत्नी की बीमारी के कारण स्वीजरलैण्ड की यात्रा ।

१९२७ फरवरी, भारतीय राष्ट्रीय महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य-विरोधी सघ के जेनेवा अधिवेशन मे सम्मिलित हुए और उसके एक अध्यक्ष भी चुने गये ।

नवम्बर, सोवियट-सरकार के निमत्रण पर रूस गये । वहाँ देखा-भाला और भारत लौटने पर 'सोवियट रशा' नामक एक सचित्र पुस्तक भी अग्रेजी मे लिखी ।

दिसम्बर, हिन्दुस्तानी सेवा-दल तथा प्रथम प्रजातत्र-परिषद् मद्रास के अध्यक्ष हुए ।

मद्रास-काग्रेस मे स्वतत्रता का प्रस्ताव उपस्थित किया ।

१९२८ ३१ अगस्त, सर्वदल-सम्मेलन मे महत्त्वपूर्ण भाषण ।

सितम्बर, 'भारतीय स्वाधीनता-सघ' की स्थापना की ।

अक्तूबर, सयुक्त प्रातीय कान्फ्रेस के झासी अधिवेशन के अध्यक्ष ।

१९२९ सर्वभारतीय मजूर-काग्रेस के नागपुर अधिवेशन के सभापति हुए ।

३०–३१ दिसम्बर, लाहोर-कांग्रेस के अध्यक्ष ।

१९३० १४ अप्रैल, गिरफ्तारी और सजा ।

सन्धि और छुटकारा ।

१९३१ युक्तप्रातीय किसानो की समस्या पर सरकार से पत्र-व्यवहार। सरकार का हठ ।

दिसम्बर, गाधीजी का आगमन । प्रयाग की सीमा न छोडने की निषेधाज्ञा । आज्ञा-भग । ढाई वर्ष की सजा ।

१९३३ ३० अगस्त, माता की बीमारी के कारण जेल से मुक्ति ।

१९३३ सितम्बर, माता का स्वास्थ्य सुधरते ही गाधीजी से मिलने पूना-यात्रा । दोनो के बीच महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार । 'ह्विदर इण्डिया' शीर्षक लेखो का प्रणयन और प्रकाशन ।

अक्तूबर, बहन कृष्णा नेहरू का 'सिविल मैरेज एक्ट' के अनुसार बम्बई के बैरिस्टर श्री हथीसिह से विवाह ।

१९३४ जनवरी, रुग्णा पत्नी कमला के साथ कलकत्ता-यात्रा । राजनीतिक भूकम्प पर व्याख्यान । बिहार-भूकम्प के सम्बन्ध मे बिहार की यात्रा तथा कार्य । स्वतन्त्रता दिवस मनाने की अपील ।

१२ फरवरी, कलकत्ता के व्याख्यानो के लिए बगाल सरकार के वारण्ट पर इलाहाबाद में गिरफ्तारी ।

१६ फरवरी, राजद्रोह के जुर्म मे दो वर्ष की सजा ।

७ मई, देहरादून जेल को स्थानान्तर ।

१२ अगस्त, पत्नी कमला की अवस्था ज्यादा खराब हो जाने के कारण देहरादून से इलाहाबाद लाकर रिहाई । (रिहाई चन्द-रोजा थी यानी जबतक डाक्टर रोगी के पास उनका रहना

अनिवार्य समझे तभी तक के लिए ।)

२३ अगस्त, चन्द्ररोजा मुक्ति का अन्त । पुन गिरफ्तारी और जेल ।

फरवरी १९३४ से फरवरी १९३५—जेल मे 'जवाहरलाल नेहरू' एन आटोबाइग्राफी' (जिसका अनुवाद सस्ता साहित्य मण्डल से 'मेरी कहानी' नाम से निकला है) नामक एक अत्यन्त हृदयग्राही ग्रथ लिखा, जिसमे उनकी मनोभावनाओ एव विचारधाराओ का सुन्दर चित्रण है ।

१९३५ मई, कमला नेहरू की तबीयत सदा खराब होने के कारण उन्हे इलाज के लिए यूरोप भेजा गया ।

४ सितम्बर, पत्नी की हालत बहुत नाजुक होने के कारण अलमोडा जेल से रिहाई । रिहा होने के बाद ही पत्नी के पास जाने के लिए हवाई जहाज़ से यूरोप की यात्रा ।

१९३६ २८ फरवरी, यूरोप मे ही पत्नी कमला का देहावसान ।

११ मार्च, यूरोप से प्रयाग लौटकर कमला के फूल का गगा में विसर्जन ।

अप्रैल, लखनऊ काग्रेस के अध्यक्ष और राष्ट्रपति निर्वाचित हुए ।

अप्रैल-दिसम्बर देश में तूफानी दौरा ।

दिसम्बर, फैजपुर काग्रेस के लिए पुन. अध्यक्ष और राष्ट्रपति निर्वाचित हुए ।

१९३७ जनवरी, सारा वर्ष तूफानी दौरो, भाषणो और वक्तव्यो मे बीता । दौरे का कम जनवरी मे बिहार और युक्तप्रान्त । फरवरी मे हवाई जहाज़ से पजाब, लाहौर, अमृतसर इत्यादि ३ दिनो मे ९०० मील का सफर तथा अनेक सभाओ मे

भाषण। तथा युक्तप्रान्त के ४८ जिले, अप्रैल मे महाराष्ट्र तथा कर्नाटक, मई मे वर्मा तथा बगाल के कुछ हिस्से, जुलाई मे फिर युक्तप्रान्त, अगस्त मे बम्बई, सितम्बर में गुजरात तथा राजपूताना, अक्तूबर मे दिल्ली, पजाब तथा बिजनौर, नवम्बर-दिसम्बर मे आसाम, सहारनपुर, बुलन्दशहर आदि। इन दिनो चुनावो के कारण देश मे अद्भुत भावावेश। 'नागरिक स्वाधीनता-सघ' (सिविल लिवर्टीज़ यूनियन) की स्थापना। काग्रेस सेक्रेटेरियट का पुनर्गठन।

१५ मार्च, दिल्ली मे नेशनल कन्वेशन का सभापतित्व।

१९३८ १० जनवरी, माता स्वरूपरानी का देहावसान।

फरवरी, सीमाप्रान्त का दौरा।

मार्च, हरिपुरा काग्रेस में, गढवाल का दौरा।

मुस्लिम लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना से महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार। चीन-जापान युद्ध के प्रश्न पर चिन्ता। जापानी माल के वहिष्कार का आन्दोलन। चीन मे चिकित्सक सेवा-मण्डल भेजने मे प्रमुख भाग।

२ जून, यूरोप-यात्रा।

१६ जून, स्पेनी प्रजातन्त्र के अधिकारियो से वार्सिलोना मे भेंट एव उनसे भारत की हमदर्दी का इज़हार।

२० जून, पेरिस ब्राडकास्टिग स्टेशन से भाषण ब्राडकास्ट किया। इससे वडा तहलका मचा।

२३ जून, लन्दन पहुंचे।

जून-जुलाई, लन्दन मे सव तरह के प्रतिष्ठित एव प्रभावशाली लोगो (परराष्ट्र-मत्री, भारत-मत्री, वायसराय इत्यादि से भी)

से मिले। कई व्याख्यान। यूरोप मे हिन्दुस्तान के प्रति लोगो का ध्यान खीचने और भारत की समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देने का प्रयत्न।

१७ नवम्बर, स्वदेश मे पुनरागमन।

१९३९ जनवरी-फरवरी, देश की स्थिति का अध्ययन। गाँधीजी तथा अन्य नेताओ से विचार-विमर्श। शाँति-निकेतन मे हिन्दी-भवन का उद्घाटन। देशी राज्य प्रजा परिषद् के लुधियाना अधिवेशन का सभापतित्व।

मार्च, त्रिपुरी काग्रेस अधिवेशन मे तथा उसके पूर्व राष्ट्रपति श्रीसुभाष बोस के निर्वाचन को लेकर होनेवाले मतभेदो एव बाद मे कलकत्ता महा समिति मे झगडो को सुलझाने एव काग्रेस के सयुक्त मोर्चे को कायम रखने का प्रयत्न।